हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर-सीरीजका ११ वाँ ग्रन्थ ।

शान्ति-कुटीर ।

[गार्हस्थ्य चित्र ।]



श्रीयुत बाबू अविनाशचन्द्रदास एम० ए०, बी० एल० के
' पलाशवन ' नामक बंगला-ग्रन्थका हिन्दी अनुवाद ।



अनुवादक—
पण्डित रूपनारायण पाण्डेय ।



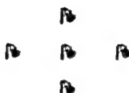
प्रकाशक—
हिन्दी-ग्रन्थरत्नाकर कार्यालय, बम्बई ।

पौष, वि० सं० १९८४ ।

तृतीयावृत्ति ।] दिसम्बर, १९२८ । [मूल्य १=)

राजसंस्करणका १।।।)

प्रकाशक—
श्री नाथूराम प्रेमी, प्रोप्रायटर,
हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, पो० गिरगाँव-बम्बई ।



मुद्रक—
मंगेश नारायण कुळकर्णी,
कर्नाटक प्रेस,
३१८ ए, ठाकुरद्वार मुंबई २.

निवेदन ।



'शान्तिकुटीर' को ठीक उपन्यास-ग्रन्थ नहीं कह सकते । इसमें उपन्यासके कितने ही लक्षणोंका अभाव है । इसे केवल एक काल्पनिक 'गार्हस्थ्य चित्र' कह सकते हैं । अतएव जो पाठक इसे उपन्यास-पाठके तीव्र आनन्द-लाभकी आशासे पढ़ेंगे, उन्हें संभवतः निराश होना पड़ेगा । और इसमें यदि साधारण देहाती फूलोंको छोड़कर देवदुर्लभ पारिजातपुष्पोंका अनुसन्धान किया जायगा, तो भी पाठकगण विफलमनोरथ होंगे ।

" Religion in inward life, a meditation, a prayer of the Spirit; a listening, a waiting, a hush and hope of the soul; man's hour before heaven's dawn. But religion is also action. It is taking the purse—all the purse which one has and the traveller's wallet, and even, if need be, a soldier's sword. "

—*Newman Smyth.*

" If what shone afar so grand,
Turn to nothing in thy hand,
On again; the virtue lies
In the struggle, not the prize. "

—*R. M. Milnes.*

सावित्रीने कहा—" कन्या एक ही बार दी जाती है । हे पिताजी, इस कारण सत्यवानको चाहे बड़ी उमर हो और चाहे वे अल्पायु हों, चाहे वे गुणी हों और चाहे उनमें कोई गुण न हो, उनको मैंने अपने मनसे अपना पति बना लिया है । अब मैं दूसरे किसीको अपना पति नहीं बना सकती । मनुष्य पहले मनसे निश्चय करता है, फिर मुखसे कहता है, उसके बाद शरीरसे (किसी) कार्यको करता है । इसलिए मेरा मन ही इस विषयमें प्रमाण है । "

(महाभारत, वनपर्व, २९२ अध्याय ।)

शान्ति-कुटीर।

पहला परिच्छेद।

मैं बचपनसे मध्यप्रदेशमें हूँ। मेरे पिताजी एक सरकारी ऊँचे ओहदे-पर थे। उन्हें इसी प्रान्तमें बहुत दिनोंतक रहना पड़ा। मध्यप्रदेशकी आब-हवा अच्छी होनेके कारण पिताजीने पेन्शन पा चुकने पर भी यहीं रहनेका विचार कर लिया। उन्होंने बड़वानीके पास ही एक गाँवमें मकान बनवा लिया और वहीं रहने लगे। मेरे और भी भाई थे। वे मुझसे बड़े थे और काशीमें रहकर कालेजमें अँगरेजीकी ऊँचे दरजेकी शिक्षा प्राप्त कर रहे थे।

मैं अपने माता-पिताके पास ही रहता था। इसका चाहे यह कारण हो कि मैं अभी छोटा ही था; अथवा यह हो कि मेरे पढ़नेके लिए वह देहाती मदरसा ही काफी था। देहाती मदरसेमें मैं हिन्दी पढ़ता था; अँगरेजीकी शिक्षा मुझे अपने पिताजीसे ही मिलती थी। साथ ही कुछ संस्कृतका अभ्यास भी मुझे कराया जाता था।

हमारे रहनेका घर गाँवके बाहरी हिस्सेमें था। वहाँसे थोड़ी दूरपर एक पहाड़ी (सतपुड़ाका एक हिस्सा) थी। मगर उसपर पेड़ों और लताओंका जंगल या झुर्मुट न था। उसके रूखे नंगे शरीरकी शोभा बढ़ानेवाले थोड़ेसे जंगली पेड़ ही थे। गाँवके लोगोंके मुँहसे सुना जाता था कि उस पहाड़ीपर पहले बड़ा घना जंगल था। जबसे वह (भवानीपुर) गाँव बसा तबसे वह जंगल भी नहीं रहा और उसमें

रहनेवाले भालू शेर आदि भी गायब हो गये। जो कुछ हो, वृक्ष या लता कुछ न रहनेके कारण वह पहाड़ी दूरसे बहुत ही डरावनी लगती थी। गाँवके लोगोंने यह कह कर कि "इस पहाड़ीपर भूत-प्रेत देव-दानव आदि घूमा करते हैं," उसको और भी भयानक बना डाला था। भूत, प्रेत, भैरव आदिकी पूजा या बलिदान करनेके लिए ही कभी कभी कोई कोई उसपर जाता था। मगर मैं इस नियमको नहीं मानता था, रोज उस पहाड़ीपर जाता था। इसके लिए माताजी कभी कभी डाँटती और पिताजी ठोकते भी थे। मगर मैं अपनी हरकतसे बाज नहीं आता था।

मेरे माता-पिताको नहीं मालूम था कि पहाड़पर चढ़नेका—सैर करनेका—मुझे कितना जबरदस्त शौक है। मेरे माता-पिता युक्तप्रान्तके हरदोई जिलेके रहनेवाले थे। मेरा जन्म वहींका है। वहाँ देहाती मदरसेमें जब मैं पहाड़, जङ्गल, नदी और झरनोंका बयान पढ़ता था तब, कभी पहाड़ न देखने पर भी, मन-ही-मन उसका एक सुन्दर चित्र अंकित कर लेता था। इतना ही नहीं, मदरसेमें बैठा बैठा कल्पनाके घोड़ेपर सवार होकर पहाड़ों और जंगलोंमें घूम भी आता था—पहाड़ी झरनोंकी टेढ़ी मेढ़ी धाराके किनारे टहलता टहलता कितने ही सुहावने लुभावने स्थानोंमें विचरता था। उसके बाद जब मेरे पिता मध्यप्रदेशमें मुझे ले आये, मैंने सचमुच पहाड़ देखा, घरके पास ही जंगली पहाड़ी पेड़ोंकी पाँति हरी रेखासी देख पड़ी, पहाड़ी झरनोंकी उमंगभरी क्रीड़ा देखनेको मिली। उस दिनका ऐसा आनन्द, अपने जीवनमें मुझे कभी नहीं मिला था। घरमें पैर रखते ही मैं दौड़कर पहाड़ देखने चला गया। उत्साह उमंग, डर और कौतुकसे भरा हुआ मैं कुछ दूर ऊपर चढ़कर एक बड़े भारी पत्थरके टुकड़ेपर बैठ गया और वहाँसे एक बार मैंने अपने चारों

ओर नजर डाली। चारों ओर नीची-ऊँची धरती थी, उसके बीचमें पहाड़ी नदीकी धारा बड़े अजगरके समान चली गई थी। दूरपर मेघमालाके समान पहाड़की चोटियाँ दिखाई देती थीं। कहीं कहीं पर घना जंगल देख पड़ता था। निर्जर मनोहर मैदानोंके बीच आमके बागोंसे घिरेहुए छोटे छोटे गाँव नाटकके परदेके समान मेरी आँखोंके आगे आगये। पहाड़की उस भयानक गंभीर मूर्ति, उस जगहके सन्नाटे और 'प्रकृति' की चुप्पीने मेरे हृदयमें भय मिलेहुए आनन्दका एक अपूर्व सोतासा खोल दिया। उसी घड़ी मानों किसी जादूगरके मंत्रसे मेरी कल्पनाका दरवाजा खुल गया। मेरा चित्त निर्मल होकर खिल उठा। हृदयमें उदार भाव भर गया। उस दिनको मैं अपनी छोटीसी जिन्दगीका एक बड़े भारी महत्त्वका दिन समझता हूँ। उसी दिनसे मेरे जीवनमें एक प्रकारका अद्भुत परिवर्तन होने लगा। मैं कभी कभी आप-ही-आप एक दिव्य पवित्र आनन्दका अनुभव करने लगता हूँ। अपने जीवनकी अन्तकी घड़ी तक मुझे बराबर उस दिनकी याद बनी रहेगी।

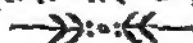
मदरसेसे मैं हाईस्कूलमें भरती हो गया। वहाँ मैं अँगरेजी और हिन्दी पढ़ने लगा। अपने देशमें रहनेके समय मैंने पढ़ने लिखनेमें अच्छी तरह मन नहीं लगाया था। किन्तु जबसे यहाँ हाईस्कूलमें भरती हुआ तबसे मैं पढ़ने लिखनेमें खूब जी लगाने लगा। लड़कपन, चञ्चलता और ऊधम, छोड़कर मैं एक गंभीर शान्त बालक बन गया। स्कूलका पाठ याद करनेके बाद कुछ छुट्टी मिलते ही मैं कभी अकेले और कभी कुछ खास खास लड़कों—साथियों—के साथ पहाड़के किनारे किनारे या जंगलके आसपास घूमता था; अथवा कहीं किसी शिलापर बैठकर अच्छी अच्छी बातें करता था।

लेकिन साथियोंके साथ रहने या घूमनेसे मुझे अकेले रहना ही अधिक रुचता था। रोज ही मैं सूर्य अस्त होनेके समय पहाड़के ऊपर

अकेले बैठा रहता था। गाँवका गुल-गपाड़ा उस जगह नहीं पहुँचता था। उस ऊँची जगहकी हवा निर्मल, ठंडी और शरीर तथा मनमें फुर्ती लानेवाली थी। वहाँ बैठकर मैं नित्य ही आकाशमें सूर्यके अस्त होनेका तमाशा देखता था। सूर्यदेवकी सुनहरी किरणोंकी माला पेड़ोंकी पत्तियोंपर, पहाड़की चोटियोंपर, हरे भरे खेतोंपर और दूरपर दिखाई देनेवाले पहाड़ी सिलसिलेपर बिखरकर एक अपूर्व शोभा फैलाती थी। धीरे धीरे सन्ध्याकालका अँधेरा घना हो-होकर पृथ्वीको ढकने लगता था। पशुपक्षी चुप हो जाते थे। पेड़ों और लताओंकी खड़खड़ाहट बंद हो जाती थी। केवल, बीच बीचमें, घरको लौटते हुए चरवाहोंके लड़कोंका गाना और अपने दलसे बिछुड़ी हुई एक दो गऊ-भैंसोंके गलोंके घंटोंकी आवाजके सिवा और किसी तरहका शब्द नहीं सुनाई पड़ता था। उस समय मैं उसी पहाड़के ऊपर बैठकर, एक अपूर्व आनन्दके नशेमें मस्त होकर, हृदयमें तरह तरहके मनोरथ करता था; और उनके पूरे होनेका कोई उपाय न देखकर उदास भावसे घरको लौट आता था।

मध्यप्रदेशमें मेरे जीवनके कुछ बरस इसी तरह बीते। क्रमशः मैंने इण्ट्रेन्स पास कर लिया। हाईस्कूलकी पढ़ाई समाप्त हो गई। अन्तको १६ बरसकी उमरमें ऊँचे दरजेकी शिक्षा पानेके लिए मुझे इलाहाबाद जाना पड़ा।

दूसरा परिच्छेद।



इलाहाबाद मेरे लिए एक नई दुनिया था। वहाँके ठाट-बाट, साज-सरंजाम, भीड़-भाड़ और गुल-गपाड़ेको ही मैं कुछ दिन कौतुककी दृष्टिसे देखता रहा। उसमें ऐसा तन्मय हो गया कि मेरा मन और ओर जाता ही न था। धीरे धीरे कुछ दिनोंमें जब वह आश्चर्य और कौतु-

कका भाव कम हो गया, अर्थात् मेरी दृष्टिसे नगरका नयापन जाता रहा, तब यह शहरकी भीड़-भाड़ और गुल-गपाड़ा मुझे जहरसा जान पड़ने लगा। जैसे गरीब आदमी किसी रईसके घरमें दो चार दिन दावत खाकर, फिर अपनी सुख-शान्तिसे भरी छोटीसी झोपड़ीमें जानेकी इच्छा करता है, वैसे ही, मैं भी कुछ दिनों तक शहरकी तड़क-भड़कमें पड़ा रहा; उसके बाद उस परसे मेरी श्रद्धा हटने लगी, और अन्तको वही मध्यप्रदेशका सीधा सादा गाँव देखनेके लिए मेरा मन व्याकुल हो उठा। मगर मैं तो कालेजमें पढ़ रहा था। पढ़ना छोड़कर कहीं जानेका कुछ उपाय न था। मैं कोई उपाय न होनेके कारण छुट्टीके समय, कल्पनाके सहारे, उस शोर-गुलसे गूँजती हुई सड़कपर ही टहलते टहलते मध्यप्रदेशके सुपरिचित पहाड़पर, निर्जन जंगलके आसपास, मैदानों और किसानोंके गाँवोंमें घूम आता था और दम भरके लिए देश और कालको भूलकर अपनेको प्रयागमें नहीं, किन्तु सचमुच ही अपने गाँवके पहाड़पर समझकर अपूर्व आनन्द भोगा करता था। सुख देनेवाली कल्पनाकी कृपासे शहरका शोरगुल मुझे सुना ही न पड़ता था और भीड़-भाड़ मुझे देख ही न पड़ती थी। मानों किसी जादूके जोरसे घड़ी भरमें वह भीड़-भाड़ भरी और गुल-गपाड़ेसे गूँजती हुई पुरी एक शान्त पहाड़ी गाँव बन जाती थी। और, मैं भी मानों कुछ जंगली कबूतरोंके शब्द और अपरिचित पक्षियोंकी मीठी बोलीके सिवा और कुछ नहीं सुन पाता था। शहरमें मैं कभी कभी इसी तरह सपनेकी सी हालतमें अपनेको भूल जाता था।

इसी तरह बीचबीचमें सपना देखनेका मुझे रोग सा होगया था। इसीसे मैं किसीसे बहुत मिलता-जुलता नहीं था। मेरी ही उमरके मेर और और सहपाठियोंकी और ही तरहकी प्रकृति थी। उनसे बोलने चालने या बात-

चीत करनेमें मेरा जी नहीं भरता था। उनकी और मेरी रुचि, चाह और प्रवृत्तिमें आकाश और पातालका अन्तर था। यही कारण था कि उनसे दूर रह सकनेपर मैं बहुत ही प्रसन्न रहता था। बे-मतलब मैं किसीसे भी बहुत बातचीत नहीं करता था। इस कारण मेरे सहपाठी भी मुझसे हेलमेल पैदा करनेकी इच्छा नहीं प्रकट करते थे। वे मुझे घमंडी, असभ्य और देहाती कहकर मेरी हँसी उड़ाते थे–बोलीठोली मारते थे। हाँ, यह बात जरूर थी कि मेर सामने मुझे कुछ कहनेके लिए किसीकी हिम्मत नहीं होती थी। सामने तो सब लोग आदरके साथ ही मुझसे बातचीत करते थे, मगर सुन पड़ता था कि पीठपीछे वे लोग मेर अद्भुत स्वभावके सम्बन्धमें तरह-तरहकी बातें कह-कहकर हँसते थे। मगर उनके आदर या निरादरकी मुझे कुछ पर्वाह न थी। मै केवल अपना ज्ञान बढ़ानेमें—पढ़ने लिखनेमें—ही लगा रहता था। उसके बाद जो अवकाश मिलता था उसमें सड़कपर टहलते टहलते कल्पनाके सहारे पहाड़, जंगल और झरनोंकी सैर किया करता था।

कालेजमें पढ़ते पढ़ते कुछ दिनोंमें एक सहपाठीकी ओर विशेष रूपसे मेरा ध्यान गया। सब सहपाठी ढीठ, चंचल और उपद्रवी थे, मगर वह लड़का बहुत ही शान्त, नम्र और सीधे स्वभावका देख पड़ा। उसका मुखमण्डल सदा प्रसन्न रहता था; उसकी दृष्टि स्नेहसे भरी, सरल कोमल और प्रसन्न थी। मानों उसकी दृष्टिके द्वारा उसके हृदयके सब अच्छे भाव आप ही आप बाहर प्रकट हो रहे थे। उस नौजवानको देखते ही उसके साथ जान-पहचान और मित्रता करनेकी इच्छा होती थी। मगर कई दफे उससे बातचीत करनेकी इच्छा रहने पर भी मैं उस इच्छाको पूरा नहीं कर सका। एक दिन छुट्टी होनेके बाद कालेजसे लौटते समय राहमें अचानक उसका और मेरा साथ हो गया।

दो चार बातें होनेके बाद ही मुझे उस नौजवानके हृदयका परिचय मिल गया। उस नौजवानसे भी, मेरी ही तरह, अभी तक किसी सह-पाठीसे मित्रता नहीं हुई थी। मैं जिस तरह मन-ही-मन उससे मिलनेके लिए व्याकुल था वैसे ही वह भी मन-ही-मन मुझसे मिलनेके लिए व्याकुल था। मेरी गंभीर प्रकृति देखकर अबतक उसे मुझसे बातचीत करने और हिलने-मिलनेका साहस न होता था। बातचीतमें यह भी मालूम हुआ कि मेरी और उस नौजवानकी एक दूरकी नातेदारी भी है। मुझे उससे मिलकर बड़ी खुशी हुई। मैंने हँसकर कहा—भाई, अब डरनेका कोई कारण नहीं है। देखो, संसारकी यह बाहरी प्रकृति स्वभावसे ही सुन्दर है। तथापि अगर आकाशमें सूर्य न हो तो उसकी सुन्दरतापर गंभीरता और उदासीकी ही छाया पड़ी रहती है। किन्तु देखो, सूर्यका उदय होनेपर प्रकृति कैसी खिल उठती है! उसकी सुन्दरता सौगुनी होकर चारों ओर फैल जाती है। आशा है, आप भी मेरे उदास और अन्धकारमय जीवनके लिए सूर्यके समान होंगे। उसी दिनसे भोलानाथसे और मुझसे ऐसी मित्रता हो गई कि अगर 'एक प्राण दो देह' कहें तो भी झूठ न होगा।

भोलाके हृदयके भीतर प्रवेश करके मैंने देखा, जगतमें उसके समान दूसरा मिलना कठिन है। उसका हृदयरूपी बाग सुन्दर भावरूपी स्वर्गीय फूलोंसे भरा हुआ है; उन फूलोंकी दिव्य सुगन्धसे व्याप्त हो रहा है। वह एक शीतल, स्वच्छ और अलौकिक ज्योतिसे प्रकाशित हो रहा है। नहीं कहा जा सकता कि भोलाका हृदय कौनसी अपूर्व सामग्रीसे बना हुआ था। उसके गुणोंको जितना ही मैं जानने लगा—उसके मनोहर हृदयका जितना ही परिचय पाने लगा—उतना ही उसके ऊपर मेरी श्रद्धा बढ़ने लगी। कभी कभी मुझे भ्रम हो जाता था कि भोला मनुष्य

नहीं, देवकुमार है। मनुष्यकी सन्तानको तो मैंने कभी ऐसा पवित्र और सुन्दर होते नहीं देखा। जान पड़ता है, ऋषियोंके बालक पहले ऐसे ही होते थे। शायद यह ऋषिकुमार ही किसीके शापसे मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ है। भोलाका तन, मन और आत्मा सभी एक ही सामग्रीसे बना हुआ है। भोलाने मेरे अँधेरे हृदयमें जिस प्रकाशकी ज्योति डाली उससे मैं धन्य और कृतार्थ हो गया। भोलानाथ सचमुच ही मेरे अन्धकारमय मुरझाये हुए जीवनके लिए सूर्य हो गया।

मैंने बड़ी ही अच्छी घड़ीमें भोलाके साथ मित्रता की थी। यह तो मैं नहीं जानता कि 'माहेन्द्र योग' किसे कहते हैं, मगर मेरी समझमें भोलासे मेरी मित्रता अवश्य उसी शुभ योगमें हुई होगी। ऐसा मित्र और ऐसा मेल जगतमें बहुत ही कम हाथ लगता है।

जबसे भोलासे और मुझसे मित्रता हुई तबसे मैं अकेले घूमने नहीं जाता था। दिन भर बड़े उत्साहके साथ पढ़ने-लिखनेमें लगे रहकर तीसरे पहर हम दोनों घूमने निकलते थे और मिलकर-बातचीत कर—प्रसन्न होते थे। उस समय हमारी चिन्ता, चाह और चेष्टा एक ही होती थी। उस समय हमारे उत्साहकी सीमा नहीं थी, आनन्दका अन्त नहीं था। पढ़ने लिखनेमें हमारा अनुराग सौगुना बढ़ गया। अच्छे काम करनेका चाव हजारगुना हो गया। हम अच्छी बातोंके सोचने, अच्छी बातें करने और अच्छे ग्रंथ पढ़नेमें एक अपूर्व प्रसन्नता और आनन्द पाने लगे। हमारे और सहपाठी लोग हमारी इस प्रसन्नता और आनन्दको देखकर कुछ विस्मित हुए। कोई कोई हमसे डाह भी करने लगे। किन्तु बहुतेरोंने हमसे दोस्ती कर ली। भोलानाथकी और मेरी परीक्षाका नतीजा ऐसा अच्छा निकला कि उसकी हमें आशा भी न थी। हमारे मास्टर लोग हमपर बहुत ही स्नेह करने लगे और

भोला मेरी और मैं भोलाकी उन्नति देखकर निर्मल आनन्दका अनुभव करने लगा। इसी तरह दो-तीन वरस बीत गये।

तीसरा परिच्छेद।



भोलासे मैं अपने हृदयके अभाव, चाह और लक्ष्यका सब हाल कहता था और भोला भी अपने हृदयके अभाव, चाह और लक्ष्यका सब हाल मुझसे कहता था। जैसे परमेश्वर सबके हृदयका हाल जानते हैं, वैसे ही भोला भी मेरे भीतर और बाहरका सब हाल जानता था। मेरी ऐसी कोई बात न थी, जिसे मैं भोलासे छिपाता। असल बात तो यह है कि भोलासे कुछ छिपा रखनेको मैं महापापसा समझता था। अगर कभी मैं भोलासे कुछ छिपानेकी चेष्टा करता था तो मेरे मनको किसी तरह शान्तिका सुख नहीं मिलता था—चैन नहीं पड़ती थी। भोलानाथ अपने दिलका सब हाल मुझसे कह दिया करता था। इसी तरह हम दोनों एक दूसरेका हाल जानते थे—एक प्राण दो देह हो रहे थे। हम दोनोंमें एककी शक्ति, गुण और कमजोरी दूसरेसे छिपी नहीं थी। परस्पर एक दूसरेको जाननेके कारण हम दोनों बराबर उन्नतिकी राहमें आगे बढ़ रहे थे। परस्पर एक दूसरेकी चेष्टा और यत्नसे हम अपने स्वभावकी कमजोरियोंको धीरे धीरे छोड़कर अच्छे गुणोंको ग्रहण करनेमें समर्थ हुए।

हृदयका मिलना जिसे कहते हैं, वह आजकल बहुत ही कम देखनेको नसीब होता है। आजकल तो मतलबी मित्रोंकी ही भरमार है। मगर मेरा और भोलाका हृदय एक हो गया था। भोला यह जानता था कि मुझे स्वाभाविक सुन्दरतापर बड़ा ही अनुराग है। भोलासे यह भी

छिपा नहीं था कि फल-फूल लता-पत्र जंगल-पहाड़ आदि मुझे बहुत प्यारे लगते हैं। भोलानाथने अभीतक कभी पहाड़की सैर नहीं की थी। इस कारण पहाड़ आदिके वर्णनको सुननेमें उसका बहुत जी लगता था। गरमीकी छुट्टियोंमें मैं मध्यप्रदेशके उसी देहातमें अपने माता-पिताके पास रहता था। इसमें कोई संदेह नहीं कि भोलाका साथ छोड़कर इतने दिन उससे दूर रहनेमें मुझे एक प्रकारका कष्ट होता था; पर केवल 'प्रकृति' की स्वाभाविक सुन्दरताका सुख भोगनेकी लालसासे ही मैं इस देहातमें जानेके लिए छुट्टियोंके दिन गिना करता था। मगर वहाँ पहुँचनेपर पहलेका ऐसा चाव नहीं रहता था—मित्रके बिना अकेले घूमनेमें वैसा आनन्द नहीं मिलता था। वही पहाड़ था, वही जंगल था, वही नदी थी, वे ही पेड़ और लतायें थीं, मगर मेरे हृदयका एक हिस्सा जैसे सूनसान रहता था; वह कभी किसी तरह पूरा नहीं होता था। तब मुझे बड़ा ही कष्ट होता था। तब मैं सोचता था कि अगर भोलानाथ मेरे पास होता तो आज मेरा हृदय यों सूना न रहता। तब मैं समझने लगा कि भोलाके बिना कुछ भी सुन्दर नहीं है।

मध्यप्रदेशके देहातमें, छुट्टियोंके समय, चलनेके लिए मैंने कई बार भोलाको न्यौता दिया, प्रार्थना की, मगर भोलाकी इच्छा रहने पर भी वह मेरी इच्छा पूरी न कर सका। इसके कई कारण थे। भोलाके माता पिता बचपनमें उसे छोड़कर स्वर्ग सिधार गये थे। उसके पिताकी कुछ जमीन थी। उसकी इतनी आमदनी थी कि उससे एक परिवारका मजेमें निर्वाह हो सकता था। कालेजकी जब छुट्टी होती थी तब भोला अपनी जमीनकी देखरेख करने चला जाता था। खासकर इसी कारणसे मैं भोलासे अपने यहाँ चलनेके लिए अधिक हठ नहीं करता था। क्योंकि केवल मन-बहलावके लिए अपने जरूरी कामको छोड़ना मैं अच्छा

नहीं समझता था। ऊपर लिखे हुए कारणके सिवा एक और भी कारण ऐसा था जिससे छुट्टीके समय भी भोलानाथ और कहीं नहीं जाता था। भोलानाथके एक बुआ थीं। वे बे-मातापिताके भतीजेपर अपने पेटसे पैदा हुई सन्तानसे बढ़कर प्यार करती थीं। भोलानाथके मरुभूमि-सदृश जीवनमें दयामयी बुआ ही स्वर्गीय स्नेहका सोता थीं। उनके पवित्र स्नेहकी सिंचाईसे भोलानाथका शोक-तापसे तपा हुआ हृदय शीतल हो जाता था—उसके कलेजेमें ठंडक पड़ जाती थी। यही कारण था कि कालेजसे छुट्टी पाते ही भोलानाथ अपनी बुआके पास जानेके लिए व्याकुल हो उठता था। इस कारणसे भी मैं भोलानाथसे अपने गाँव चलनेके लिए अधिक अनुरोध करके उसके इस सुखमें बाधा डालना नहीं चाहता था। भोलानाथ कालेजकी छुट्टियोंमें पहले घरपर जाकर जमीनकी देख-भाल करता था और वहाँसे छुट्टी मिलते ही वह बुआके यहाँ चला जाता था।

जिस गाँवमें भोलानाथकी बुआ रहती थी उसीमें उसके पिताके एक मित्र भी रहते थे। वह और उनकी स्त्री, दोनों, भोलानाथको बहुत ही प्यार करते थे। एक दफे गरमीकी छुट्टियोंमें मुझे भी भोलानाथके विशेष अनुरोधसे उसकी बुआके गाँव जाना पड़ा। वहाँ भोलानाथके पिताके मित्र मनोहरलालसे भी मुझसे मुलाकात हो गई। वे बड़े ही सज्जन थे; धनी और पढ़े-लिखे थे। उनका बरताव बहुत ही उदार था। उनके एक लड़कीके सिवा और कोई सन्तान नहीं थी। लड़कीका नाम था ललिता। उस समय उसकी अवस्था नौ या दस बरसकी होगी। कन्याका विवाह अभी नहीं हुआ था। मनोहरलाल इतनी थोड़ी उमरमें लड़कीका ब्याह करनेके लिए तैयार नहीं थे। कन्यापर बहुत ही अधिक स्नेहका होना ही उनके ऐसे इरादेका प्रधान

कारण था। ब्याह हो जानेपर लड़की दूसरेकी हो जायगी, दूसरेके घर चली जायगी, इसी चिन्तासे मनोहरलाल और उनकी स्त्रीने दो एक बरसके लिए यह काम रोक रक्खा था। लेकिन उन्होंने अपनी लड़कीके लायक लड़का ढूँढ़ रक्खा था। इसलिए इस बारेमें वे एक तरहसे निश्चिन्त ही थे। वह लड़का और कोई नहीं मेरे मित्र भोलानाथ ही थे।

मैं नहीं कह सकता था कि मनोहरलाल और उनकी स्त्रीके इस विचारकी बातको भोलानाथ और उसकी बुआके सिवा और कोई जानता था या नहीं। किन्तु भोलानाथसे जहाँ तक मुझे मालूम हुआ, ललिताको इसकी कुछ भी खबर न थी। ललिताके माता-पिता उसके ब्याहकी बात उसके सामने कभी उठाते ही न थे। और ललिताको मैंने जैसी सीधी सादी और पवित्र स्वभाववाली देखा, उससे मुझे यही जान पड़ा कि ब्याहका खयाल ही कभी उसे नहीं हो सकता।

पहले जिस रोज मैं अपने मित्र भोलानाथके साथ मनोहरलालके मकानपर गया तब उनकी बाहरकी बैठकमें जाकर देखा, वहाँ कोई न था। हम यह समझकर कि मनोहरलाल कहीं घूमने गये होंगे, लौटने लगे। इसी समय बैठकखानेसे मिले हुए बागमें देखा कि हरसिंगारके पेड़के नीचे बैठी हुई एक बालिका शान्तभावसे फूल चुन रही है। भोलाने उसे देखते ही पुकारा—“ललिता!” ललिताने एक बार दृष्टि उठाकर इधर उधर देखा, फिर भोलापर दृष्टि पड़ते ही वह बालिका आनन्दसे दौड़कर भोलाकी ओर चली। किन्तु भोलाके साथ मुझे देख-कर वह सहसा खड़ी हो गई और यह कहकर भीतर दौड़ी गई कि “जाना नहीं, मैं बाबूजीको बुलाये लाती हूँ।”

दम भरके बाद मनोहरलाल बाहरके बैठकखानेमें आये। उनके साथ उनका हाथ पकड़े हुए वह आनन्द और उमंगकी जीवित मूर्ति ललिता

भी थी। भोलाने मुझसे और मनोहरलालसे जान पहचान कराई, उसके बाद और और बातें होने लगीं। इसी बीचमें ललिता भोलाका हाथ पकड़कर स्नेहके साथ कहने लगी—"चलो, घरमें माताजी तुमको बुला रही हैं।" लड़कीके आग्रहको देखकर मनोहरलालने हँसकर कहा—"भोला, ललिताकी जिद देखते हो। जाओ भाई, जबतक तुम भीतर हो आओ; मैं देवदत्तजीसे बातचीत करता हूँ।" यों कहकर वे मुझसे बातचीत करने लगे।

ललिताको पहली ही बार देखकर उसके बारेमें कैसा खयाल हुआ, यही दिखानेके लिए मैंने इस घटनाका कुछ विस्तारके साथ वर्णन किया है। भोलाने इसके पहले ललिताके सम्बन्धमें बहुतसी बातें मुझसे कही थीं। ललिता कभी कभी माताके कहनेसे भोलानाथको चिट्ठी भी लिखती थी। उन चिट्ठियोंको देखकर मैंने मन-ही-मन कल्पनाकी सहायतासे ललिताका एक चित्र भी अंकित कर लिया था। इस समय अपना आँखोंसे ललिताको देखकर मुझे मालूम हुआ कि मैंने जिस प्रकारका चित्र खींच रक्खा था ललिता उससे भी अधिक अच्छी है।

मैं मनोहरलालके साथ साथ तरह तरहकी बातें कर रहा था, इसी समय भोलानाथ ललिताके साथ भीतरसे आ गये। मनोहरलालने भोलानाथको देखकर कहा—भोला, तुमने ललिताको जो 'पतिव्रता' नामकी पुस्तक भेजी थी वह इसने कहाँतक पढ़ी है, जरा पूछो तो। ललिता सुनते ही बोल उठी—मै वह किताब आदिसे अंततक पढ़ चुकी हूँ। मैं सीता और सावित्रीकी कथा माँको कई दफे पढ़कर सुना चुकी हूँ। यों कहकर ललिता उसी घड़ी भीतर दौड़ी गई और पुस्तक ले आई। बालिका आते ही उत्साहके साथ कहने लगी—इन सब कथाओंमें मुझे सीता और सावित्रीकी कथायें बहुत अच्छी लगती हैं। माँने कहा.

था कि यमराजको कोई वशमें नहीं कर सकता, मगर सावित्री बहुत अच्छी लड़की थी, यमराजने उसके स्वामीको छोड़ दिया। हाँ भैया, सावित्री क्या बहुत ही अच्छी लड़की थी? अच्छा, इस पुस्तकमें यह तो लिखा ही नहीं कि अच्छी लड़की किस तरह हो सकती है?

बालिकाके इस आग्रह और जाननेकी इच्छाको देखकर सबको बड़ा आनन्द हुआ। मैंने सोचा, अगर ललिता कभी मेरे मित्रकी स्त्री हो, तो सचमुच ही दोनों सुखी होंगे।

चौथा परिच्छेद।



भोलानाथको मैं एक बार भी मध्यप्रदेश नहीं ले जा सका। गरमीकी लम्बी छुट्टियाँ मुझे अकेले ही उस गाँवमें बितानी पड़ती थीं। मगर भोलानाथके बिना मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लगता था। भोलाको मैं हृदयसे चाहता था। इसी कारण मेरे हृदयमें उसके बिना इतनी बेचैनी होती थी—एक तरहकी भारी कमी जान पड़ती थी। भोलानाथकी एक चिट्ठीके लिए मैं दिनभर व्याकुल बैठा रहता था। जिस दिन चिट्ठी आनी चाहिए उस दिन चिट्ठी न मिलती थी तो मैं बहुत ही व्याकुल होता था—मुझे कुछ भी अच्छा न लगता था। मनकी प्रसन्नता न जाने कहाँ चली जाती थी। खाने पीने, सोने, घूमने, पढ़ने या बातचीत करनेमें—किसीमें—मुझे सुख नहीं मिलता था, तृप्ति नहीं होती थी। मुझे मनुष्यका संग विषके समान लगता था। ऐसे अवसरपर मैं सन्नाटेको ही ज्यादहतर पसंद करता था। सबेर अकेले ही जंगलके आसपास टहलता था; तीसरे पहर पहाड़के नीचे, पहाड़की एक बड़ी भारी चट्टानपर बैठकर न-जाने क्या क्या आकाश-पातालकी बातें सोचा

करता था। भोलाके पास न होनेसे हृदयमें एक प्रकारकी बड़ी भारी व्यथा होती थी। इसमें कोई सन्देह नहीं कि भोलाकी केवल चिट्ठी मिल जानेसे यह व्यथा बहुत कुछ घट जाती, मगर कठिनता तो यह थी कि वह चिट्ठी भी तो ठीक समय पर नहीं आती थी। कभी कभी भोलापर खीझता और 'मान' भी करता था। मगर फिर सोचता था कि कहीं भोलानाथ बीमार न हो गया हो! यह खयाल आते ही सारी खीझ और 'मान' न-जाने कहाँ रफूचक्कर हो जाता था। मैं झटपट भोलानाथको चिट्ठी लिखने बैठता था। उस चिट्ठीमें खीझ या 'मान' की छाया भी नहीं रहती थी। उसमें भोलानाथके कुशल-समाचार जाननेके लिए व्याकुलता ही रहती थी।

इसी तरह भोलानाथकी एक चिट्ठी न मिलनेसे मैं कभी कभी बहुत ही उदास और मुरदासा हो जाता था और कभी कभी उसके कुशल-समाचारकी एक चिट्ठी मिल जानेसे बहुत ही खुश होता था। मगर खुशीके बाद रंज और रंजके बाद खुशीका यह चक्कर देखकर 'सुख' के ऊपर मेरी श्रद्धा धीरे धीरे घटने लगी। सुखको मैं एक चंचल, न ठहरनेवाला, पदार्थ समझने लगा। मैंने देखा कि सुखपर ही जीवनका सारा दारमदार रख देनेसे किसी तरह कोई निश्चित नहीं रह सकता। मगर यह हृदय सुखके ही लिए 'लायँ लायँ' किया करता है। हृदयके भीतरसे हरघड़ी यही पुकार सुनाई पड़ती है कि—सुख कहाँ है? सुख कहाँ है? मुझे, संसारमें सच्चा सुख मिल सकता है, इस बात पर सन्देह होने लगा। मैं अपने माता पितापर कितनी भक्ति और श्रद्धा रखता हूँ, कितना प्यार करता हूँ, मेरे ऊपर उन्हें कितना स्नेह और दया है! मगर हाय, सोचनेसे भी हृदय काँप उठता है कि उनके स्वर्गीय स्नेहका सुख एक दिन मुझ अभागेको दुर्लभ हो जायगा।

भोलानाथ पर मैं कितना स्नेह रखता हूँ, उसपर स्नेह बढ़ानेमें मुझे कितना सुख मिलता है ! किन्तु हाय, देखा कि इस सुखके सागरमें भी 'ज्वार-भाटा' आया करता है। मैं अपने ब्याहकी चिन्ताको कभी हृदयमें स्थान नहीं देता था, मगर मैंने यह अनुमान अवश्य कर लिया था कि पति-पत्नीका सम्बन्ध भी हमारी इस पवित्र मित्रताके समान ही एक पदार्थ होगा। यही कारण था कि इस सुखपर भी लालसा रख-नेकी इच्छा नहीं होती थी।

माता पिता और मित्रके वियोगका जैसे खटका है वैसे ही स्त्री, पुत्र और कन्याके वियोगका भी तो खटका लगा हुआ है ! फिर ब्याह करनेसे क्या सुख है ? अस्थिर, दम करके सुखके ऊपर मुझे एक तरहकी अनिच्छा होने लगी।

भोलानाथ और मैं, दोनोंने इसी बीचमें एम० ए० की परीक्षा पास कर ली। हम दोनोंकी अवस्था इस समय लगभग इक्कीस बरसके हो गई थी। दोनोंने विशेष सम्मान और योग्यताके साथ परीक्षायें पास कीं। जबतक पढ़नेमें लगा हुआ था तबतक मैं संसारको बहुत ही सुन्दर और सुखसे भरा हुआ समझता था। ऐसे सुन्दर और सुखमय संसारमें प्रवेश करनेका समय निकट आ रहा है, यह सोचकर मैं आन-न्दके मारे खिल उठता था। मगर इधर धीरे धीरे मेरा मोह छूटता जाता था—धीरे धीरे संसारकी असली सूरत मेरी आँखोंके आगे स्पष्टरूपसे प्रकट होती जाती थी। मैं जो देख रहा था, उससे संसारके भीतर प्रवेश करनेकी कामनाकी कौन कहे, दरवाजेपरसे लौट आनेकी इच्छा ही दिनोंदिन बढ़ती जाती थी। संसारमें अगर सच्चा सुख न मिले, तो संसारमें प्रवेश करनेसे लाभ ही क्या है ? यदि संसारमें हृदयकी पूरी तृप्ति नहीं हुई तो यह संसार किस कामका ?

इसी गहरे प्रश्नने मेरे हृदयमें हलचल डाल दी। लोगोंके साथ रहकर इस प्रश्नका सन्तोषदायक निर्णय होनेकी कोई आशा न थी; इसीसे मैं अकेले एकान्तमें रहता था। मेरे चेहरेपर शायद सदा ही चिन्ताके चिह्न दिखाई पड़ते थे। यदि ऐसा न होता तो जो कोई मुझे देखता वही मेरी मनकी दशाके सम्बन्धमें तरह तरहके प्रश्न क्यों करता? परीक्षामें बड़ी योग्यताके साथ, अच्छे नम्बर पाकर मैं पास हुआ। इससे तो मुझे खुशी होनी चाहिए थी, फिर मैं सदा चिन्तित और उदास क्यों रहता था? कोई भी मेरे इस अपूर्व भावका कारण नहीं बतला सकता था। मगर मेरे पास-पड़ोसकी बड़ी बड़ी औरतोंने अनेक आन्दोलन और आलोचनाके बाद इस सम्बन्धमें एक बहुत अच्छा सिद्धान्त कर लिया था। उनके इस सिद्धान्तके अनुसार मेरी माताजी और पिताजीको वे पेट भर निन्दा करती थी। फल यह हुआ कि मेरे मातापिता मेरे लिए मेरे ही लायक एक सुन्दर लड़कीकी खोज करने लगे।

मेरी माताजी बहुत ही सीधे स्वभावकी थीं। वे मुझे उदास देखकर रोज मेरी इस चिन्ताका कारण मुझसे पूछा करती थीं। मैं पेट भरके खाता क्यों नहीं, उदासीनकी तरह अकेले जंगलमें घूमता क्यों फिरता हूँ, अपने साथियों मित्रोंके साथ हँसता-खेलता और बातचीत क्यों नहीं करता, भूतों और प्रेतोंके रहनेकी जगह पहाड़पर अकेले क्यों चढ़ा करता हूँ, जंगलके आसपास घूमना मुझे क्यों इतना पसंद है--इसी तरहके तिरस्कार और स्नेहके भरे हुए तरह तरहके प्रश्न करके वे मेरी उदासीका कारण जाननेकी चेष्टा करती थीं। मैं कुछ ठीक नहीं कह सकता था कि उनके इन प्रश्नोंका क्या उत्तर दूँ। समय समय पर मैं इसी प्रकारका उत्तर उनको दिया करता था कि बहुत दिनोंसे भोलाकी कोई चिट्ठी नहीं मिली; पहाड़पर चढ़ने और जंगलके किनारे घूमनेमें

मुझे बहुत आनन्द आता है; साथियोंसे मिलने जुलनेकी मुझे इच्छा ही नहीं होती। परन्तु उनका रंग-ढंग देखकर जान पड़ता था कि मेरे इन उड़ते हुए उत्तरोंसे उनको सन्तोष नहीं होता था। यह बात अवश्य थी कि उन्होंने मेरी उदासीका कारण यह नहीं समझ लिया था कि मैं अपने ब्याहकी चिन्तासे उदास रहता हूँ। वे अच्छी तरह जानती थीं कि ब्याहके नामसे मुझको एक प्रकारकी चिढ़ सी थी। इसी कारण वे मेरे सामने कभी ब्याहकी बात नहीं उठाती थीं। किन्तु इस समय उनकी ऐसी धारणा जरूर हो गई थी कि अब मेरा ब्याह हो जाना बहुत जरूरी है। उनको डर हो गया था कि अगर मैं संसारके बन्धनमें नहीं बाँध दिया जाऊँगा तो शायद फकीर या उदासीन हो जाऊँगा। कहना न होगा कि मेरे पड़ोसमें रहनेवाली बड़ी बूढ़ी औरतोंने उनकी इस धारणाको दृढ़ करनेमें कोई बात नहीं उठा रक्खी थी--उन्होंने इसके लिए भरसक यत्न और चेष्टा की थी।

मेरे ब्याहकी बातचीतकी कमी न थी। मगर मेरे माता-पिता और नातेदार लोग यह अच्छी तरह जानते थे कि कालेजकी पढ़ाई समाप्त करके अपनी जीविकाका उपाय निश्चित किये बिना मैं कभी ब्याह कर-नेके लिए राजी नहीं होनेका। पिताजीने इसी कारणसे अबतक मेरे ब्याहकी ओर उतना ध्यान नहीं दिया था। इस समय जब मेरे ब्याहके लिए और दस आदमियोंको नींद न आने लगी--उनका सिर दरद करने लगा--तब लाचार लोक-लज्जाके मारे उन्हें मेरे लिए एक सुन्दर और लायक लड़की ठीक करनेका निश्चय करना पड़ा। अपने साथियोंके मुँहसे मुझे यह खबर सुननेको मिल गई। सुनकर मेरे हृदयमें दुःख, खीझ, और हास्यरसकी एक विचित्र लीला शुरू हो गई। किन्तु हाय, मेरे हृदयकी गहरी बेचैनी और उदासीका असली कारण मुझको मालूम

नहीं था। मैंने वह 'कारण' किसीसे कहा भी नहीं। जिस किसीसे कहनेमें लाभ ही क्या था? उसे समझता ही कौन? और अगर समझता हो तो मेरे हृदयके संशयोंका जाल कौन काट सकता था? कह नहीं सकता कि केवल अन्तर्यामी भगवानके सिवा और भी कोई मेरे हृदयकी बेचैनीका हाल जानता था या नहीं। मगर मैंने यह समझ लिया कि उस महापुरुषके सिवा और कोई भी मेरे भारी कठिन प्रश्नोंको हल नहीं कर सकता। धीरे धीरे उसी ईश्वरपर मेरी श्रद्धा बढ़ने लगी--मुझे भरोसा होने लगा।

मेरी इस गहरी उदासीने भोलानाथके प्रसन्न हृदयपर भी अपनी छाया डाली थी, क्योंकि हम दोनोंका हृदय एक था। भोला जानता था कि मैं स्वभावसे ही गंभीर हूँ, किन्तु यह भी वह अच्छी तरह जानता था कि मेरे उदास रहनेका कोई कारण नहीं है। इस दफे मध्यप्रदेशमें आने पर मेरे हृदयमें जिस भारी प्रश्नने हलचल डाल रक्खी थी, उसकी एक आध लहरने भोलाके हृदयमें भी पहुँचकर ठोकर मारी थी। भोलाने मुझसे मेरी इस उदासीका कारण एक चिट्ठीमें पूछा था और मैंने भी उसके उत्तरमें एक लम्बी चौड़ी चिट्ठी उसको लिखी थी। उस चिट्ठीमें मैंने सब बातें खुलासा करके लिखी थीं। मैंने उसको यह बतलाया था कि मेरा हृदय इस संसारमें प्रेम और सुन्दरताके लिए कितनी चाह रखता है। मगर इसके साथ ही उसको यह भी जताया था कि मेरी यह प्रेम और सुन्दरताकी तृष्णा जगतके किसी पदार्थसे नहीं बुझती और शायद कभी बुझेगी भी नहीं। जगतके प्रेममें विछोह है; जगतकी सुन्दरतामें कमी है; अर्थात् वह पूर्ण नहीं है। हृदयको उससे तृप्ति नहीं होती--जी नहीं भरता। इसीसे जोशकी हालतमें मैंने उसे लिखा था कि "मैं इस जगतके किसी खण्डित रूप या सुन्दरतामें निमग्न

होना नहीं चाहता—उसमें डूबकर अपनेको गवाँना नहीं चाहता। मैं एक अनन्त सुन्दरताके सागरमें डूबना चाहता हूँ। मैं उसमें अपनेको मिलाकर तन्मय हो जाना चाहता हूँ। उस रूपके सागरमें—उस सुन्दरताकी अनन्त खानिमें—तन्मय हुए बिना किसी तरह किसी चीजसे मेरी तृप्ति नहीं हो सकती। जीवनमें मुझे शान्ति नहीं मिल सकती। जहाँपर सारी सुन्दरता जाकर जमा हुई है, जहाँपर सारी पवित्रता इकट्ठी हुई है, हाय, उस स्थानमें मैं कब पहुँचूँगा? उसे देखकर मैं अपने जन्मको सफल कब बना सकूँगा? आहा, वह कैसी शान्तिका मन्दिर है! वह कैसे अनन्त प्रेमका भंडार है! उस प्रेममें बिछोह नहीं है, उस आनन्दमें कोई शङ्का नहीं है, उस संभोगमें विलास या शौकीनी नहीं है। हे जगदीश्वर, कब मुझे उस स्थानमें ले जाओगे?"

पाँचवाँ परिच्छेद।



मध्यप्रदेशसे मेरा जी ऊब उठा। मेरी उदासीके रोगकी दवा करनेके लिए तो सभी उद्योग कर रहे थे; मगर अनाड़ी वैद्यकी तरह कोई भी मेरे रोगका असली कारण नहीं समझ सकता था। चारों ओर अपने ब्याहहीकी चर्चा सुनते सुनते मैं खीझ उठा। अब सूनसान जंगलमें, पहाड़पर, झरनोंके पास, कहीं भी मुझे सुख नहीं मिलता था। गरमीकी छुट्टियाँ बीत गईं और कालेज खुलनेका समय आगया। अब मुझे कानून पढ़नेके लिए फिर प्रयाग जाना होगा। ठीक समय मैं प्रयाग पहुँचा। प्रयागमें मैं कभी कभी अपनी बाइसिकिलपर चढ़कर भोलानाथके साथ त्रिवेणीके किनारे हवा खाने जाता और घंटों किनारे

बैठा बैठा चुपचाप सोच विचार किया करता था; यहाँ तक कि भोला-नाथसे भी अधिक बातचीत करनेको जी नहीं चाहता था। भोलानाथ मेरे मनकी अवस्था जानता था, इसलिए वह मेरे मनमें शान्ति लानेके लिए—मुझे प्रसन्न बनानेके लिए—तरह तरहकी बातें करता था। इसमें सन्देह नहीं कि भोलानाथके साथ रहनेसे मुझे बहुत कुछ सहारा मिलता था, मगर हृदयके भीतर अशान्ति—बेचैनी—की आग सुलगा ही करती थी।

भोलानाथने एम० ए० की परीक्षा पास करके उसी कालेजमें प्रोफे-सरीकी नौकरी कर ली। मैं आईन पढ़ने लगा। मैंने यह नहीं सोचा कि क्यों कानून पढ़ता हूँ, कानून पढ़कर क्या करूँगा? कानून पढ़ना होता है, इसी कारणसे मैं कानून पढ़ने लगा। मैं रोज लॉ-कालेजमें जाता था; मगर वहाँ किस चीजकी पढ़ाई होती है, इसकी मुझे कुछ खबर न थी। प्रोफेसर साहब जब आकर पढ़ाना शुरू करते थे तब हजार चेष्टा करनेपर भी मैं पुस्तकमें मन नहीं लगा सकता था। उस समय मेरा मन उस कालेजको छोड़कर न जानें कहाँ भागा भागा फिरता था; मैं भी उसका पीछा करता करता दमभरमें अनेक देशोंकी सैर कर आता था। प्रोफेसर साहब क्या बतला रहे हैं, पढ़नेवाले क्या पूछ रहे हैं, किसी ओर मेरा ध्यान नहीं था। प्रोफेसर साहब कभी कभी 'पाठ' से अलग किसी अद्भुत प्रसंगको छेड़कर हँसते हँसाते थे और सब लड़के उसमें उनका साथ देते थे। उनकी हँसीसे कभी कभी मेरी नींदसी खुल जाती थी, मैं चौंक पड़ता था और उनकी इस हँसीका कोई कारण न समझ सकनेके कारण मानों झेंपकर सिर झुकाये बैठा रहता था। इस आफतसे अपनेको बचानेके लिए मैं अकसर सबके पीछे बैठा करता था। मेर सहपाठियोंमेंसे कभी किसीने मुझे उस स्थानसे उठाकर आगे बिठलानेकी चेष्टा नहीं की। इसमें सन्देह नहीं

कि उनकी इस उदारताके लिए मैं उनका सदा कृतज्ञ रहूँगा—एहसान मानूँगा।

दिन भरमें मुझे केवल एक घंटेके लिए कालेज जाना पड़ता था। वह घंटा इस तरह बिताकर मैं अकसर दिन भर अपने कमरेमें किवाड़ बन्द किये रहता था। भोलानाथ तीसरे पहर जब कालेजसे पढ़ाकर आते थे तब कुछ देर उनके साथ बातचीत होती थी, या त्रिवेणीके किनारे घूमने जाना होता था। और जो समय बचता था उसमें मैं केवल पुस्तकें पढ़ा करता था। मगर वे पुस्तकें कानूनकी नहीं थीं। फिर मैं क्या पढ़ता था? मुझे संस्कृत और अँगरेजीकी दो पुस्तकें बहुत अच्छी लगती थीं। अँगरेजीमें कविवर 'वर्ड्सवर्थ' की रचना और संस्कृतमें आदिकवि वाल्मीकिकी रामायण। इन दोनों पुस्तकोंकी भाव-पूर्ण रचना पढ़कर मेरे हृदयमें भावका सागर लहराने लगता था। दोनों ही कवियोंका जीवन निर्मल और पवित्र था। दोनों ही धर्मात्मा थे; इस कारण उनकी रचनामें धर्मका भाव भरा हुआ है। दोनोंहीके काव्यमें एक पूर्ण आदर्शके लिए अतृप्त आकांक्षा देख पड़ती है। दोनोंके हृदयकी बालकोंकी ऐसी सरलताने मुझपर जादूसा कर रक्खा था। मैं महर्षि वाल्मीकिके साथ वर्ड्सवर्थकी तुलना नहीं करता। वाल्मीकिकी बराबरी वर्ड्सवर्थ क्या, संसारका कोई भी कवि नहीं कर सकता। मेरा कहनेका मतलब यही है कि वाल्मीकि और वर्ड्सवर्थकी कविता पढ़कर मैंने दोनों सज्जनोंको एक ही राहका यात्री समझा था। पूर्ण आदर्श, सुन्दरता और पूर्ण पवित्रताकी ओर दोनोंका ही लक्ष्य था। दोनों ही उस सत्य, सुन्दर, एक, अद्वितीय महापुरुष (परमेश्वर) को अपनी आराधनाकी वस्तु—अपना इष्ट समझते थे। इसीसे वे दोनों उसी परमेश्वरको आदर्श कवि—एक अद्वितीय महाकवि समझते थे जिसकी

अपूर्व रचना यह विश्व ब्रह्माण्ड है; जिसकी कविताशक्ति इन साधारण पेड़ोंके पत्तोंमें, घास-फूसमें, बालूकी रेतीमें दिखलाई पड़ती है; जिसकी सुन्दरताका एक किनका भी हृदयमें पानेसे मनुष्यका मन मोहित हो जाता है—फिर उसे और सुन्दरताकी चाह नहीं रहती । इसीसे ऊपर लिखे दोनों कवियोंने उसी महाकविकी अपूर्व रचनाको पढ़ते पढ़ते ही अपने जीवनको बिताया और धन्य बनाया । इसीसे उन्होंने निर्जन जंगलमें और पहाड़ी भूमिमें रहकर शान्ति प्राप्त की और दिव्य आनन्दका अधिकारी बनकर अपने जन्मको सफल बनाया । वाल्मीकि तो महर्षि ही थे; किन्तु वर्डसवर्थ भी ऋषिमुनियोंके सदृश जीवन बिताकर इस पापमय कलियुगमें अपनी कीर्ति पृथ्वीपर स्थापित कर गये हैं । इसमें कोई सन्देह नहीं । मैं इन दोनों ही महापुरुषोंकी उपासना करने लगा । दोनोंहीके काव्य पढ़नेसे मेरे हृदयको पवित्र आनन्द प्राप्त होता था । मेरा संशय और सन्देहका जाल धीरे धीरे कटने लगा । प्रकाशकी दिव्य ज्योतिसे मेरा हृदय भर गया; सारा अज्ञानका अन्धकार उड़ गया । मैंने मनमें संकल्प किया कि मैं इस दुर्लभ मनुष्यजन्मको व्यर्थके कामोंमें नहीं गवाँऊँगा । जिस कामसे आत्माको प्रसन्नता या उत्साह नहीं, उस कामको मैं कभी न करूँगा । इस संसारके धन, मान, यश, ऐश्वर्य आदि किसी पदार्थको मैं श्रेष्ठ नहीं समझूँगा । उन्हीं परमप्रकाश परमेश्वरको मैं अपने जीवनका लक्ष्य बनाऊँगा । अपने आत्माके आनन्दके लिए मैं और सबको छोड़ दूँगा । सुन्दरता और पवित्रताके एक मात्र आधार उन परमेश्वरके ही ध्यान, विचार और सेवामें इस जीवनको अर्पण कर दूँगा । जब मैंने इस प्रकार अपने जीवनका लक्ष्य ठीक कर लिया तब मुझे कुछ चैन पड़ी; कुछ कुछ शान्तिके सुखका अनुभव होने लगा ।

छट्ठा परिच्छेद।



परमेश्वरकी उपासनाके सिवा आत्माको तृप्ति नहीं होती—शान्ति नहीं मिलती। उसकी कृपा प्राप्त करना ही इस मनुष्यजन्मका लक्ष्य है। यह बात मुझे मालूम तो हो गई, किन्तु संसारके कोलाहलमें चित्त चलायमान होनेसे कभी कभी मैं अपने लक्ष्यसे भटक जाता था। भटकते ही दुनियाके झगड़े धीरे धीरे मेरे मनपर अपना अधिकार जमाने लगते थे। मगर संसारके खेल-तमाशोंमें आत्माकी तृप्ति नहीं होती थी। बस, इसी कारण मुझे सच्चा सुख नहीं मिलता था। ऐसी हालतमें, खाने-पीने, सोने-पढ़ने या बातचीत करनेमें—किसी काममें—मेरा मन नहीं लगता था; मुझे आनन्द नहीं मिलता था। हजार हजार चेष्टा करने पर भी मैं मनको निर्मल और संसारके मोहको दूर नहीं कर सकता था। मोह मानों मेरे मनसे लिपटा रहता था। जैसे कुहरेमें कोई चीज साफ नहीं देख पड़ती, वैसे ही मोहमें किसी भी चीजका यथार्थ रूप साफ नहीं देख पड़ता था। उस समय मुझे बड़ा कष्ट होता था। ऐसा कष्ट होता था कि कभी कभी वह असह्य हो उठता था। तब एकान्तमें सन्नाटेमें बैठकर या तकियेमें मुँह छिपाकर मैं रोता था और ईश्वरको पुकारता था। कुछ देरके बाद हृदय परसे दुःखका—कष्टका—बोझा मानों हलका हो जाता था, मोहका कुहरा मानों कट जाता था, और हृदयमें मानों उस परमेश्वरकी कृपाके समान शान्ति भर जाती थी। आँधी पानी और तूफानके बाद, दुर्दिनके अन्तमें, जैसे निर्मल आकाशमें उज्ज्वल सूर्यके निकल आनेसे पृथ्वी मानों हँसने लगती है, वैसे ही, प्रार्थना करनेके बाद, दुर्दशामें पड़े हुए मेरे हृदयका भी हाल होता था। हृदयके इस

शान्त, कोमल और पवित्र भावको बनाये रखनेके लिए मैं तरह तरहकी चेष्टायें करता था; किन्तु कोई भी उपाय काम न आया। मैंने देखा कि प्रार्थना या ईश्वरका ध्यान ही इसका एकमात्र उपाय है। तभीसे मुझे ईश्वरकी प्रार्थनाका माहात्म्य मालूम हुआ। जब मेरे मनमें मोहका अँधेरा या कुहासा जमने लगता था, तब मैं परमेश्वरसे कृपाकी प्रार्थना करने लगता था। परमेश्वरकी कृपासे वह अन्धकार न जाने कहाँ भाग जाता था। मैंने समझ लिया कि प्रार्थना ही आत्माकी जीवनी शक्ति है।

इसके बाद मेरे मनकी हालत भी कुछ कुछ बदलने लगी। स्वाभाविक सुन्दरताकी लालसा मेरे मनमें वैसी ही प्रबल बनी रही। मगर बात यह हो गई कि मन प्रसन्न और पवित्र न रहने पर कुछ भी अच्छा नहीं लगता था। केवल स्वाभाविक सुन्दरता ही नहीं, मनकी प्रसन्नता और पवित्रताके विना वाल्मीकि-रामायण और वर्ड्सवर्थकी मधुर कविता भी अच्छी नहीं लगती थी। भगवानकी उपासना द्वारा मनको पवित्र और निर्मल बनाये विना उसमें किसी तरह दिव्य सुन्दरताकी झलक नहीं आती थी। पहले मैं सुन्दरताको देखते ही उसपर मोहित हो जाता था; मगर अब वैसी अवस्था नहीं रही। अब हर हालतमें सुन्दरताको पाकर हृदयको तृप्त करना मेरे लिए बहुत ही कठिन हो गया। मैंने मैले हृदयसे जब सुन्दरताका सुख भोगनेकी चेष्टा की, तभी मेरे हृदयने विरोध किया—उसमें भारी हलचल मच गई। जब मैंने ऐसी चेष्टा की तभी किसीने मेघके सदृश गंभीर स्वरसे मुझे चौकन्ना कर दिया। उस शब्दको सुनते ही मेरा हृदय धड़कने लगता था, देह काँपने लगती थी; उस समय आँखोंसे झरझर करके आँसू बहने लगते थे और संसार मुझे अन्धकारमय दिखाई पड़ने लगता था। किन्तु भगवानकी उपासनाके द्वारा हृदय निर्मल होने पर बाहरी 'प्रकृति' में

सहज ही अपूर्व सुन्दरता दिखाई पड़ती थी। जल, स्थल और शून्यमें सब जगह, परमेश्वरकी कृपा दिखाई देती थी। उस समय मैं वर्ड्सवर्थकी अमृतमयी कविता पढ़कर आनन्द पाता था। महर्षि वाल्मीकिकी सुन्दरताकी सृष्टिमें मैं मोहित हो जाता था। वेदके पाठसे गूँजते हुए उनके दण्डकारण्य वनकी मनोहर शोभा और पवित्रताका वर्णन पढ़कर मैं आनन्दमें मग्न हो जाता था। जगतकी शोभा सीता देवी, भगवान् रामचन्द्र और महात्मा लक्ष्मणके अलौकिक चरित्रपर विचार करते करते मैं अपने हृदयके नेत्रोंसे मानों स्वर्गराज्यकी अस्पष्ट छाया देखने लगता था। मैं कहता था—

> ओछे जन मानत सदा, निज परको व्यवहार।
> अपनो सब संसारको, जानत लोग उदार॥

उस समय मोहमुग्ध मनुष्यका व्यर्थका कोलाहल कानोंमें शूल सा लगता था। जगतका मान, धन, ऐश्वर्य बहुत ही तुच्छ जँचता था। खीझ, क्रोध और अभिमान न जानें कहाँ छिप जाता था। उस समय शत्रु मित्रका ज्ञान नहीं रहता था। सभीको भाई समझकर गले लगानेको जी चाहता था। तब मैं सोचता था कि सबके दरवाजोंपर यह आनन्द और शान्तिका समाचार पहुँचाऊँगा। सबसे पवित्र होनेको कहूँगा। सबको उस महान् परमेश्वरके चरणोंका आश्रय लेनेके लिए उपदेश दूँगा। इसी प्रकार ऊँचे भावमें डूबकर मैं बीचबीचमें 'देश' और 'काल' को तथा अपनेको भी भूल जाता था। ऐसी हालतमें मुझे भूख और प्यास नहीं मालूम देती थी। हाथकी पुस्तक हाथमें ही रह जाती थी। किसीके पास आने पर भी उसकी खबर मुझे नहीं होती थी।

उपासना, अच्छे विचार और अच्छे ग्रन्थोंका पढ़ना ही इस समय मेरा दिनरातका काम हो गया। मैं अपना बहुत सा समय तो अपने

देशके और अन्य देशोंके साधु, महात्मालोगोंके चरित्र और पुस्तकें पढ़नेहीमें विताता था। हमारे देशके ऋषियोंकी रचनामें गीता और उपनिषदोंको पढ़कर जो निर्मल आनन्द मुझे मिलता था वह आनन्द, सच तो यों है कि वाल्मीकिकी रामायण और वर्ड्सवर्थकी कविता पढ़नेमें भी नहीं आता था। जबतक मेरा मन गीता और उपनिषदोंके महाभावमें मग्न रहता था तबतक मुझे और कुछ भी अच्छा नहीं लगता था। निर्मल आकाशमें पूर्ण चन्द्रमाका उदय होने पर जैसे प्रकाशमान नक्षत्र और तारागण दृष्टिको अपनी ओर नहीं खींच सकते, वैसे ही गीता और उपनिषदोंके भारी भावमें मग्न होने पर वाल्मीकि या वर्ड्सवर्थकी कविता भी मेरे मनको अपनी ओर नहीं खींच सकती थी। हाँ और समय, अर्थात् जब मैं संसारके कोलाहल और अन्धकारमें डूब जाता था उस समय, वाल्मीकि और वर्ड्सवर्थकी रचनायें ही मेरे हृदयरूपी आकाशमें उज्ज्वल नक्षत्रकी तरह सुशोभित होती थीं।

जो कुछ हो, भगवान्‌की कृपासे मुझे अपने आगे बढ़नेकी राह दिखाई दी। मेरा लक्ष्य भी ठीक हो गया। उसीके अनुसार मैं अपना नित्यका कामकाज करनेके लिए तैयार हुआ।......

सातवाँ परिच्छेद ।



परमेश्वर ही जब जीवनका लक्ष्य हो गया तब जीवनके सब काम भी एक प्रकारसे ठीक हो गये। मैंने कानून पढ़ना छोड़ दिया। वकील, बैरिस्टर होनेसे अकसर सत्यकी राहसे डिगना पड़ता है। कमसे कम मुझे तो यही विश्वास हो गया। सत्य ही परमेश्वर है। मैंने निश्चय कर

लिया कि परमेश्वरकी उपासना करनेकी इच्छा रखनेवालेको सब समय सबसे पहले शुद्ध सत्यकी उपासना ही करनी चाहिए। किन्तु स्वाधीनताके बिना सत्यकी उपासना नहीं हो सकती। इसी कारण मैं स्वाधीनता पानेके लिए व्याकुल हो उठा। स्वाधीनतासे यहाँ मेरा मतलब मन और आत्माकी स्वाधीनतासे है। जीविकाके लिए दूसरेकी गुलामीको ही मैं इस स्वाधीनताको पानेकी राहमें प्रधान विघ्न समझता हूँ। इसीसे मैंने निश्चय कर लिया कि मैं जीविकाके लिए किसीकी नौकरी (चाहे वह घंटे भरके लिए ही हो, वकालत और बैरिस्टरीमें भी एक प्रकारकी नौकरी करनी पड़ती है) नहीं करूँगा। फिर मैं जीविकाके लिए क्या उपाय करूँगा? मेरी ही जीविकाकी मुझे फिक्र थी। क्योंकि माता-पिताको मेरी कमाईकी जरूरत नहीं थी। मेरे बड़े भाई सब एम० ए०, बी० ए०, पास थे और ऊँची ऊँची सरकारी नौकरियोंपर थे। इस लिए उन्हें भी मेरी कमाईकी जरूरत नहीं थी। मेरा अभी ब्याह नहीं हुआ था और मैंने इरादा कर लिया था कि हो सका तो मैं जन्म-भर ब्याह नहीं करूँगा। बस मुझे, अपनी ही चिन्ता थी। परमेश्वरकी कृपासे उसके लिए भी एक उपाय हो गया। विश्वविद्यालयकी एक परीक्षामें औवल नंबरपर पास होनेके कारण मुझे कई हजार रुपये इनाममें मिले। पिताजीने मेरे अनुरोध करने पर, उसी रुपयेकी मेरे नामसे कुछ जमीन खरीद दी। उस जमीनकी सालाना बचत ६०० रुपये थी। यही मेरी आमदनी हुई। इतनी ही आमदनी लेकर मैंने संसारमें प्रवेश किया।

कहना न होगा कि मेरे पिताजी, माताजी और मेरे बड़े भाइयोंने मेरे इस इरादेकी बात सुनकर मुझे इस विचारसे फिरानेके लिए भरसक बड़ी कोशिश की। लेकिन मैं जो निश्चय कर चुका था, उसपर मुझे

अटल देखकर वे दुःखके साथ चुप हो रहे। अगर मैं उनको सुखी बना सकता तो इसमें कोई सन्देह नहीं कि मुझे भी बड़ी ख़ुशी होती। किन्तु मेरे संकल्पके सिद्ध होनेका और कोई उपाय न होनेके कारण लाचार मुझे अपनी ही इच्छाके अनुसार काम करनेके लिए तैयार होना पड़ा। यहाँपर यह कह देना जरूरी है कि मैंने अपने पिताजीको अपनी अभिलाषा या इरादा सब सुना दिया था। वे बहुत ही समझदार, पढ़े लिखे और उदार थे। उन्होंने सब सुनकर कोई आपत्ति नहीं की। केवल माताजीको ही मैं किसी तरह समझा नहीं सका। यह जानकर वे रोने लगीं कि मैं अभी ब्याह नहीं करूँगा और अपने बड़े भाइयोंकी तरह किसी ऊँची नौकरीके पानेकी चेष्टा नहीं करूँगा। उनको रोते देखकर मुझे बड़ी ही व्यथा हुई। मैं उन्हें तरह तरहसे समझाने और धीरज बँधाने लगा, मगर इस विश्वासको मैं किसी तरह उनके हृदयसे नहीं हटा सका कि अगर मैं ब्याह नहीं करूँगा तो किसी समय साधु-संन्यासी हो जाऊँगा।

तब मैंने उनसे कहा—" माताजी, तुम बेखटके रहो; मै साधु या संन्यासी नहीं होनेका। ब्याह करनेमें मुझे इनकार नहीं है। लेकिन अभी ब्याह करनेकी मेरी इच्छा नहीं है। इस समय अगर तुम जबरदस्ती ब्याह कर डालोगी तो मैं हमेशाके लिए दुखी हो जाऊँगा। मैं तुम लोगोंको छोड़कर कहीं नहीं जाऊँगा; इस गाँवके पास ही मैंने जो जगह खरीदी है वहीं मैं एक घर बनवाऊँगा। वहीं रहूँगा। मगर तो भी नित्य तुम्हारे चरणोंके दर्शन करने आऊँगा और सेवा करूँगा। पहले समयमें इस देशके लोग आश्रमोंमें तप करके जीवन बिताते और कृतार्थ होते थे। उसी देशमें मैंने भी जन्म लिया है। मैं अगर अपने जीवनमें इतनी भी साधना न कर सका—इतना भी सुख और

स्वाधीनताको भोग न सका तो, तुम्हीं बताओ, कैसी लज्जा और पछतावेकी बात होगी ?"

इतना कहकर मैं उनके निकट आर्य लोगोंकी कीर्तिका बखान करने लगा। मैंने आर्या गार्गी और मैत्रेयीका वर्णन किया और अन्तको उनसे मना न करनेके लिए प्रार्थना की। माताजी मुझपर बहुत ही स्नेह रखती थीं। इसी कारण वे मेरी प्रार्थनाको टाल नहीं सकीं। मगर यह बात बारबार कहने लगीं कि "मेरी बड़ी इच्छा है कि मैं अपने जीतेजी तुम्हारे ब्याहका सुख देख लूँ।"

मैंने भोलानाथसे भी अपना इरादा जाहिर कर दिया। भोलाने भी पहले मेरे इस काममें कुछ रुकावट डालनेकी चेष्टा की थी; लेकिन अन्तको उसने भी मेरे इरादेको पसंद कर लिया। इस तरह चारों ओर राह साफ होने पर, मैंने पिताजीकी आज्ञा लेकर, अपनी चुनी हुई मनोहर जगहमें एक मकान बनवाया। उस स्थानका नाम मैंने रक्खा 'शान्ति-कुटीर'। मेरे इस मकानके पास ही श्याम शोभावाले ढाकके पेड़ोंका जंगल था। पास ही एक छोटासा गाँव भी था। उस गाँवका नाम 'शान्तिपुर' था। उस गाँवमें रहनेवाले अधिकतर सीधे सादे किसान थे। मगर उसमें कई घर ब्राह्मणोंके भी थे। और जातियोंके भी कई घर थे। उस गाँवके रहनेवाले लोग मुझे पड़ोसमें रहते देखकर बहुत ही खुश हुए। मैंने एक अच्छे मुहूर्तमें देवपूजन करके नये घरमें प्रवेश किया।

आठवाँ परिच्छेद।



मैंने एक बहुत ही सुन्दर और मनोहर स्थानपर अपनी कुटी बनवाई थी। मेरे पिताजीने जिस गाँवमें अपने रहनेका प्रबन्ध किया था उस गाँवसे लगभग एक मीलके फासलेपर एक लम्बा चौड़ा मैदान था। उस मैदानके उत्तर ओर एक काले पत्थरकी छोटीसी पहाड़ी थी। पहाड़ीके ऊपर दो एक ढाकके पेड़ों और जंगली लताओंके सिवा और कोई हरियाली नहीं थी। जान पड़ता है, बहुत पहले वह पहाड़ी एक समूचा बड़ा भारी पत्थर रहा होगा; मगर अब वह किसी विचित्र कारणसे, बीचसे, दो टुकड़े हो गया था। इस पहाड़ीकी जड़में और चारों ओर दूरतक बड़े बड़े काले पत्थरोंके ढोके तहकी तह सजे हुए थे। देखनेसे जान पड़ता था कि जैसे किसी चतुर कारीगरने उस जगहकी शोभा बढ़ानेके लिए बड़े यत्नसे इन पत्थरोंको सजाया है। काले पत्थरोंके टुकड़े और काले पत्थरोंके ढूह चारों ओर फैले हुए थे। उनसे वह स्थान कुछ भयानक भी जान पड़ता था। दूरसे देखनेपर जान पड़ता था कि, झुंडके झुंड जंगली हाथी मनमाने ढंगसे लेटे और बैठे हुए विश्रामका सुख भोग रहे हैं—आराम कर रहे हैं। वहाँ ढाकके पेड़ोंके सिवा और कोई पेड़ नहीं थे। झरनोंसे निकली हुई एक छोटीसी पहाड़ी नदी भी किसी अनजाने निर्जन स्थानसे निकल कर उस पहाड़ीके पैरोंको धोती हुई थोड़ी दूर पर श्यामरंगके जंगलमें जाकर गायब हो गई थी। उसके बिल्लौरकी तरह चमकीले जलकी धारा उमंगसे उछल उछल कर, नाच नाच कर, इस पत्थरसे उस पत्थरपर फाँदती हुई एक प्रकारके मधुर गीतकी सृष्टिसी कर रही थी। वह मैदान पहाड़ीकी जड़से ढालू

होता हुआ दक्षिणकी ओर फैला हुआ चौड़ा होता चला गया था। यह मैदान जंगली पेड़ोंसे परिपूर्ण था, किन्तु पेड़ घने नहीं थे। पेड़ोंमें साखूके ही पेड़ अधिक थे। इधर उधर और और जंगली पेड़ भी बहुत से थे। जहाँ कुछ साफ जगह थी वहाँ कुछ एक घनी छाँहवाले, बड़ी बड़ी डालियोंवाले, वृक्ष भी देख पड़ते थे। वह मैदान सब मिलाकर ४०० बीघेमें था। उसके उत्तर ओर ऊपर लिखी हुई काली पहाड़ी और ढाकके पेड़ थे। पश्चिम ओर वही पहाड़ी नदी और घना जंगल था। दक्षिण ओर भी वही, घूमती हुई नदी और जंगल था। पूर्व ओर एक देहाती कच्ची सड़क थी। उस सड़कके पास ही शान्तिपुर नामका एक छोटासा गाँव बसा हुआ था, जिसका जिक्र पहलेके परिच्छेदमें आ चुका है।

उस देहाती सड़कके पश्चिम ओर लगभग ५० बीघा जमीन, जिसमें पहले जंगल था, अब जंगल काटकर साफ कर दी गई थी और उसमें जो पेड़ मतलबके और सुन्दर थे वे नहीं काटे गये थे। उन छूटे हुए मनोहर वृक्षोंने उस स्थानकी सुन्दरताको सौगुना बढ़ा दिया था। मैंने इसी जगहको पसन्द किया और वहींपर मेरा घर बनाया गया। घरका नाम 'शान्ति-कुटीर' रक्खा गया। नाम मैंने अपनी रुचिके अनुसार ही चुनकर रक्खा था। शान्तिकुटीरका द्वार दक्षिण ओर था। उसके बाईं ओर पास ही कच्ची सड़क और शान्तिपुर गाँव था; दाहिनी ओर कुछ हाथके फासले ही पर साखूके पेड़ोंकी कतारें थीं। सामने कुछ दूरपर पहाड़ी नदी और जंगलसे ढकी हुई जमीन थी। नदीके उस किनारे भी श्यामरंगका जंगल था। शान्तिकुटीरसे पीछे भी साखूका जंगल और वह काली पहाड़ी थी। शान्तिकुटीरसे कुछ ही फासले पर बड़े बड़े

वृक्षोंसे सुशोभित वह साफ मैदान था। केवल पश्चिम ओर साखूका जंगल बिलकुल सटा हुआ था।

मेरा वह घर पक्की ईंटोंसे बनाया गया। एक बड़ा परिवार जिसमें मजेसे रह सके, इसी विचारसे ऐसा ही वह घर पिताजीने बनवाया। मगर मुझे इतने बड़े घरकी जरूरत या इच्छा नहीं थी। मकान दो खण्डका बना। दुमंजिलेपर भी कई कमरे बने। ऐसी ऊँची धरतीपर दुमंजिले मकानकी कोई जरूरत न होने पर भी मैंने इसलिए इसमें कोई आपत्ति नहीं की कि दूसरे खण्डपरसे चारों ओरकी स्वाभाविक सुन्दरताकी सैर खूब मजेमें हो सकेगी। दूसरे खण्डके एक कमरेमें मैंने अपना पुस्तकालय बनाया। उस कमरेमें अँगरेजी, हिन्दी और संस्कृतकी पुस्तकें सिलसिलेसे सजा दी गईं। उस कमरेमें बैठकर तीनों ओरके दरवाजे खोल देनेसे वहीं बैठे बैठे चारों ओरकी प्रकृतिकी विचित्र शोभा देखनेको मिलती थी। कितने ही ऐसे जंगली पक्षी, जिनका नाम मुझे मालूम न था, घरके पासवाले पेड़ोंकी डालों-पर बैठकर बेखटके अपनी मीठी मीठी बोलियोंसे अमृतकी वर्षा किया करते थे। जंगली कबूतरोंकी 'गुटुरगूँ' से वह स्थान सदा गूँजता रहता था। कभी एक हिरनका बच्चा सहसा आँखोंके आगे आकर बिज-लीकी तरह चमककर गायब हो जाता था; कभी कोई खरगोश बेखटके बिलसे बाहर निकलकर छोटे छोटे पेड़ोंकी पत्तियाँ चबाता था। दूर-परके घने जंगलसे कभी कभी मोरोंका मनोहर शब्द भी सुनाई पड़ता था। शान्तिकुटीरके आसपास किसी खूनी जानवरका कोई खटका न था। जंगलमें रहने पर भी खूनी जानवर, बस्तीमें या उसके आसपास नहीं आते थे। मैं बहुत दफे हिरनोंकी तरह जंगलमें घूमा हूँ; मगर कभी किसी खूनी जानवरका सामना नहीं हुआ।

यहाँतक तो मैंने शान्तिकुटीर—अपने रहनेके घर—की बात कही। अब शान्तिपुर गाँवके सम्बन्धमें दो एक बातें कहूँगा। आदमियोंके बीचमें रहनेकी प्रवृत्ति मनुष्यके हृदयमें ऐसी प्रबल है कि वह, चाहे जितना एकान्तमें अकेले रहना पसन्द करता हो, वस्तीसे दूर रहना कभी न पसन्द करेगा। मनुष्यके मुखमण्डलपर एक प्रकारका अपूर्व अपनपौ और हमदर्दीका भाव झलकता है जो जड, उद्भिद् (पेड़ आदि) या निकृष्ट प्राणिजगतमें हजार चेष्टा और खोज करने पर भी देखनेको नहीं मिलता। निकृष्ट जीव पशु पक्षी भी अपनी अपनी जातिके जीवोंके साथ दल बाँधकर रहना पसंद करते है। मैंने जहाँपर रहनेका घर बनवाया था उसके पास अगर गाँव न होता तो मैं उस जगहपर कभी अकेले रहनेका इरादा न करता। जो कुछ हो, इस गाँवके पास रहकर मैं अभीतक बड़े सुखसे हूँ। यहाँ रहनेसे मेरे अनेक प्रकारके उपकार हुए हैं। कहते लज्जा लगती है कि गाँवके भोलेभाले किसानोंकी संगतिमें मुझे जो आनन्द मिला वह आनन्द अनेक पढ़े लिखे शहरके आदमियोंकी संगतिमें नसीब नहीं हुआ। गाँवके बालक, बूढ़े, जवान, सब मुझे जैसे स्नेह और विश्वासकी दृष्टिसे देखते थे उसके लिए मैं अपनेको सर्वथा अयोग्य ही समझता हूँ। श्रीयुत व्रजविहारी व्यासजी ही उस शान्तिपुर गाँवके प्राण थे। उनका उदार चरित्र, ऊँचे दरजेका धार्मिक जीवन और गंभीर भारी ज्ञान किसी दूसरेमें होना कठिन ही है। उनकी स्त्री और उनके लड़की-लड़के सचमुच हरएक स्त्री और लड़की-लड़केके लिए आदर्श (नमूना) थे। आगे चलकर हमारे पाठकोंको इन सबका परिचय मिलेगा। ये ही लोग—अर्थात् यही परिवार—यहाँके किसानों और अन्य लोगोंके आदर्श हो रहे थे। व्यासजीके कच्चे घरमें मैंने जो ज्ञान, पवित्रता और सुन्दरता देखी उसकी धुँधली छाया

भी अपने पक्के घरमें देखनेकी मुझे आशा नहीं थी। मैंने कभी स्वप्नमें भी यह नहीं सोचा था कि इस शान्तिपुरमें—इस अपरिचित छोटेसे गाँवमें—आकर अन्तको इस तरह मेरा विद्याका अभिमान और ज्ञानका गौरव चूर चूर हो जायगा। सभी भगवानकी लीला है। ऊपर जिन व्यासजीका जिक्र आया है उनसे जान-पहचान होनेके बाद मैं किस लिए शान्तिकुटीरमें आकर रहने लगा, इसका परिचय किसीको देनेमें मुझे लज्जा लगती थी।

नवाँ परिच्छेद।

व्यासजी सरीखे एक महात्मा देवता शान्तिपुर ऐसे एक छोटेसे गाँवमें रहते हैं, इस बातको, एक मैं क्या, अनेक लोग नहीं जानते थे। उसका एक कारण भी था। व्यासजी शान्तिपुरके पुराने रहने-वाले नहीं थे। अभी दो ही चार वर्षसे वे इस गाँवमें आकर बसे थे। पहले जिला उन्नावके किसी गाँवमें इनका घर था। जिला उन्नावमें प्लेगकी बीमारी बढ़ जाने पर, उससे बचनेके लिए, शान्तिपुरमें अपने एक शिष्यके घरमें, व्यासजी सपरिवार आकर कुछ दिन रहे थे। यह स्थान व्यासजीको बहुत पसन्द आया। मगर गरीब शिष्यके घरमें बहुत दिन रहना ठीक नहीं, यह सोचकर व्यासजीने उसी गाँवमें एक छोटासा घर बनवा लिया। व्यासजीके ऊँचे दरजेके धार्मिक जीवन और शुद्ध उदार चरित्रपर शान्तिपुरके लोग इतने लट्टू हुए कि सभी लोग उनके शिष्य हो गये। सच तो यह है कि गाँवके लोगोंका अनुरोध भी यहाँ बस जानेका एक प्रधान कारण था। व्यासजीने अपने पहले निवास-स्थानकी सारी सम्पत्ति बेचकर उसी धनसे शान्तिपुरके पास कुछ

जमीन खरीद ली। उसी जमीनकी आमदनीसे अपनी जीविका चलानेका उपाय करके व्यासजी निश्चिन्त होकर धर्मकी सेवा करने लगे।

जिस समय मेरा घर वन रहा था उस समय उसकी देखरेख रखनेके लिए पिताजी अकसर शान्तिपुरमें आया जाया करते थे। इसी तरह दो चार वार जाने पर उनसे और व्यासजीसे जान-पहचान हो गई। घर तैयार हो जाने पर जिस दिन मैं उसे देखनेके लिए शान्तिपुरमें आया उसी दिन पिताजी मुझे अपने साथ व्यासजीके घर ले गये। शान्तिपुरके बालक, बूढ़े, जवान, सभी जान गये थे कि मैं एक अद्भुत स्वभावका आदमी हूँ। इस कारण, मेरे पिताजीको, किसीको मेरा परिचय देनेकी जरूरत नहीं पड़ी।

मैं पिताजीके साथ संध्याके समय व्यासजीके घरपर उपस्थित हुआ। वहाँ जाकर देखा, दरवाजेके आगे एक वड़ा भारी छप्पर पड़ा था और उसके नीचे गाँवके लोग जमा थे। गाँवकी बड़ी बूढ़ी औरतें भी वहाँ जमा थीं। झाँझ, घण्टा, घड़ियाल और मृदङ्ग आदि बाजे वहाँ रक्खे हुए थे। उन लोगोंके बीचमें एक सिंहासन बिछा था। उस सिंहासनपर तरह तरहके फूल रक्खे थे। सिंहासनके ऊपर एक छोटी सी काठकी चौकीपर एक धर्मग्रन्थ, जिसपर बहुतसा चन्दन छिड़का हुआ था, रक्खा था। मैं पिताजीके पीछे पीछे जब उस छप्परके नीचे गया तब पिताजीको देखते ही सब लोगोंने प्रणाम किया और साथ ही आकार-प्रकारसे मुझे भी पहचानकर सब लोगोंने हाथ जोड़े। मैं भी पिताजीके साथ बैठ गया। मैंने देखा कि वहाँपर बैठे हुए सभी लोग बातचीत बंद करके एकटक मेरी ही ओर निहार रहे हैं। पिताजीने मेरी हालत समझकर पास बैठे हुए एक आदमीसे पूछा—व्यासजी कहाँ हैं? उस आदमीके कुछ कहनेके पहले ही व्यासजी आ गये।

उनको देखते ही सब लोग सादर उठ खड़े हुए। उसके बाद जब व्यासजी बैठे तब सब लोगोंने धरतीपर सिर रखकर उनको प्रणाम किया। व्यासजीने पिताजीको देखकर प्रसन्न होकर, उनका आदर सत्कार किया। उसके बाद, पिताजीसे परिचय पाकर, उन्होंने मेरा भी यथोचित आदर किया। व्यासजीका हाल पिताजीसे सुनकर पहलेहीसे मुझे उनपर श्रद्धा और भक्ति हो गई थी। इस समय व्यासजीकी सुन्दर और प्रसन्न मूर्ति देखकर सहज ही वह भक्ति और भी बढ़ गई।

मुझे देखकर व्यासजी बहुत प्रसन्न हुए। मेरे शान्तिपुरमें रहनेसे गाँवके रहनेवाले लोगोंको बड़ा आनन्द होगा—उनका बड़ा उपकार होगा, मेरा विचार बहुत अच्छा है और आजकलके जमानेमें कुछ अचरजकी भी बात है,—इस तरहकी दो चार बातें पिताजीसे कहकर व्यासजी उस सिंहासनपर बैठकर श्रीमद्भागवत बाँचने लगे। कथाका आरम्भ होनेके पहले कुछ देर तक हरि-भजन भी हुआ। दीना भगत नामका एक श्रोता ही उस भजनमण्डलीका मुखिया था। उसने अपने मधुर भजनसे भक्तिके मधुर रसकी धारा बहा दी। मैंने बहुतसे अच्छे गवैयोंके मीठे गलेका गाना सुना है और मोहित भी हुआ हूँ। मगर दीना भगतके तान-लयसे खाली, भक्ति-भरे, आडम्बर-शून्य, सीधे-सादे भजनको सुनकर मेरे आत्माको जैसी तृप्ति हुई वैसी तृप्ति मुझे कभी नहीं हुई।

भजनका आरम्भ होनेपर, उस गाँवके लड़के-लड़की, झुण्डके झुण्ड, वहाँ आने लगे। मैंने देखा, व्यासजीके घरके भीतरसे भी दो लड़कियाँ और एक लड़का आया। वे तीनों चुपचाप सिंहासनके पास जाकर बैठ गये। लड़का दोनों लड़कियोंसे छोटा था। शकल-सूरतसे मुझे मालूम हुआ कि ये लड़की-लड़के व्यासजीके ही हैं। वे लड़की-लड़के शान्त,

सुन्दर और मनको मोहनेवाले थे। सबके चेहरोंपर मधुरता और पवित्रतासे भरी हुई एक दिव्य झलक दिखाई पड़ रही थी। उस झलकमें अपनी ओर खींच लेनेकी ऐसी शक्ति थी कि एक बार उधर दृष्टि पड़ जाने पर फिर सहजमें उधरसे आँख फिरानेकी इच्छा न होती थी। नेत्र उस सुन्दरता और पवित्रताके अमृतको पीकर तृप्त ही न होते थे। हृदयपर अपना असर डालनेवाले मधुर हरिभजनको सुनते सुनते उन देवोंके समान सुन्दर लड़के-लड़कियोंको देखकर मैं अपने मनमें एक अद्भुत भावका अनुभव करने लगा। मुझे मालूम पड़ने लगा कि मैं पाप और शोरगुलसे भरे हुए संसारको छोड़कर किसी देवताके राज्यमें आगया हूँ। दम-भर-में मेरा यह पञ्च तत्त्वों (पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश) से बना हुआ स्थूल शरीर मानों बाहरके पञ्चतत्त्वोंमें लीन हो गया। शरीररहित सूक्ष्म आत्मा, मानों, बन्धनसे छूटकर, आकाशमण्डलमें किसी नक्षत्रके समान, उस भजनसे उत्पन्न हुए भावोंकी राशिमें विचरने लगा। सारांश यह कि जिसे पहले मैंने कभी न सुना था ऐसे एक अपूर्व महासंगीतके साथ मेरे आत्माका गंभीर संगीत मिल गया और मैं यह भूल गया कि मैं कौन हूँ और कहाँपर हूँ।

कुछ देर बाद भजन बंद हुआ और सभामें बैठे हुए सब लोग चुप हो गये। किन्तु मेरे आत्माके भीतर जो संगीतकी झनकार उठ रही थी वह वैसी ही बनी रही। व्यासजी जो कथा सुना रहे थे उसका एक अक्षर भी मेरे कानोंमें नहीं गया और वहाँपर बैठे हुए लोग मेरी दृष्टिमें मानों वहाँ थे ही नहीं। मैं एक ऐसे महान् भावमें मग्न हो गया जिसका वर्णन नहीं हो सकता। मैं अपने 'आपे'को भूल गया। मुझे याद नहीं कि कब तक मेरा यह हाल रहा; मगर इसमें सन्देह नहीं कि बहुत देरतक मेरी यही दशा रही। व्यासजी जब उस दिनकी कथा

समाप्त कर चुके और सब श्रोता लोग उनसे बिदा हो-होकर अपने अपने घर जानेकी तैयारी करने लगे, उस समय भी मुझे उसी दशामें देखकर पिताजीने मेरे शरीरपर अपना हाथ रक्खा और कहा—बचुआ, (यह मेरे माता-पिताका रक्खा हुआ दुलारका नाम था) क्या नींद लग रही है? रात अधिक हो गई है, चलो, व्यासजीसे बिदा होकर घर चलें। यों कहकर पिताजी उठ खड़े हुए। मैं भी जैसे कोई सोतेसे उठ खड़ा हो उस तरह उनके साथ खड़ा हो गया। इसके बाद पिताजीने और मैंने व्यासजीको प्रणाम किया। मैं और पिताजी, दोनों वहाँसे निकल कर अपने घरकी ओर चले। उस गाँवके लोग भी उस समय एक एक करके अपने अपने घर जा रहे थे। उनमेंसे कुछ लोग हम लोगोंके साथ बातचीत करते करते कुछ दूर तक चले आये और फिर पिताजीके कहनेसे लौट गये। हम दोनों बाप-बेटे उसी जंगली राहसे अपने गाँवकी ओर चले।

चाँदनी रात थी। चाँदनीके प्रकाशमें वह जंगलकी कच्ची सड़क स्पष्ट देख पड़ती थी। सड़कके दोनों ओर सालूके जंगलकी मनोहर शोभा आँखोंको तृप्त कर रही थी। वृक्ष चुपचाप खड़े थे, एक पत्ता भी नहीं हिलता था। इससे जान पड़ता था कि वे चन्द्रमाकी अमृत-मयी किर-णोंमें डूबकर पूरी तृप्ति और सुखका अनुभव कर रहे हैं। मानों उनके भी रसीले हृदयमें एक स्वर्गीय संगीतकी झनकार उठ रही है। उस सन्नाटेदार जंगलकी सड़कमें जंगलके इस विचित्र भाव और शोभाको देखता हुआ मैं पिताजीके साथ चला जा रहा था। उस समय भी मैं पहलेकी तरह स्वप्न देख रहा था। सहसा पिताजीके गंभीर शब्दने मेरे कानोंमें प्रवेश करके मुझे चौंका दिया। पिताजीने पूछा—बचुआ, व्यासजीको तुमने देखा? तुम्हारी समझमें वे कैसे आदमी हैं?

मैंने कहा—जी हाँ, मैंने व्यासजीको देखा। मुझे तो वे एक बहुत ही सज्जन और महात्मा जान पड़ते हैं। मैं अपनेको बहुत ही भाग्यशाली समझता हूँ कि ऐसे महात्माके पड़ोसमें रहकर उनसे लाभ उठा सकूँगा।

पिताजीने कहा—व्यासजीके बारेमें मेरी भी ऐसी ही राय है। तुमने क्या उनके लड़के और लड़कियोंको भी देखा था?

मैंने कहा—कौन लड़का-लड़की? जो उनके दाहिनी ओर बैठे थे वे ही?

पिताजीने कहा—हाँ, वे ही।

मैंने उत्साहके साथ कहा—लड़के-लड़की बहुत ही अच्छे हैं।

पिताजी चुप हो रहे। इसके बाद फिर कुछ बातचीत नहीं हुई। मेरी तो मानों जान बच गई। मुझे डर लग रहा था कि पिताजी कहीं आजकी कथाके बारेमें कुछ न पूछ बैठें। उस रातको क्या कथा हुई—इसकी मुझे कुछ भी खबर न थी।

पिताजीके चुप हो जाने पर न जाने क्यों, मेरा ध्यान व्यासजीके लड़के-लड़कियोंपर ही जम गया। उनके सुन्दर पवित्र मुख मेरी आँखोंके आगे नाचने लगे। उनमें भी एक मुख कैसा सुन्दर और पवित्र था! वह, मानों सुन्दरताकी भी सुन्दरता था! पवित्रताकी भी पवित्रता था! न जानें क्यों, यों विचार करते करते मेरे हृदयके भीतरसे एक लंबी साँस निकल पड़ी!

दसवाँ परिच्छेद।



शान्तिपुरमें आने पर कुछ ही दिनोंमें गाँवके सब आदमियोंसे मेरी जान-पहचान हो गई। मेरे नये घरमें—शान्तिकुटीरमें—पहले कई दिन तक नित्य बहुतसे लोगोंकी भीड़ होती रही, मगर जब गाँवके सब

लोगोंसे जान-पहचान हो चुकी तब धीरे धीरे आनेवाले लोगोंकी भीड़ कम हो गई। इसका एक कारण था। उस गाँवके आदमियोंमें मेरे ऐसे सत्तारी आदमी बहुत ही कम थे। उस गाँवके लगभग सभी लोगोंकी जीविका मेहनत-मजूरी और किसानी ही थी। इसी कारण मेरे पास आकर अपना समय नष्ट करनेका सुभीता किसीको नहीं था। ऐसे कामकाजी लोग दिनको अकसर अपने कामकाजमें ही लगे रहते थे। केवल संध्या होनेके बाद उन्हें कुछ फुरसत मिलती थी। सो इस छुट्टीके समयको वे व्यासजीके घरमें छप्परके नीचे बैठकर भगवानके भजन और भागवत आदि शास्त्र-पुराण सुननेमें बिताते थे। मैं भी प्रायः, रोज ही भगवद्भजन और हरि-कथा सुननेकी आशासे संध्याके समय व्यासजीके उसी घरमें हाजिर हो जाता था।

व्यासजीके लड़के-लड़की नित्य सिंहासनके दाहिनी ओर बैठे देख पड़ते थे। व्यासजीकी बड़ी लड़कीकी उमर अन्दाजन बारह या तेरह बरसकी होगी। सुना, उसका अभीतक ब्याह नहीं हुआ। यह भी सुना कि लायक लड़का न मिलनेहीके कारण व्यासजीने लड़कीका ब्याह नहीं किया। अगर लायक लड़का मिल जाता तो अबतक कबका ब्याह हो गया होता। व्यासजी अपने पुराने घरको छोड़कर इस नई जगहमें आकर बसे थे। इसी कारण लायक लड़का मिलनेमें जरा देर और अड़चन हो रही थी। हजार चेष्टा करने पर भी मध्यप्रदेशके उस जंगली और पहाड़ी स्थानमें एक भी योग्य पात्र नहीं मिला। सुननेमें आया, व्यासजीकी राय है कि कन्याका और भी कुछ दिन क्वाँरा रहना अच्छा है, मगर अयोग्य लड़केके गले पड़ना उचित नहीं। दीना भगतके मुखसे व्यासजीकी यह राय सुनकर सचमुच मुझे कुछ अचरज हुआ। सच तो यों है कि पश्चिमी शिक्षासे शून्य एक शास्त्रके अच्छे जानकार

पण्डितका ऐसा मत होना मुझे कुछ नई और विचित्र बात जान पड़ी।

मैं जिसमें सुखी और स्वच्छन्द होकर रहूँ, इसके लिए उस गाँवके लोग खूब यत्न और चेष्टा करने लगे। उस गाँवमें एक बे-मा-बापका नौजवान अहीर किसान रहता था। उसके कुछ भी जमीन न होनेके कारण वह मेहनत मजूरी करके किसी तरह अपना गुजारा कर लेता था। वह मुझे बहुत मानने लगा। उसका स्वभाव ऐसा अच्छा और चरित्र ऐसा शुद्ध था कि शान्तिपुरके बालक, बूढ़े, जवान, मर्द और औरतें सभी उसको प्यार करते थे। मैं भी मोहनके लंबे-चौड़े मजबूत शरीर आर भोलेभाले हँसमुख चेहरेको देखकर बहुत ही खुश होता था। मैने उसे अपने पास रखनेके मतलबसे उसका महीना बाँध दिया। वह मेरे घरका काम करने लगा।

पाठकोंमेंसे बहुत लोग जानना चाहते होंगे कि मैं तो यहाँ अकेला रहता था; फिर मेरा घरका ऐसा क्या काम था? सुनिए, घरका काम और क्या था? घरको झाड़ बुहार करके साफ रखना, मेरी किताबों और अन्यान्य चीजोंको हिफाजत और कायदेके साथ रखना, और मेरे कहीं जानेपर घरकी रखवाली करना। मोहनके लिए यही मेरे घरका काम था। माताकी आज्ञासे मैं घरमें ही खाता और सोता था—शान्ति-कुटीरमें नहीं। जंगलके भीतर, गाँवके बाहर एक सूनसान घरमें मुझे रातको सोने देना माताजीने किसी तरह पसन्द या मंजूर नहीं किया। व्यर्थके लिए उनके दिलको दुखाना मैंने भी उचित नहीं समझा। मैं रोज तड़के उठकर शान्तिकुटीरमें आता और मोहनसे रातके कुशल-समाचार पूछकर टहलनेके लिए चला जाता था। मैं नित्य किसी एक जगह या किसी एक ही ओर नहीं जाता था। तो भी मैं अकसर सबसे पहले शान्तिकुटीरके उत्तर तरफ उसी काली पहाड़ीके पास जाकर उसपर

चढ़ता था। उस ऊँची जगहसे एकदफे चारों ओरकी शोभा जी भरकर देख लेता था। उसके बाद, स्वाभाविक शोभाके दर्शनोंसे नेत्रोंको और मनको प्रसन्न करनेके उपरान्त, मैं उस पहाड़ी नदीकी टेढ़ी मेढ़ी धाराके किनारे किनारे घूमता हुआ जंगलके अनेक स्थानोंमें पहुँचता था। वहाँ प्रकृतिकी भयानक और मधुर सुन्दरताको देखकर मेरे रोंगटे खड़े हो जाते थे। पहले तो मैं उस नदीकी धाराके साथ घूमता हुआ शान्ति-कुटीरके पश्चिम ओरके जंगलमें प्रवेश करता था। उसके बाद घूमता हुआ दक्षिणकी ओर कुछ दूर जाकर फिर पूर्वकी ओर घूम पड़ता था। उधर नदीकी तराईके उपजाऊ हरेभरे खेतोंमें विचरता हुआ मैं शान्ति-पुरके पास पहुँचता था। उसके बाद गाँवमें जाकर व्यासजीको प्रणाम करके शान्तिकुटीरमें आ जाता था।

यहाँ कुछ देर विश्राम करनेके बाद स्नान भोजन करके मैं अपने पुस्तकालयके कमरेमें जाता था। वहाँ जबतक जी चाहता था, पढ़ता था। उसके बाद दोपहरको घरमें आकर भोजन करता था। तीसरे पहर फिर मैं शान्तिपुरमें आकर गाँवके लोगोंके साथ अनेक बातोंके सम्बन्धमें बातचीत करता था। सन्ध्याके बाद व्यासजीके घरमें भगवद्भ-जन और कथा सुनकर फिर घरको लौट जाता था। घर तक अकसर कोई न कोई साथ जाता था। चाँदनी रातमें किसी आदमीकी जरूरत नहीं पड़ती थी। हाँ, अगर अँधियारा होता था तो एक लालटेन या रोशनीकी जरूरत जान पड़ती थी। माताजी घरके नौकरको अकसर शामके वक्त लालटेनके साथ शान्तिकुटीरको भेज दिया करती थीं। किन्तु अगर घरका चाकर नहीं होता तो भी रास्तेमें साथ आनेवालोंकी कमी नहीं थी। व्यासजीकी कथा सुननेके लिए आसपासके कई गाँवोंके आदमी जाया करते थे।

माताजी भी एक दिन शान्तिपुरमें आकर मेरा घर देख गईं। घर और जगह देखकर वे बहुत प्रसन्न हुईं। पड़ोसकी—शान्तिपुरकी—औरतें आकर माताजीसे मिलीं। व्यासजीकी स्त्रीको जब माताजीके आनेकी खबर लगी तो वे खुद आकर माताजीको अपने घर ले गईं। माताजीको वहाँ मिठाई-फल आदिका भोजन करना पड़ा। उस दिन व्यासजीके यहाँ मेरी भी न्यौता हुआ। मुझे भी मिठाईसे मुँह जुठारना पड़ा; पर मैं यह कह देना उचित समझता हूँ कि हम लोग कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे और व्यासजी भी कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे।

माताजी शामसे पहले ही घर लौट आईं। मैं भी नित्यके समयपर घर आया। मेरी समझमें माताजी उस दिन शान्तिकुटीर और शान्तिपुरमें रहकर बहुत ही प्रसन्न हुई थीं; क्यों कि वह बारबार उस स्थानकी, उस गाँवकी औरतोंकी, और सबसे अधिक व्यासजीकी स्त्री और उनके लड़के-लड़कियोंकी बड़ाई करती थी।

दूसरे दिन सवेरे माताजी अपनी पड़ोसिन सुकुलाइनसे शान्तिपुरकी बातें करते करते कहने लगीं—

“ शान्तिपुरके व्यास-परिवारके सभी आदमी बड़े लायक हैं। जैसे व्यासजी हैं वैसी ही उनकी स्त्री है। जैसी माँ है वैसे ही लड़के-लड़की हैं। उनका जैसा सुन्दर रूप है वैसा ही अच्छा ही स्वभाव है। क्या कहूँ जीजी, ऐसे शान्त सीधे चतुर और प्रसन्न बाल-बच्चे बहुत ही कम देखे जाते हैं। उन्हें देखनेसे आँखें ठंडी हो जाती हैं। मैं जबतक व्यासजीके घरमें रही तबतक लड़का और दोनों लड़कियाँ मेरे ही पास बैठीं रहीं। बड़ी लड़कीका नाम है भगवती। भगवती साक्षात् भगवती ही है। रूप जैसे फूटा निकलता है। लड़कीका ब्याह अभीतक नहीं हुआ। लड़कीके मा-बाप अपना देश छोड़कर यहाँ बसे हैं, इससे,

और यह जगह जंगली-पहाड़ी देश है, इससे भी, उनको कोई अच्छा लड़का नहीं मिलता। व्यासजीकी स्त्री इसके लिए बड़ी चिन्ता कर रही थीं। लड़कीको देखकर मुझे अपने बचुआका ख्याल आ गया था। मगर जीजी, मेरी तकदीर बड़ी ही खराब है। मेरा बचुआ साधु-संन्यासियोंकी तरह सबसे अलग ही रहता है। देखो न, उसने ढेरकी ढेर किताबें पढ़ डाली हैं। मगर वह नौकरी करना पसंद नहीं करता। अगर वह आज नौकरी करता तो किसी बड़े ऊँचे ओहदेपर होता और लंबी तनख्वाह पाता। मेरे और दो लड़के तुम्हारी कृपा और आशीर्वादसे ऊँचे ऊँचे ओहदोंपर हैं; अपनी अपनी स्त्री और बाल-बच्चोंके साथ सुखसे रहते हैं। केवल मेरे बचुआको ही न जाने क्या हो गया है। जीजी, उसे किसी चीजका—किसी बातका शौक ही नहीं है। वह न किसीसे हँसता बोलता है और न बातचीत ही करता है। उसे पहनने-ओढ़नेका भी शौक नहीं है। मिल जाता है उसीमें उसे सन्तोष है। उसके ऊपर और न जानें क्या हो गया है कि वह न दिन देखता है न रात, जब जी चाहता है तब उठकर पहाड़पर—जंगलमें—घूमने चला जाता है। घूमकर आता है तब या तो किताबें पढ़ा करता है और या अकेले एकान्तमें बैठा रहता है। ब्याहकी चर्चा तो उसके आगे करना ही कठिन है। ब्याहका तो नाम सुनते ही वह नाराज हो जाता है। भगवान् ही जानें, मेरे भाग्यमें क्या लिखा है। जीजी, सचमुच मुझे सब तरहके सुख हैं। मगर एक इसी दुखने मुझे बेचैन बना रक्खा है। बचुआ मुझे बहुत ही प्यारा है। मैं अपनी छोटी बहूका मुँह देखकर मरती तो बहुत सुखसे मरती। मगर वह सुख मेरे नसीबमें ही नहीं बदा जान पड़ता।"

इतना कहकर माताजी चुप हो गईं।

अन्तके वाक्य कहते कहते उनका गला भर आया। मैं जहाँपर पड़ा हुआ था वहाँसे माताजीका मुँह नहीं देख पड़ता था; मगर इसमें कोई सन्देह नहीं कि उस समय माताजीकी आँखोंसे दो चार बूँद आँसू जरूर टपक पड़े थे। क्योंकि सुकुलाइनने उसी समय बड़ी हमदर्दीके साथ यों लेक्चर झाड़ना प्रारंभ कर दिया था,—

" देखो बहू, तुम रोओ मत। तुमको काहेका कष्ट या कमी है, जो तुम रो रही हो ! मैंने आजतक यही समझकर इस बारेमें कुछ नहीं कहा कि तुम कुछ कहनेसे बुरा मानोगी। मेरी समझसे तो इसमें बचुआका उतना दोष नहीं है। दोष है सारा उसके बापका। यह बात मैं तुमसे कहती हूँ और बचुआके बापके मुँहपर भी कह सकती हूँ। सच कहनेमें डर काहेका ? हम लोगोंने जब ब्याहके लिए कहा तब तुमने नहीं सुना—लड़केका ब्याह नहीं किया। तुमने दुलारके मारे लड़केको सिरपर चढ़ाया। उसका फल यह मिला कि लड़का अलग जंगलमें घर बनवाकर उसमें रहने लगा। अच्छा मैं तुमहीसे पूछती हूँ कि तुम्हारे लड़केके ये कौन ढंग हैं ? बाप मा तो रहें यहाँ, और लड़का रहे वहाँ, यह किस देशकी रीति है ? मैंने मान लिया कि तुम्हारा लड़का पढ़ लिखकर विद्याका जहाज हो गया है; मगर क्या औरोंके लड़के नहीं पढ़ते लिखते ? और सबके पढ़ लिखकर साधु-संन्यासियोंकी तरह उदासीन होकर जंगलमें क्यों नहीं रहते ? अपने ही और लड़कोंको देखो। गौरीदत्त और शिवदत्त भी तो बचुआसे कम पढ़े लिखे नहीं हैं। मगर वे तो घर गिरिस्ती छोड़कर फ़क़ीरोंकी तरह जंगलों और पहाड़ोंपर घूमते नहीं फिरते ? अच्छा, इन सब बातोंको जाने दो। अब मेरी समझमें एक बात आती है। व्यास-जीकी लड़की, भगवनिया या भगवती क्या तुमने कहा, उसे तुम बहुत

सुन्दर बतलाती हो। मैं अभीसे कहे देती हूँ,
होगी। तुम आजकलके लड़कोंको तो पहचान
ही निराला है। ये सीधी राहसे तो कभी जायँ
साफ कह देता था कि अगर इसी लड़कीके
ब्याह करूँगा, नहीं तो नहीं। इतने काट पेंच
तुमसे कहे रखती हूँ कि अगर तुम्हारे बचुआ
होकर जंगलमें घर न बनवाया हो तो मेरा नाम
बात मैं आज कहे जाती हूँ और तुम भी याद
तुम्हारी बहू होगी।"

यों लेक्चर देकर मिठाना घर जानेके लिए
भी उनसे न जानें क्या कहते कहते दरवाजेतक
माताजी दोनों, शायद यह समझती थीं कि
सोता नहीं था; पड़े पड़े मिठानाके इस अद्भुत
उनकी इस पराये दिलका हाल जाननेकी विचित्र
पाकर अचरजके मारे अचेतसा हो रहा था।
बारेमें माताजीसे दो एक बातें करनेकी मुझे
मैंने धीरजके साथ सोच विचार करके उस रात
अब हमारे पाठक ही विचार करें कि जिस स
औरतें हैं उस समाजमें रहना या जीवनके उद्देश
तक सहज है?

यही लड़की तुम्हारी बहू
ी नहीं हो। इनका ढंग
ो ही नहीं। यही साफ
साथ ब्याह होगा तो मैं
की क्या जरूरत थी? मैं
ने इस लड़कीपर लट्टू
मिठाना नहीं। देखो, यह
रखना कि यही भगवती

ठ खड़ी हुई। माताजी
गई। मिठाना और
सो रहा हूँ। मगर मैं
लेक्चरको सुनता हुआ
विद्याका सच्चा परिचय
उसी समय मिठानाके
बल इच्छा हुई। मगर
ो कुछ भी नहीं कहा।
ाजमें मिठाना सरीखी
को पूरा करना कहाँ

ग्यारहवाँ परिच्छेद ।



उस रातको अच्छी तरह नींद नहीं आई। क्रोध और खीझने हृदयमें एक तरहकी हलचल सी डाल दी। अपने चालचलनपर अगर कोई झूठी तोहमत लगाता है, तो सभीकी यही दशा होती है। मगर मनुष्यके मनमें समझोता कर लेनेका ऐसा अजीब गुण है कि दमभरमें, मिठानाके ऊपर, जितना क्रोध था वह सब रफूचक्कर हो गया। मैंने सोचा, अपढ़ और नासमझ, झूठा घमंड रखनेवाली और वकी मिठानाका ऐसा स्वभाव होना विचित्र क्या है? यह हो सकता है कि भगवतीके साथ ही मेरा व्याह हो; मगर यह बात कि मैं बगलाभगत बनकर भगवतीकी ही ताकमें, उस जंगलमें, शान्तिकुटीर बनवाकर उसमें रहने लगा हूँ—बिलकुल झूठ, घृणित और निन्दित है। फिर मैंने अपने मनमें कहा—बात जब सरासर झूठी है तब उसके लिए क्रोध करना भी व्यर्थ ही है। असलमें मेरे मनकी जो हालत है उसको सबके हृदयका हाल जाननेवाले भगवान् जानते ही हैं। फिर और किसीके दोष लगानेसे मेरा कुछ बन-विगड़ नहीं सकता। मिठानाकी अगर मेरे चालचलनके सम्बन्धमें और तरहकी धारणा है तो उससे मेरी कोई हानि नहीं।

यों सोचते सोचते मुझे संसारपर ऐसी घृणा हुई कि मैं उससे और भी विमुख हो उठा। मैंने अपने मनमें यह भी कहा कि ये संसारी लोग परमेश्वरको भूलकर ऐसी ऐसी झूठी बातें, बिना किसी संकोचके, कैसे कह डालते हैं। किन्तु उसी समय साधु महात्मा लोगोंका स्मरण हो आया। जगतका उपकार करनेमें अनेकों महापुरुषोंको बेहद कष्ट उठाने पड़े हैं—निन्दा सुननी पड़ी है—कलंक सहने पड़े हैं। मैं किस

गिनतीमें हूँ ! मैं तो दूसरोंके लिए कुछ भी नहीं करता; स्वार्थके लिए ही इतना व्यग्र हो रहा हूँ।

यों विचार करनेसे मेरा शोक और सन्ताप कुछ कम हो गया—हृदयमें भी कुछ ठंडकसी पड़ गई। मगर मेरे ब्याहके लिए माताजीकी घबड़ाहट और दुःख देखकर मुझे बड़ा ही कष्ट हुआ। अनेक कारणोंसे उस रातको मुझे अच्छी तरह नींद नहीं आई।

सबेरे उठकर नित्य-नियमके अनुसार मैं शान्तिकुटीरकी ओर चला। राहमें जाते जाते अपने ब्याहके बारेमें मैं सोच विचार करने लगा। बीचबीचमें ऐसी ही चिन्ता पैदा होकर मेरे मनकी शान्तिको मिटा दिया करती थी। मुझे अच्छी तरह मालूम था कि मेरे ब्याह कर लेनेसे माता और पिता दोनों बहुत प्रसन्न होंगे और माता-पिताको सुखी करना ही सर्वथा मेरा कर्तव्य है। शास्त्र भी कहता है कि माता-पिता जिस पुत्रपर प्रसन्न होते हैं उसपर सब देवता प्रसन्न रहते हैं। इसके सिवा ब्याहसे मुझे कोई वैर भी नहीं था। ब्याहको मैं कोई बुरा काम नहीं समझता था। मगर यह भी कह देना उचित है कि ब्याहके लिए मुझे वैसा चाव या उत्साह भी नहीं था। मैं स्वभावसे ही शान्तिको पसन्द करनेवाला हूँ। शान्तिके साथ जीवन बिताना ही मुझे रुचता है। इसी कारण अच्छी बातें सोचना, अच्छे ग्रन्थ पढ़ना, परमेश्वरकी उपासना और लोगोंका उपकार करना ही मैंने मनुष्य-जीवनका कर्तव्य समझा था। इन कर्त्तव्योंका पालन करनेके लिए मैंने दो बातोंकी जरूरत समझी थी। एक तो ब्याह न करना और दूसरे जीविकाका प्रबन्ध करना। मैंने जीविकाके लिए शान्तिपुरके पास जमीन खरीद ही ली थी, इसलिए उसकी मुझे कोई चिन्ता नहीं थी। मुझे मालूम था कि परिवारमें किसीको मेरी कमाईका भरोसा करनेकी जरूरत ही नहीं है। यही

कारण था कि उस जमीनसे होनेवाली ५०) रु० महीनेकी आमदनीको ही मैं अपने लिए काफी—*यहाँ तक कि कुछ अधिक भी*—समझता था। खासकर इसी डरसे मैं ब्याहके लिए राजी नहीं होता था कि ब्याह करनेसे कहीं मेरे मनकी बेचैनी बढ़ न जाय। हो सकता है कि मेरी स्त्रीका स्वभाव और रुचि दूसरी तरहकी हो। जिसको मैं अपने जीवनका उद्देश समझता हूँ, हो सकता है कि वह उसके जीवनका उद्देश्य न हो। ऐसी अवस्थामें मेरा और उसका मन न मिलना ही स्वाभाविक और संभव है। स्वामी और स्त्रीका अगर मन न मिला तो फिर संसारमें सुख और शान्ति कहाँ? मैं अपनी इच्छासे, जान-बूझकर, इस शान्ति और दुःखको मोल लेनेके लिए तैयार नहीं था। अपनी इच्छासे कौन अपने पैरोंमें कुल्हाड़ी मारेगा? इसके सिवा अगर स्त्री मनकी भी मिली—उसका मेरा मन मिल भी गया—तो भी मनकी बेचैनी बढ़नेके सिवा घटनेकी नहीं। ब्याह करनेसे अनेक लड़की-लड़कोंका होना कुछ अचरज नहीं है। इस प्रकार परिवार बढ़नेपर, इतनी थोड़ी आमदनीमें किसी तरह निर्वाह नहीं हो सकता। लड़कोंको पालने और अच्छी तरह पढ़ाने-लिखानेके लिए तथा लड़कियोंके ब्याहनेके लिए इससे कहीं अधिक आमदनीकी जरूरत होगी। ऐसी अवस्थामें, कमसे कम जितनेमें निर्वाह हो सके उतना रुपया पैदा करनेके लिए, मुझे नौकरी या रोजगार जरूर ही करना पड़ेगा। बस, मुझे मनकी शान्तिका सुख सपना हो जायगा। सबसे अधिक तो संसारकी अनित्यता, इष्ट-मित्रोंका बिछोह और संसारका पापपरिपूर्ण कोलाहल ये सब मेरी मानसिक आँखोंके आगे एक भारी विभीषिका खड़ी कर दिया करते थे। इन्हीं सब कारणोंसे, बहुत सोच विचारकर एक तरहसे यही मैंने निश्चय कर लिया था कि मैं इस जीवनमें ब्याह नहीं करूँगा। मैं अपने मनको भरसक ब्याहकी चिन्तासे

हटाकर दूसरी ओर लगाता था और ब्याहकी ओर मेरा ध्यान बहुत ही कम जाया करता था। अगर कभी उधर ध्यान जाता भी था तो मैं उसी समय मनको उधरसे खींचकर भगवानके चरणोंमें लगाता था। कहनेमें लज्जा काहेकी ? जबसे मैने भगवतीको देखा तबसे मेरे कमजोर हृदयमें कभी कभी ब्याहकी चिन्ता अवश्य उठ खड़ी होती थी । मगर सहसा, उसी घड़ी, न जाने किसके गंभीर शब्दसे मैं काँप उठता था और यह चिन्ता जहाँकी तहाँ लीन हो जाती थी। दम-भरमें वही जीवनका महान् भाव—महान् लक्ष्य—मेरे आगे आ जाता था। मैं सब भूलकर उसी महान् भावमें मग्न हो जाता था और उसी महान् लक्ष्यके मार्गमें उत्साह और तेजीके साथ आगे बढ़नेके लिए हृदयमें नया बल और नया उत्साह जमा करने लगता था।

ब्याहके बारेमें मेरे मनकी ऐसी अवस्था थी। मगर मैं पहले ही कह चुका हूँ कि ब्याहके बारेमें मेरे इन विचारोंको जानकर माता-पिता सदा चिन्तित रहा करते थे। ब्याहकी चर्चा भी मुझे अच्छी नहीं लगती, यह जानकर मेरे माता-पिताने बहुत दिनोंतक ब्याहकी बात ही नहीं उठाई। यह देखकर मुझे भी विश्वास हो गया था कि वे शायद इसी तरह कुछ दिन बीत जानेपर मेरा ब्याह करनेका इरादा छोड़ देंगे। इसी विश्वाससे बहुत कुछ निश्चिन्त होकर मैं भी अपने आगेके जीवनका ढंग ठीक कर-नेमें लग गया था। मगर कल रातको माताजीके मनका भाव जानकर मुझे बड़ी ही व्यथा हुई। सवेरेके समय उठकर घरसे शान्तिकुटीरकी ओर जाते समय, राहमें मुझे नित्यकी ऐसी शान्ति नहीं मिली। ब्याहकी सोई हुई चिन्ताने फिर सिर उठाकर हृदयमें हलचल डाल दी। एक ओर माता-पिताको सुखी करनेकी चिन्ता थी और दूसरी ओर ब्याहसे अवश्य होनेवाले अधःपतन—मानसिक बेचैनी—का खयाल था। इन

दोनों समस्याओंकी टक्करोंसे मेरे मनकी विचित्र अवस्था हुई। धीरे धीरे, चिन्ता करते करते, मेरा मन जैसे तेजसे हीन और शिथिल हो चला। मैं कुछ भी, ठीक ठीक निश्चय नहीं कर सका। अन्तको मन उदास और हृदय हताश हो जानेपर मैं एक वृक्षके नीचे जड़के सहारे बैठ गया। धीरे धीरे आप ही आप मेरी दोनों आँखें बन्द हो आईं और बहुत जल्दी मैं वृक्षकी घनी छायामें सबेरेकी ठंडी हवामें, सो गया।

बारहवाँ परिच्छेद।

उसी नींदकी हालतमें मैंने एक भयानक सपना देखा। मुझे मालूम पड़ा कि मैं घरमें, माताजीके पास बैठा हुआ हूँ। माताजी बीमार होकर पलँगपर पड़ी हुई हैं। उनका शरीर सूख गया है और उनमें केवल हड्डियोंका ढाँचा रह गया है। उनका चेहरा सूखा हुआ और उदास है। सब शरीर काला पड़ गया है। अच्छी तरह उनका इलाज हो रहा है। मगर डाक्टरों और वैद्योंने साफ कह दिया है कि इस बार उनका बचना कठिन ही है। माताजीकी कठिन बीमारीका समाचार पाकर मेरे दोनों बड़े भाई भी घरमें आ गये हैं। माताजी हम सबको अपने आगे बैठे देखकर कठोर रोगकी पीड़ामें भी, सुख और आनन्दका अनुभव कर रही हैं। कभी तो उनके सूखे मुखमण्डलको भिगोते हुए आँसुओंकी धारा बहने लगती है और कभी वे बेहोश हो जाती हैं। माताजीके स्वर्गवासका समय निकट देखकर मुझे बड़ा ही कष्ट हुआ; हृदय शोकसे शिथिल हो गया, आँखोंमें आँसू भर गये, गला रुँध सा गया और चारों ओर जैसे अमङ्गलकी सूचना देनेवाले उत्पात दिखाई पड़ने लगे। मुझे ज्ञान पड़ने लगा कि कालरात्रि जैसे मुख फैलाकर हम सबको ग्रसनेके

लिए सिरपर खड़ी है। किसीके मुखसे कोई बात नहीं निकलती। सभी उदासी और शोकके सन्नाटेमें चुपचाप बैठे हुए हैं। सबके मुखपर निराशाकी काली छाया देख पड़ती थी। सभी अनाथ असहाय आदमीकी तरह निश्चेष्ट थे। सावन भादोंमें काली घटा उठने और उसके साथ ही आँधी पानीके पहले प्रकृतिकी जो दशा होती है ठीक वही दशा उस समय मेरे घरकी थी। शोककी घटाने सबके हृदयोंको अन्धकारसे भर दिया। उसमें घोर विपत्तिकी आशंकारूप बिजलीके दम दमपर चमकनेसे हम लोग चौंकने और काँपने लगे। कराल कालरूपी आँधीकी अवाईका अनुमान करके हम लोगोंमें बेचैनी बढ़ने लगी। माताकी अन्त अवस्था देखकर मुझसे शोकका वेग सँभाला नहीं गया। सबके रोकनेपर भी मैं रोता हुआ उठकर आड़में चला गया। एकाएक मैं बुलाया गया। मैं दौड़ता हुआ उस कमरेमें आया जहाँ माताजी पड़ी हुई जीवनकी घड़ियाँ पूरी कर रही थीं। सबने मुझे माताजीके पास बैठनेका इशारा किया। मैंने माताजीके पास बैठकर गद्गद कातर स्वरसे पुकारा—‘ अम्मा ’। माताजीने आँखें खोल दीं और मुझसे और भी पास आनेके लिए इशारा किया। जब मैं और पास गया तब आँखोंमें आँसू भरकर टूटी फूटी आवाजमें वे यों कहने लगीं—“ बेटा—बचुआ—मेरे—तुम—उदासीन—न—होना—मैं—तुम्हारा—सुख—नहीं—देख—सकी—तुम्हारा—ब्याह—” बस इतना ही वे कह सकीं। अभागा मैं चिल्लाकर रो उठा और जमीनपर लोटते लोटते बेहोश हो गया।”

सहसा मुझे मालूम पड़ा कि किसीने मुझे उठाकर बिठलाया और जल जल कहकर चिल्लाने लगा। मुझे जैसे कुछ होश हुआ और मैंने एक बार आँखें भी खोलीं; मगर मुझे कुछ भी नहीं देख पड़ा। मेरा सिर घूमने लगा और फिर मैं बेहोश होकर ज़मीनपर लेट गया।

नहीं कह सकता कि मैं कितनी देरतक इस अवस्थामें पड़ा रहा। धीरे धीरे जब होश आने लगा तब मुझे किसी बालिकाकी डरी हुई आवाज सुनाई दी। किसी बालिकाने कहा—"जीजी, अच्छी तरह हवा करो।" इसके बाद ही मुझे अपने मुखपर ठंडी हवाका अनुभव होने लगा। थोड़ी देर बाद मैंने आँखें खोलीं। देखा कि मेरा सिर मोहनके गोदमें रक्खा हुआ है और चारों ओर घनी हरियाली है। मुझे मालूम पड़ा कि मेरी आँखोंसे आँसू बहे हैं। मैंने सोचा—यह क्या? मैं कहाँ हूँ? मुझे कौन यहाँ लाया? मरणोन्मुख माताके मुखका करुण चित्र उस समय भी मेरी आँखोंके आगे फिर रहा था। हृदयमें जलती हुई शोककी आगसे गरम साँस उस समय भी मेरी नाक और मुँहसे निकल रही थी। मैं एकाएक निश्चय न कर सका कि मामला क्या है। मैं उठनेकी चेष्टा करने लगा। मगर मोहनने मुझे रोककर कहा—"आप तनिक चुपके पड़े रहें; उठनेकी कोशिश न करें। जंगलमें इस तरह अकेले कोई पड़ रहता है?"

उस समय भी स्वप्नका नशा नहीं उतरा था। असल बात जाननेके लिए मैं मोहनको हटाकर उठ बैठा। मैंने देखा कि मैं अपने शान्तिकुटीरसे थोड़ी ही दूरपर एक पेड़के नीचे बैठा हूँ। मेरे सामने भगवती, उसकी बहिन अन्नपूर्णा, और उसका भाई गोविन्द नारायण—अर्थात् व्यासजीका लड़का और दोनों लड़कियाँ एक एक फूलोंसे भरी डलिया हाथमें लिये खड़े हुए हैं। देखते ही सब मामला समझमें आ गया। हरे हरे, मैं सपना देख रहा था! अपनी दशाका हाल जानकर मैं कुछ शरमाया भी। मैंने सोचा, मुझे सपनेकी हालतमें रोते देखकर ये लड़के-लड़की घबड़ाकर मोहनको बुला लाये हैं। जरूर यही बात है। इस तरह ऐसी जगह सोना सचमुच अच्छा नहीं हुआ। जो कुछ हो, उस समयकी शरमिन्दगीकी

आफतसे छुटकारा पानेकी आशासे मैंने कुछ मुसकराकर, भगवती और अन्नपूर्णाकी ओर देखकर कहा—" जान पड़ता है, फूल चुनकर लौटते समय तुम लोग इस पेड़के नीचे मुझे सोते देखकर डरीं और जाकर मोहनको बुला लाई हो । क्यों न ? " भगवतीने लज्जासे अपनी दोनों आँखें नीची कर लीं और मेरे प्रश्नका कुछ भी उत्तर नहीं दिया । लेकिन अन्नपूर्णाने कहा—" नहीं । हम लोग फूल चुनकर इस राहसे चले आ रहे थे । यहाँपर आकर हमने देखा कि आप यहाँ बड़के नीचे पड़े सो रहे हैं, और, सोते ही सोते कभी हाथ पटकते हैं और कभी फुकर फुकरकर रो उठते हैं। यह देखकर हम लोग खड़े हो गये। गोविन्दने आपके पास जाकर आपको दो तीन बार पुकारा, पर आपको चेत नहीं हुआ । फिर आप ' अम्मा ' ' अम्मा ' कहकर चिल्ला उठे। मैं और गोविन्द, दोनों डरकर भागे; मगर जीजीने कहा—' ठहरो, मोहनको चलकर बुला लाओ ' और हम तीनों जनें दौड़कर मोहनको बुला लाये। गोविन्द दौड़ते दौड़ते राहमें गिर पड़ा। " इतना कहकर अन्नपूर्णा खिलखिलाकर हँसने लगी। अन्नपूर्णाकी लड़कपनकी सरल हँसी देखकर मुझे भी हँसी आगई। अन्नपूर्णा हँसते हँसते फिर उसी तरह कहने लगी—" गोविन्द जैसे गिरा वैसे ही उसकी डलिया और फूल भी धरतीपर गिर पड़े । मैंने बहुत कुछ मना किया कि, अब सब फूल किसी कामके नहीं रहे, मत उठाओ; तुम्हारे फूल पूजामें नहीं लगेंगे । मगर गोविन्दने नहीं माना और देखिए वही धरतीके फूल बीन लाया है ।"

यों कहकर अन्नपूर्णा फिर हँसने लगी । बेचारा गोविन्द अन्नपूर्णाकी हँसीसे शरमाकर भगवतीके पीछे छिपनेकी चेष्टा करने लगा । मगर अन्नपूर्णा काहेको माननेवाली ! उसने फिर कहा—" देख गोविन्द, हमारी डलियामें अपनी डलिया न लगा देना; नहीं तो हमारे भी फूल पूजाके कामके नहीं रहेंगे । "

गोविन्दको आफतमें पड़ा देखकर मैं उसकी सहायता करनेके लिए तैयार हुआ। अन्नपूर्णाके मुँहसे उसके गिर पड़नेका हाल सुनकर मैंने दुःख प्रकट करते हुए कहा—भाई गोविन्द, तुम्हारे कहीं चोट तो नहीं लगी ?

गोविन्दने फुर्तीके साथ सिर हिलाकर चोट लगना एकदम अस्वीकार किया। मैंने फिर कहा—आहा, तुम्हारे सब फूल खराब हो गये।

गोविन्दने उसी समय गरदन टेढ़ी करके कहा—खराब क्यों हो गये? मैं इन फूलोंसे अपने ठाकुरकी पूजा करूँगा।

गोविन्दकी बात सुनकर हम सब लोग हँस पड़े। भगवतीने मुसकराकर गोविन्दकी ओर देखा। भोली भाली अन्नपूर्णा फिर उसी तरह हँसते हँसते कहने लगी—आपने गोविन्दके ठाकुर देखे हैं? एक मिट्टीका खिलौना है! अम्माने वह खिलौना गोविन्दको खेलनेको दिया था, मगर गोविन्दने उस खिलौनेको ठाकुर बना लिया है। गोविन्द नित्य उसकी पूजा करता है और अपने खानेकी मिठाईका भोग लगाकर मुझको, जीजीको और अम्माको परसाद देता है।

अन्नपूर्णाकी बातें सुनकर गोविन्द खिसिया गया। उसकी आँखोंमें आँसू भर आये। यह गड़बड़ देखकर मैंने अन्नपूर्णासे कहा—नहीं अन्नपूर्णा, तुम नहीं जानतीं। गोविन्द सचमुचके ठाकुरकी पूजा करता है।

इतना कहकर और बात चलानेके मतलबसे मैंने कहा—अच्छा, तुम मोहनको बुला लाईं? फिर क्या हुआ?

अन्नपूर्णाके कुछ कहनेके पहले ही मोहन कहने लगा कि "मैंने आकर देखा कि आपके पसीना बहुत निकल रहा है; आप हाथ-पैर पटक रहे हैं, जल्दीजल्दी साँसें ले रहे हैं और रह-रहकर रो उठते हैं। यह देखकर मुझे बहुत डर मालूम पड़ा। मैंने आपको पुकारा और

पकड़कर हिलाया भी। पर आपने कुछ जवाब नहीं दिया। मैंने बिटिया भगौतीसे कहा तो वह अपने घरसे एक लोटेमें पानी ले आई। मैंने आपके सिरपर और मुँहपर पानी डाला और बिटिया अपने आँचलसे आपके मुँहपर हवा करने लगी। इसी तरह थोड़ी देरमें आपको चेत हुआ और आप उठ बैठे। भगवानकी दयासे आज बिटिया इधर निकल आई, इससे खैर हो गई। नहीं तो न जानें क्या होता!" इतना कह-कर मेरा हितैषी मोहन इस तरह अकेले न फिरनेके लिए मुझे तरह तरहके उपदेश देने लगा।

भगवतीको जानेके लिए उद्यत देखकर मैंने अन्नपूर्णासे कहा—"अन्नपूर्णा, तुम तो डरकर घरकी ओर भागी थीं। मेरे भाग्य अच्छे थे कि तुम्हारी जीजी भी तुम्हारे साथ थीं और वे मोहनको बुला लाईं। अगर वे न होतीं तो आज जरूर कुछ-न-कुछ आफत मुझपर आती।"

अन्नपूर्णा कुछ सोचमें पड़ गई। दमभर सोचकर उसने कहा—"मैं दादा (व्यासजी) से जाकर कहती और वह आपको देखने जरूर आते।"

अन्नपूर्णाकी बातें सुनकर मुझे बड़ी खुशी हुई। फिर अन्नपूर्णा और भगवतीकी तरफ देखकर मैंने कहा—"कल रातको मुझे अच्छी तरह नींद नहीं आई। इसीसे सबेरेकी ठंडी हवामें इस पेड़के नीचे सो गया। सोते ही मैंने एक बुरा सपना देखा और उसीमें मेरी बेचैनी बढ़ गई। मुझे और कुछ नहीं, इसी बातका दुःख है कि मेरी वह दशा देखकर तुम बहुत डर गईं। और मोहनको बुलाकर तुमने जो मेरा उपकार किया है उसे मैं कभी नहीं भूल सकता। व्यासजी एक महात्मा आदमी हैं; उनके लड़की-लड़कोंका ऐसा स्वभाव होना उचित ही है। मैं आजका सब हाल खुद व्यासजीसे आकर कहूँगा। अम्मा भी

यह सुनकर बहुत खुश होंगी। भगवान् ऐसे लड़के-लड़कियोंका मंगल करते हैं। वे तुम्हें सदा सुखी रक्खें।"

इतना कहकर मैंने गोविन्दसे कहा—"भैया गोविन्द, तुम्हारे गिर पड़नेका मुझे बड़ा रंज है। और तुम्हारे फूल—"

मेरी बात पूरी भी नहीं होने पाई, बीचहीमें आनन्दमयी अन्नपूर्णा गोविन्दकी ओर देखकर उसी तरह जोरसे हँसने लगी। जान पड़ता है, अपनी जान बचानेके लिए, अथवा अपनी बहादुरी दिखानेके लिए, गोविन्दने अपने घरकी ओर बेतहाशा एक लम्बी दौड़ लगाई। कुछ दूरपर खड़े होकर गोविन्दने कहा—यह देखिए, मेरे कहीं नहीं लगा। यों कहकर वह फिर भागा। अन्नपूर्णा भी भगवतीके साथ, गोविन्दसे यह कहती हुई कि 'दौड़ नहीं, फिर गिर पड़ेगा', घरकी ओर रवाना हुई। लेकिन कौन किसकी सुनता है! अन्नपूर्णा जितना मना करती थी, गोविन्द उतना ही भागता जाता था। इसी तरह वे तीनों आँखोंकी ओट हो गये।

जबतक वे आँखोंके आगे रहे तबतक मैं एकटक यह तमाशा देखता और उन लड़के-लड़कियोंके आनन्द, उत्साह, हमदर्दी आदिकी बात सोचकर मन-ही-मन प्रसन्न और विस्मित हो रहा था। देवीरूपिणी भगवतीका हृदय भी देवियोंके समान ही सुन्दर देखकर मेरी आँखोंमें आनन्दके आँसू भर आये और भगवतीपर जो मेरी श्रद्धा पहले थी वह आज सौगुनी बढ़ गई। ऐसे ही भोलीभाली अन्नपूर्णाकी बातोंसे मेरा हृदय आनन्दसे भर गया और देव-कुमार ऐसे बालक गोविन्दकी भागनेमें बहादुरी और फुरती देखकर मैं किसी तरह अपनी हँसीको नहीं रोक सका। इन लड़के-लड़कियोंके आकारमें मुझे जैसे स्वर्गराज्यकी छाया देख पड़ी।

बहुत दूर जाकर, एक बार फिरकर, भगवतीने हम लोगोंकी ओर देखा। लेकिन जब उसने देखा कि मैं टकटकी लगाये उधर ही निहार रहा हूँ तब वह लज्जीले भावसे सीधे घरको चली गई। उस समय मेरा मन बहुत ही प्रसन्न था। उन लड़कियोंके न देख पड़ने पर मैंने मोहनकी ओर देखा। शायद मोहनके मनमें भी मेरे ही सदृश आन्दोलन हो रहा था; क्योंकि उसने मुझसे कहा—"बाबूजी, जैसे हमारे मालिक (व्यासजी) हैं वैसे ही उनके लड़के-लड़की है। बड़की बिटिया तो जैसे छाच्छात (साक्षात्) भगवती ही हैं। जैसी मीठी बातें हैं वैसा ही अच्छा बरताव है। न घमंड है, न घिन है। सबके लड़कोंको गोदमें लेकर दुलराती और खेलाती है—घर ले जाकर खिलाती पिलाती है। इसीसे तो गाँव भरके सब आदमी उसको प्यार करते हैं।—आहा, बिटियाके व्याहके लिए मालिकको बड़ी चिन्ता रहा करती है। उनकी चिन्ता देखकर हम लोगोंको भी बड़ी चिन्ता रहती है। कभी कभी हमलोग यह सोचकर दुखी भी होते हैं कि बिटियाके चले जाने पर हमारा गाँव सूना हो जायगा।"

मोहनकी बातें मैं सुन रहा था, इतनेमें घरका नौकर वहाँ आकर मौजूद हुआ। इस समय उसके अचानक वहाँ आनेका कारण पूछने पर उसने कहा—बहूजीने आपको अभी—बहुत जल्द—बुलाया है।

मैं घबड़ाकर उस नौकरके साथ सीधा अपने घरकी ओर चल दिया।

तेरहवाँ परिच्छेद।



माताजीने इस समय मुझे क्यों बुलाया है, यह जाननेके लिए मैंने नौकरसे कई प्रश्न किये। पर वह कुछ बतला न सका। मैं तेजीसे बढ़ता हुआ घरमें आया। देखा, पिताजी बाहरकी बैठकमें बैठे कामके कागज-पत्र देख रहे हैं। मैं झटपट, वहाँ खड़े न होकर, एकदम घरके भीतर चला गया। देखा, माताजी भी घरके कामकाजमें लगी हुई हैं; किन्तु चेहरा उदास और चिन्तित है। चेहरा देखनेसे यह भी जान पड़ा कि कुछ देर पहले वे रो भी चुकी हैं। मैंने देखा, वे घरका कामकाज कर तो रही हैं पर किसी काममें उनका मन नहीं लगता। जैसे कोई लाचार होकर काम करता है, उसी भावसे वे काम कर रही थीं। मैं व्याकुल मन और चिन्तित हृदयसे उनके पास गया। वे मुझे देखते ही रोने लगीं। मेरा कुछ भी हाल नहीं जाना था। मैं घबरा उठा और घबराकर माताजीसे बार बार उनके यों रोनेका कारण पूछने लगा। वे जवाब देना तो दूर रहा, और भी रोने लगीं। उन्होंने मुझे छातीसे लगा लिया और स्नेहके वेगसे वे मेरी बलायें लेने लगीं। मैं अपने बड़े भाइयोंके किसी अमंगलकी शंकासे चिन्तित हो उठा। मैंने माताजीसे पूछा—बड़े दादा या भैयाके पाससे कोई चिट्ठी आई है क्या?

मुझे बहुत ही व्याकुल देखकर घरकी दासी रधियाने कहा—"आप इतना क्यों उतावले हो रहे हैं? सब कुसल हैं; आज कहींसे कोई चिट्ठी नहीं आई। अम्मा आज सबेरे जबसे उठी हैं तबसे तुम्हारे ही लिए रो-रो-कर व्याकुल हो रही हैं। उन्होंने सबेरे सपना देखा है कि आप संन्यासी होकर घरसे चले गये हैं। लोग कहते हैं कि सबेरेका सपना झूठा नहीं होता; इसीसे, अम्मा और भी व्याकुल हो रही हैं। सबेरेसे

आज अम्माने आपको देखा भी नहीं, इससे और भी रो रही हैं। आपरे अम्माका रोना मुझसे तो नहीं देखा जाता। जब देखो तब वे आपके कारन रोया करती हैं। अच्छा भैया, आपने इतना लिखा-पढ़ा है, अम्माका रोना आपसे कैसे देखा जाता है ? क्या इसी तरह माँको रुलाना चाहिए ? आपके मनमें क्या तनिक भी दया-माया नहीं है ? देखते नहीं कि अम्मा केवल तुम्हारे ही सोचमें सूखकर आधी रह गई हैं। ऐसी किरिस्तानी विद्याको दूरहीसे दण्डवत बाबा ! हमलोग तो कहनेको औरतें हैं; मगर हमसे गैरकी भी आँखोंमें आँसू नहीं देखे जाते।"

रधियाकी यह मीठी घुड़की समाप्त भी नहीं हुई थी कि पिताजी भीतर आगये। मैं भी उन्हें देखकर जरा अदबके साथ खड़ा हो गया। उन्होंने आते ही कहा—"क्या है राधिया ?" रधिया घरमें झाड़ू दे रही थी। उसने एक बार जोरसे झाड़ू चलाकर कहा—"है क्या ! जो सदा होता है वही आज भी है।" इतना कहकर वह फिर जोरसे झाड़ू देने लगी। किन्तु जिस जगहपर उसकी झाड़ू चल रही थी वह जगह इतनी साफ थी कि वहाँपर रत्ती भर सेंदुर भी गिर पड़नेसे सहज ही उठा लिया जा सकता था। रधियाके रँग ढँग देखकर मुझे मालूम पड़ा कि अगर उसका वश चलता तो आज वह मेरा सारा विष झाड़ डालती।

पितृदेव और कुछ न कह कर आँगनमें तख्तपर बैठ गये। उनकी आज्ञासे मुझे भी बैठना पड़ा। मुझे आजके इस गोलमालका कारण मालूम हो गया। मैं भी चुपचाप मन लगाकर पिताजीकी बातें सुनने लगा।

पिताजीने कहा—"बचुआ, अबतक तुम नासमझ या बच्चे थे, इसीसे अबतक मैंने तुमसे कुछ नहीं कहा। मगर अब कहनेका समय आ गया है। तुम इस समय पढ़ लिखकर जानकार हो चुके हो। तुम्हारी स्त्रियां

और बुद्धिकी बड़ाई सुनकर उससे हम सब अपना गौरव समझते हैं। सब लोग तुम्हारे स्वभाव, चरित्र और ज्ञानकी बड़ाई करते हैं। तुमने इतना पढ़-लिखकर नौकरी या कोई रोजगार नहीं किया, इसके लिए मैं जरा भी दुःखित नहीं हूँ। तुमने जिस विचारसे शान्तिकुटीरमें रहनेका संकल्प किया है वह बहुत अच्छा है और मैं भी उसको पसंद करता हूँ। किन्तु तुम्हारे एक विचारको मैं किसी तरह पसंद नहीं कर सकता। तुमने जो जन्मभर ब्याह न करनेका विचार किया है वह मेरी समझमें किसी तरह युक्तियुक्त और उचित नहीं कहा जा सकता। मुझे इस बात-पर विश्वास है कि ब्याह किये बिना मनुष्यको धर्मकी सच्ची जानकारी नहीं हो सकती। तुमने ब्रह्मचर्य्य पालन करते हुए इतने दिनोंतक विद्या पढ़ी सो अच्छा ही किया। अब ब्याह करके गृहस्थ-धर्मका पालन करो। उसमें भगवानकी कृपा और महिमाको तुम और भी समझ सकोगे। मैं जानता हूँ, तुमको शान्ति बहुत पसन्द है। तुम संसारके शोर-गुल, गोलमाल और आपत्ति-विपत्तिकी बात सोचकर ही शायद उससे दूर रहनेकी इच्छा करते हो। मगर सोचकर देखो, परमेश्वर मनुष्यकी भलाईके लिए ही उसे संसारके झगड़ों—आपत्ति-विपत्तियों—में डालते हैं। सोनेमें मेल या मैल होने पर आगमें डालनेसे वह शुद्ध हो जाता है। वैसे ही संसारकी आपत्ति-विपत्तिमें पड़नेसे मनुष्यके अहंकार—अभिमान आदि मनके मैल मिट जाते हैं और वह शुद्ध और एकाग्र चित्तसे भगवानकी आराधना करनेमें समर्थ होता है। आपत्ति-विपत्ति, गोलमाल और स्वजनवियोगकी शंका करके संसा-रसे अलग रहना पौरुषका चिह्न नहीं है। यह कायरोंका ही लक्षण है। ऐसा करना मानों भगवानकी इच्छा और आज्ञाका विरोध करना है। देखो, संसारमें गृहस्थ होकर ब्याह करके गृहस्थीके धर्मोंका पालन

करना ही जगतका नियम है। अपनी शक्ति भर इस नियमको तोड़ना ठीक नहीं है। किसी खास कारणसे इस नियमको न मानना उतना बुरा चाहे न भी हो; लेकिन इसमें कोई सन्देह नहीं कि तुम्हारे इस नियम-विरुद्ध विचारका वैसा कोई खास कारण नहीं है। गृहस्थीमें भगवान तुमको चाहे दुख दें, चाहे सुख दें, तुम्हें सिर झुकाकर उसे आदरके साथ ग्रहण करना चाहिए। देखो, यह संसार लगातार सुखकी जगह नहीं है। दुख सुखका सदाका साथी है। तुम्हें सुख और दुख दोनोंके लिए तैयार रहना चाहिए। दुखको देखकर डरो नहीं; जंगलमें भागनेकी चेष्टा मत करो। भगवान् न करें, यदि कभी तुम्हें दुख या विपत्तिका सामना करना पड़े, तो उसे तुम विधाताका लिखा हुआ या विधाताकी इच्छा समझना। दुख और विपत्तिमें धीरज न छोड़कर उन्हें सहना। तुम सब समझते हो। इसलिए इस बारेमें तुमको बहुत उपदेश देनेकी जरूरत नहीं है। मैं अपना कर्त्तव्य समझकर और एक बात तुमसे कहूँगा। यह बात अगर मेरे सम्बन्धकी होती तो न कहता। तुम्हारे ब्याह न करनेसे तुम्हारी माताको बड़ा दुःख है। वह तुम्हारा ब्याह देखकर बहुत प्रसन्न होगी। यह बात तुम अच्छी तरह जानते हो। माताको प्रसन्न करना तुम्हारा एक प्रधान कर्त्तव्य है, और मेरी समझमें धर्मका एक मुख्य अंग भी है। तुमने जब पराई भलाई और पराये सुख-सन्तोषको ही अपने जीवनका एक प्रधान कर्म समझ लिया है, तब माताको सुखी बनाना क्या तुम्हें उचित नहीं है? देखो, 'आत्मत्याग' के बिना कभी पराया उपकार नहीं किया जा सकता और कोई बड़ा काम भी नहीं हो सकता। ब्याह करनेसे अगर तुम्हारे सुखमें कुछ विघ्न हो, मगर तुम्हारी माताको आनन्द हो, तो भी तुम्हें ब्याह करना उचित है। खुद कष्ट सहे बिना क्या कभी दूसरेको सुखी बनाया जा

सकता है ? मगर यहाँ तो यह बात भी नहीं है; व्याह करनेसे तुम्हारे सुखमें विघ्न पड़नेकी तनिक भी संभावना नहीं है। अगर तुम्हारी कमनसीबीसे तुम्हारी स्त्री तुम्हारे मनकी नहीं भी हुई, तो परमेश्वरकी इच्छापर अपना जीवन निर्भर करके अपने कर्त्तव्यका पालन करते रहना। तुमको महात्मा सुकरात (साक्रेटीस) का हाल तो अच्छी तरह मालूम होगा। उन्होंने किसतरह अपनी जिन्दगी बिताई, सो एक बार याद करो। मगर तुम्हें वैसा भय करनेका कोई कारण नहीं है। मैंने तुम्हारे लिए एक अच्छी लड़की ढूँढ रक्खी है। लड़की सब तरह तुम्हारे ही माफिक और तुम्हारे ही लायक है। उस लड़कीको देखते ही मुझे जैसे निश्चय सा हो गया है कि भगवानने उसे तुम्हारे ही लिए और तुम्हें उसीके लिए पैदा किया है। भगवानने शायद अपनी इच्छा पूर्ण करनेके ही लिए तुम दोनोंको इस तरह एकको दूसरेके पास पहुँचा दिया है। जानते हो मैं किसके लिए कह रहा हूँ ? वह लड़की व्यासजीकी बड़ी लड़की भगवती है।"

इतना कहकर पिताजीने मेरे मुँहकी ओर देखा। मैं क्या जवाब देता ! कुछ कहनेकी गुंजाइश ही नहीं थी। पिताजीकी इस स्नेहकी मीठी झिड़कीसे कि मैं अपने सुखकी खोजमें माताजीके दुखपर ध्यान नहीं देता, मैं बहुत ही लज्जित हुआ। मैं मन-ही मन अपनेको सैकड़ों धिक्कार देने लगा। मैंने सोचा—मै बड़ा ही धूर्त्त, खुदगर्ज, अधम मनुष्य हूँ। इसी तरह क्या मै जीवनके कर्त्तव्य या धर्मका पालन करूँगा ! प्राण देनेसे भी जिनका ऋण चुकाया नहीं जा सकता, वे माता-पिता अगर साधारण बात—व्याह करने—से प्रसन्न हों तो उसमें अनिच्छा प्रकट करना भारी कृतघ्नताका काम है।

मैंने उसी घड़ी अपने मनमें प्रतिज्ञा की कि भगवती अगर नरकका कीड़ा भी हो तो भी मैं उससे व्याह करूँगा; और व्याह करनेसे यदि

मुझे हर घड़ी लाखों बिच्छुओंके काटनेकी ऐसी पीड़ा भी सहनी पड़े, तो भी मैं किसीके आगे उसे जाहिर न होने दूँगा। एक अन्तर्यामी भगवानके सिवा और कोई भी उसे नहीं जान सकेगा।

मुझे चिन्तामें डूबा हुआ देखकर पिताजीने कहा—बचुआ, क्या कहते हो?

मैंने कहा—मुझे आपकी आज्ञाके विरुद्ध कुछ नहीं कहना है। आपकी और माताजीकी आज्ञा और इच्छा मेरे सिर आँखोंपर है। भगवती हो, या और ही कोई हो, जिसके साथ आप चाहें उसके साथ ब्याह करनेमें मुझे 'नाहीं' न होगी, किन्तु अगर आप भगवतीके साथ ही मेरा ब्याह करना चाहते हैं तो मेरी एक यही प्रार्थना है कि अभी आप एक महीनेतक इस बारेमें किसीसे कोई बात न कहें। उसके बाद आप जो चाहें सो करें। मैं आपसे एक महीनेका समय चाहता हूँ।

पिताजी मेरी बात सुनकर हँस पड़े और बोले—अच्छा, ऐसा ही होगा। महीने भर मुझे भी बाहर रहना पड़ेगा। मैं आज-कलमें एक कामके लिए कलकत्ते जानेवाला हूँ। तुम्हारी माता महीने भर तुम्हारे पास, शान्तिकुटीरमें ही, रहना चाहती है। रधिया भी वहीं रहेगी। नौकर इस घरकी रखवाली करेगा। तुम्हारी क्या राय है?

मैंने कहा–यह तो बहुत ही अच्छी बात है। माताजी अगर वहाँ रहेंगी तो मुझे नित्य, दोनों वक्त यहाँ आना जाना नहीं पड़ेगा। इसके बाद धीरेसे माताजीकी ओर देखकर मैंने कहा–मगर अम्मा, तुम या रधिया इस ब्याहकी खबर अभी किसीको न देना।

माताजीने कहा–नहीं बचुआ, मैं किसीसे भी नहीं कहूँगी।

रधिया भी कह उठी–बचुआजी, आपने क्या मुझे ऐसी-वैसी समझ लिया है? मैं दुनियामें ऐसा किसीको नहीं देखती जो मेरे पेटकी बात निकाल ले।

इतना कहकर रधिया झाड़ू लिये दूसरी दालानमें बुहारने चली गई। माताजीके अनुरोधसे पिताजी नहाने धोने गये। मैंने भी, नहानेके लिए, पिताजीके साथ कुएँकी राह ली।

चौदहवाँ परिच्छेद।



मेरे व्याहके लिए राजी होनेपर माताजीको बेहद खुशी हुई। उनके आनन्द और उत्साहको देखकर मुझे भी बड़ी प्रसन्नता और शान्ति हुई। दूसरे दिन पिताजी कलकत्ते चले गये। मैं भी माताजीको और रधियाको साथ लेकर शान्तिकुटीरमें रहने लगा। माताजीके कुछ दिन शान्तिकुटीरमें रहनेकी खबर पाकर शान्तिपुर गाँवकी औरतोंकी खुशीका ठिकाना नहीं रहा। प्रायः नित्य ही गाँवकी बड़ी बूढ़ी और बहू बेटियाँ छुट्टीके समय मेरे घरमें आने लगीं। उस समय मैं अकसर शान्तिकुटीरसे मिले हुए साखूके जंगलमें घुसकर एक मनोहर साफ जगहमें घासके बिछौनेपर लेटकर एकाग्र मनसे पुस्तक पढ़ा करता था। उस जगहपर और कोई आदमी या जीव नहीं आता था। केवल मोहन बीच बीचमें आकर मुझे दूरसे देख जाता था। जिस दिन मैं जंगलमें बेहोश पड़ा हुआ था उस दिनसे मोहन मेरी बड़ी देख-रेख रखता था। वह कभी कभी जंगलमें यों न पड़े रहनेके लिए मुझे उपदेश भी दिया करता था।

मैंने पिताजी और माताजीसे जो एक महीने तक व्याहकी बात न उठानेके लिए प्रार्थना की थी उसके कई विशेष कारण थे। एक तो मैंने व्याहके बारेमें अभीतक अच्छी तरहसे विचार नहीं किया था। इसी कारण, व्याहके बाद मेरे जीवनका कर्त्तव्य क्या होगा, इसका निर्णय करनेके लिए कुछ मोहलतकी जरूरत थी। दूसरे मैंने यह सोचा

कि, भगवतीके साथ मेरे व्याहकी खबर अगर पहलेसे फैल जायगी तो मैं पहलेकी तरह, बिना सङ्कोचके, व्यासजीके घर जा न सकूँगा—कथा सुननेमें विघ्न होगा । भगवती भी फिर मेरे आगे कभी नहीं निकलेगी । पाठकोंको यह तो बताना ही न होगा कि ऐसा होना मुझे पसन्द न था । तीसरा कारण यह था कि भगवतीके साथ मेरा व्याह पिताजी करनेवाले हैं, यह सुनते ही भगवतीको अच्छी तरह देखने और जाननेकी इच्छा प्रबल हो उठी। यह बात न थी कि भगवतीको मैंने देखा न हो । मगर न जानें क्यों उस समय उसे देखनेसे सन्तोष नहीं हुआ । व्याहकी बात अगर पहलेसे फैल जाती तो फिर मैं भगवतीको न तो अच्छी तरह देख सकता था और न जाँच ही सकता था ।

इसी तरहके कई कारणोंसे मैंने पिता-माताके निकट कुछ मोहलत मिलनेकी प्रार्थना की थी । पिताजी और माताजीने मेरे इस प्रस्तावका क्या मतलब समझा सो मैं नहीं कह सकता । जो कुछ हो, मुझे अपनी इस दूरदर्शिताका फल भी जल्दी ही देख पड़ा । माताजी, शान्तिकुटीमें आनेके बाद, दो-चार बार व्यासजीके घर गईं । व्यासजीकी स्त्री भी अपने लड़के लड़कियोंके साथ दो-चार बार हमारे घर आईं । इसके बाद गृहस्थीके काम काजके मारे माताजी या व्यासजीकी स्त्रीका आना-जाना कम हो गया। मगर व्यासजीके लड़की लड़के बराबर आते-जाते रहते थे । उनके लिए कोई रुकावट नहीं थी । वे प्रायः नित्य ही खा-पीकर माताजीके पास आते थे । माताजी सहज ही उनपर बहुत स्नेह रखती थीं । अब वह स्नेह अनेक कारणोंसे और भी बढ़ उठा । लड़की-लड़के भी माताजीसे बहुत हिल-मिल गये थे; वे उनके पास बड़ी खुशीसे रहते थे । अगर किसी दिन किसी कारणसे वे न आ सकते थे, तो माताजी उसी दम उन्हें ले आनेके लिए रधियाको भेजती

थीं। मैं दोपहरके समय अकसर घरपर नहीं रहता था—यह मैं पहले ही कह चुका हूँ। उस समय मैं हरी और मुलायम घासके विस्तरपर लेटकर वर्ड्सवर्थकी कविता पढ़ा करता था।

एक दिन गाँवकी औरतोंके चले जाने पर मैं घरमें आया और सीधा पढ़ने लिखनेके कमरेमें चला गया। वहाँ जाकर मैंने देखा कि मेरी पुस्तकोंको कोई झाड़-पोंछकर बहुत अच्छीतरह सजाकर रख गया है। मोहन मेरी पुस्तकोंको रोज झाड़ता-पोंछता जरूर था, लेकिन वह उन्हें ठीक सिलसिलेसे सजाकर रख नहीं सकता था। आज पुस्तकें इस ढँगसे रक्खी हुई देखकर मुझे कुछ विस्मय हुआ। मैंने कौतूहलके मारे उसी समय रधियाको बुलाकर पूछा—"रधिया, आज मेरी पुस्तकें किसने इस तरह रक्खी हैं?"

रधियाने कुछ गंभीर होकर कहा—"जिसका काम है उसीने किया होगा।"

मैंने कहा—"काम तो मोहनका है। मगर वह तो इस तरह ठीक ढँगसे पुस्तकें रख नहीं सकता। तूने तो पुस्तकें नहीं सजाई?"

रधियाने कहा—"नहीं भैया। हम लोगोंसे भला ये काम हो सकते हैं? अच्छी तरह घर बुहारनेको कहो, नाज कूटने-पीसनेको कहो, बासन माँजनेको कहो, कपड़े छाँटनेको कहो तो हम इस तरह उसे करेंगे कि कोई उसमें कुछ भी दोप नहीं निकल सकेगा। मगर पोथियोंको उठाना-रखना हम अपढ़ आदमी क्या जानें? जो संसकीरत (संस्कृत) जानता हो, पण्डितोंकी तरह पढ़ सकता हो, वही इन सब कामोंको कर सकता है।"

मैंने कहा—"तो फिर किसका यह काम है? अम्मा तो इस कमरेमें नहीं आई? और 'संसकीरत' कौन जानता है—पण्डितोंकी तरह कौन पढ़ता है?"

रधियाने कहा—"सो मैं क्या जानूँ! अम्मा तो गाँवकी औरतोंसे बातें ही करनेमें लगी रहती हैं; उन्हें छुट्टी कहाँ है? और अगर उन्हें छुट्टी ही होती तो वे इस तरह पोथियाँ सजाकर रखना क्या जानें?"

मैंने कुछ क्रोध करके कहा—"तो फिर क्या भूत आकर पोथियाँ रख गये?"

रधिया भूतको बहुत डरती थी। भूतका नाम सुनते ही वह काँप उठी। उसने कहा—"भगवानके लिए उनका नाम न लीजिए। वे क्यों पोथी छूने लगे?"

मैंने और भी बिगड़कर कहा—"तो फिर कौन पोथियाँ रख गया है, खुलासा बतलाती क्यों नहीं? बदमाशी क्यों करती है?"

रधियाका मुँह बरसनेवाले बादलकी तरह भारी हो गया। आँखोंमें आँसू छलक आये। रधियाने कहा—"भैया! तुम गाली नाहक देते हो, मैं कुछ भी नहीं जानती। मैं तो अपने काममें ही लगी रहती हूँ। मुझे यह देखनेकी फुरसत कहाँ कि आपकी किताबें किसने उठाई-धरीं, आपके कमरेमें किसने क्या किया?"

इतना कहकर रधिया जाने लगी।

मैंने कहा—"अच्छी बात है, जाओ। मगर देखो, अब अकेले मेरे इस कमरेमें न आना। यह जो खिड़कीके पास चंपेका पेड़ देखती हो, इसमें एक ब्रह्मराक्षस रहता है। वही बीच बीचमें आकर मेरी किताबें सजाकर रख जाता है। आज भी दो-पहरको वह जरूर आया होगा। मैं ब्राह्मण हूँ। मेरा जनेऊ देखकर वह मुझसे नहीं बोलता। मगर तुम शूद्रकी लड़की हो। खबरदार, अकेले इस कमरेमें कभी न आना। अकेलेमें वह राक्षस गरदन मरोड़कर खून चूस लेगा, यह समझ लेना!"

ब्रह्मराक्षसका नाम सुनते ही रधिया डरसे आँखें मूँदकर चिल्ला उठी और सीढ़ीसे झटपट नीचे उतरते उतरते मोहनसे जाकर टकरा गई। तीसरे प्रहरका समय था। सीढ़ियोंपर अँधेरा घना हो गया था। रधियाने नहीं देख पाया कि मोहन ऊपर आ रहा है। सचमुच वह इतनी डर गई थी कि आँखें बंद किये ही भागी। जैसे रधिया मोहनके ऊपर जाकर गिरी वैसे ही चोट लगनेसे गुस्सेमें आकर मोहनने भी उसके एक थप्पड़ मार दिया। रधिया उसे सचमुच ब्रह्मराक्षस ही समझकर "बाप रे, मर गई रे, बरमराच्छसने खा लिया रे!"—इस तरह चिल्लाती हुई लुढ़कती पुढ़कती नीचेके बरामदेमें जाकर गिर पड़ी।

उसका चिल्लाना सुनकर घबराई हुई माताजी झटपट वहाँपर आ गईं और पूछने लगीं—"क्या हुआ रधिया, क्या हुआ?"

कौन बतलावे कि क्या हुआ। रधिया तो अपने आपेहीमें न थी; कौन जवाब देता? रधिया उसी तरह चिल्लाती रही। दो एक मिनिटके बाद रधिया रोते रोते कहने लगी—"अरे दैया रे—मुझे अभी बरमराच्छसने पकड़ लिया था! मुझे तो वह खा ही चुका था!—"

माताजीने कहा—बरमराच्छस कहाँ है री?

रधिया—"अरे वह सीढ़ियोंपर था, सीढ़ियोंपर।"

माताजीने कहा—"सीढ़ियोंपर क्या है री? मोहन ऊपर जा रहा होगा, उसीको मैंने ऊपर भेजा था; जान पड़ता है तू उसीके ऊपर अन्धीकी तरह भरभरा पड़ी है।"

रधियाने रोना कुछ कम करके कहा—"मोहनको क्या मैं पहचानती नहीं? वह जरूर बरमराच्छस था। अरे बापरे काला काला लंबा-चौड़ा वह मुझे देखते ही दौड़ा। तनिक और होता तो वह मुझे यों ही निगल जाता।"

रधियाकी बात पूरी भी नहीं होने पाई कि मोहनने नीचे जाकर कहा—माजी, यह सच कहती है। मैं इसे निगल न जाता तो मार जरूर डालता। मेरी नाकके ऊपर इसका सिर इतने जोरसे लगा है कि मेरा जी ही जानता है। नाक अभीतक झन्ना रही है।

अब तो रधिया आग हो गई। उसने कहा—"हाँ रे हरामजादे छोकरे, तू आ रहा था, तो तूने मुझसे कहा क्यों नहीं कि मैं ऊपर आ रहा हूँ? अरे बापरे, तेरा इतना बड़ा मुँह कि तू मेरे थप्पड़ मार दे। अम्मा, मुझे तुम छुड़ा दो। मैं नहीं रहूँगी। बाप रे! मुझे मेरे बाप और भाईने भी कभी नहीं मारा, सो आज यह छोकरा मुझे थप्पड़ मार बैठा! सुकुलाइनने मुझे मना किया था कि तू वहाँ जंगलमें न जाना। बचुआजीका मोहन एक बरमराच्छस है; उसपर एक सचमुचका बरमराच्छस भी है जो उस चंपेके पेड़में रहता है। भाई तुम तो बाम्हन हो, तुमसे वह कुछ भी नहीं बोलेगा। मैं सूदकी लड़की हूँ, मुझे तो वह मार ही डालेगा।"

माताजीने कहा—"तू यह क्या बकबक कर रही है? बरमराच्छस यहाँ कहाँ है?"

रधियाने कहा—"तुम क्या जानो अम्मा, वह बचुआजीसे बातें करता है और उनकी पोथियोंको साफ करके सजाकर रख जाता है। आज मैंने और भगौतीने मिलकर पोथियाँ रक्खी थीं, मगर वह रोज ही पोथियाँ ठीक करके रख जाता है! अब मैं उसके हाथसे कैसे बचूँगी मैया!"

यों कहते कहते रधियाके हृदयमें शोकका सागर उमड़ आया। वह तो पैर फैलाकर, सप्तममें स्वर चढ़ाकर, मरी हुई माँको याद कर करके रोने-बिलखने लगी। ढँग तो रोनेके कई थे, मगर मतलब यही था

कि "उसकी माँने क्या ब्रह्मराक्षसके खानेके लिए ही उसे नौ महीने अपने पेटमें रक्खा था?"

रधिया दासीकी अभागी माँ अगर आज जीती होती तो वह जरूर ही अपनी दुलारी बेटीके इस प्रश्नका कुछ सन्तोषजनक उत्तर दे सकती। मगर इसकी कोई संभावना न होनेसे लाचार मेरी माताजीने ही इसके इस प्रश्नका ठीक उत्तर देकर उससे चुप रहनेके लिए कहा। परन्तु उससे चुप होना तो दूर रहा, रधिया और भी चिल्ला चिल्लाकर— फूट फूटकर—रोने लगी। यह देखकर माताजी घरका कामकाज करने चली गईं।

रधिया आँसुओंके मारे अभी तक कुछ देख नहीं सकी थी। थोड़ी देर बाद रोना बंद करके उसने देखा, उसके पास कोई न था! तो अभी तक रधियाका रोना व्यर्थ ही था? ठीक इसी समय मोहनने रधियाके सामने आकर कहा—"ओ रधिया, तू इतना रो क्यों रही है? यहाँ बरमराच्छस होता तो अबतक मुझे खा न जाता? मैं तो अकेला ही इस घरमें सोया करता था।"

मोहनको देखकर और उसकी बातें सुनकर रधिया और भी गुस्सेसे लाल हो गई। उसने कहा—"हरामजादे, बकबक न कर; दूर हो मेरे आगेसे! बरमराच्छस तेरा क्या कर सकता है? तू तो आप ही बरमराच्छस हो रहा है!"

मोहनने कहा—"अच्छा तू अभी जी भरकर गालियाँ दे ले। देखा जायगा। हे बरमराच्छस बाबा, तुम सब सुन रक्खो।"

यों कहकर वह चला गया। रधिया बहुत डरी। मोहनके चले जानेपर वह धीरे धीरे उठ कर माताजीके पास गई और कहने लगी—अम्मा, तुम बचुआजीका ब्याह करना चाहती हो तो जल्दी कर डालो। मुझसे

यहाँ नहीं रहा जायगा । बचुआजी अपनी बहूको लेकर यहाँ रहना चाहें तो रहें। आप अपने उसी घरमें चलकर रहिए। हम लोगोंको इस जंगलमें रहनेकी कोई जरूरत नहीं है। हमको अपना वही घर अच्छा है। जैसे बचुआजी हैं वैसा ही यह घर है। बहू भी उनकी वैसी ही है। वह लिखना पढ़ना जानती है, संसकीरत जानती है, पण्डितोंकी तरह मन्तुर पढ़ना जानती है। इसके सिवा बचुआजीकी तरह जंगलमें घूमना भी उसे रुचता है। वह इतनी बड़ी लड़की, रोज जंगलमें फूल तोड़ने जाती है। भला अम्माजी तुम्हीं बतलाओ, इतनी सयानी लड़कीको फूलके पेड़ छूना चाहिए? फूलोंके पेड़में न-जाने कितने भूत-परेत रहा करते हैं। न जानें कब किससे भटभेरा हो जाता है। भाई मुझसे इनमेंसे किसीसे भी नहीं बनेगी। उसपर यह नौकर (मोहन) भी जैसेका तैसा है। बाबूजीके घर आते ही तुम जल्दीसे बचुआका ब्याह कर डालो। मुझसे अब यहाँ नहीं रहा जायगा। मैं गरीबकी लड़की हूँ। मुझसे तो यों जानबूझकर जान नहीं दी जायगी।

इतना कहकर रधिया चुप हो गई। जान पड़ता है, मरनेकी बात कहते कहते उनकी आँखोंमें आँसू निकल आये थे।

माताजीने कहा—"अरी तू रो रोकर जान क्यों दिये देती है? भूत-ऊत कहीं कुछ भी नहीं, भूतका नाम सुनकर ही तू जान दिये देती है! तू बचुआके मुँह लगती है, इसीसे वह तुझे डरवाता है।"

रधियाने रोते रोते कहा—मैं कब उनके मुँह लगती हूँ? तुम तो अम्मा सब जानती हो। पहले ब्याहका नाम लेना भी उन्हें अच्छा नहीं लगता था; अब दिन भरमें सौ सौ तरहसे भगौतीकी बातें पूछा करते हैं। मेरी इतनी उमर आई है। क्या मैं इन मारपेंचकी बातोंको समझती नहीं? मगर मुझसे उनके ऐसा बेहयापन तो नहीं हो सकता।"

मैंने देखा कि तमाशा तो बुरा नहीं है। मैंने कुछ क्रोध जाहिर करनेवाले स्वरसे पुकारा—"रधिया!"

रधिया एकदम चुप होगई। उस बड़े भारी घरमें बहुत देरतक सन्नाटा छाया रहा।

पन्द्रहवाँ परिच्छेद।



रधियाका स्वभाव ही ऐसा था। वह झूठका एक भारी भाण्डार थी। वह जिसके स्वभावको—चरित्रको—समझ नहीं सकती थी उसपर मन-ही-मन घिन करने लगती थी; और मौका मिलते ही उसकी पीठपर अपना जहरीला दाँत जमा देती थी। उसकी जहरीली बातोंसे जानके लिए कोई खटका न होनेपर भी उस जहरकी जलन बड़ी ही कड़ी होती थी। वह जलन दम भर ठहरनेवाली होने पर भी बिल्कुल ही असह्य थी। हृदयके हिसाबसे सुकल्लाइन और रधिया दोनों सगी बहनें थीं। दोनोंमें खूब पटती थी। इसीसे सब लोग इस जुगल—जोड़ीको डरते थे, और उन डरनेवालोंमें एक मैं भी था।

रधिया जब तक प्रसन्न रहती थी तब तक तो वह सीधी सादी और भोली जान पड़ती थी; मगर जो किसी कारणसे वह नाखुश हो जाती थी तो फिर साक्षात् चण्डीका रूप रख लेती थी। जिसपर रधियाको क्रोध होता था उसे, मौका मिलते ही, वह अवश्य अपने जहरसे जलाती थी। किन्तु क्रोध शान्त हो जानेपर वह बहुत पछताती भी थी। वह डरती थी कि जिससे मैं लड़ती हूँ वह मुझे पीछे सतायगा और बदला लेगा। यही कारण था कि वह जिससे झगड़ा करती थी उसे जबतक प्रसन्न नहीं कर लेती थी तबतक उसे चैन नहीं पड़ती थी। खुशामदसे, रोकर,

अपने अपराधको स्वीकार कर, जिस तरह हो, जिससे झगड़ा करती थी उसे सन्तुष्ट किये बिना वह नहीं रहती थी। रधियाको सबसे बढ़कर खौफ यह था कि कोई दुश्मनीसे किसी भूतका सामना न करा दे! रधियाको मौतसे भी बढ़कर भूतका भय था! सच पूछिए तो इस भूतके भयसे ही वह मानवी बनी हुई थी; नहीं तो वह दानवी ही होती!

जो कुछ हो, जिससे वह झगड़ा करती थी उसे किसी तरह राजी कर लेने पर उसके आनन्दकी सीमा नहीं रहती थी। लेकिन कठिनता तो यह थी कि, वह इधर एकसे लड़कर उसे राजी करती थी और उधर दूसरेसे झगड़ा कर बैठती थी। इसी तरह प्रायः गाँवभरके लोगोंसे वह झगड़ा करती थी और फिर दो ही चार दिनोंमें सहज ही वह झगड़ा मिट भी जाता था। झगड़ा तो मिट जाता था, मगर रधियाको कोई फूटी आँखोंसे भी नहीं देख सकता था।

हमारे घरमें भी रधियाके द्वारा बहुत सी अशान्ति आ जाया करती थी। रधियाके मा-बाप लड़कपनहीमें मर गये थे। इसी अवस्थामें वह विधवा भी हो गई। हमारी माताजीने उसे अपने घरमें रख लिया। तभीसे वह हमारे घरमें, अपने सगेकी तरह, रहने लगी। हममेंसे किसीने कभी उससे दासी नहीं समझा। माताजीने उसे लड़कीकी तरह पाला-पोसा था। यही कारण था कि वे उसके सारे उपद्रवोंको सह लेती थीं, और उससे कुछ न कहती थीं। हम भी उसे बहिनकी तरह मानते थे। मैं जब बच्चा था तब रधिया बीच बीचमें मुझे मारती थी। मैं भी मारके भयसे उससे दबता था! पर अब मैं बड़ा हो चुका था और इसीसे अपनी इच्छाके अनुसार काम करता था। मेरे काम मेरे मनके माफिक जरूर होते थे, मगर रधियाको उनमेंसे बहुतसे काम पसन्द नहीं आते थे। इसी कारण वह मेरे ऊपर मन-ही-मन बहुत नाराज रहती थी। नाराज रहती थी,

मगर मेरे आगे वह अपने मनके भावको प्रकट नहीं कर सकती थी। हाँ, अगर मेरे ऊपर किसी दिन अधिक असन्तुष्ट होती थी तो पीठ-पीछे मेरी खूब निन्दा करती थी। आज भी इसी तरह मेरे ऊपर नाराज होकर उसने जरासा जहर उगल दिया; किन्तु मैंने उसे जहर उगलते देख लिया; और मैंने देख लिया, यही जतानेके लिए मैंने उसका नाम लेकर पुकारा। रधिया सब समझकर मारे डरके सन्नाटेमें आ गई। सन्नाटेमें आनेका एक प्रधान कारण था। वह यह कि ब्रह्मराक्षसके साथ मैं अपनी दोस्ती बतला चुका था, और उसे उसपर विश्वास भी हो गया था।

उस दिन रधियाके हृदयमें उधेड़-बुन मच गई। वह मेरे निकट अपराधिनी थी। इस कारण उस दिन वह मेरे सामने नहीं आ सकी। मगर वास्तवमें मुझे उसपर कुछ भी क्रोध नहीं था। इस तरहकी एक न एक घटना प्रायः नित्य ही हुआ करती थी। ऐसी दशामें कहाँ तक क्रोध किया जा सकता है? रधियाके रँग-ढँग देखकर मुझे मालूम हो गया कि मैं एक बात भी इससे कहूँ तो यह निहाल हो जायगी। बस, दूसरे दिन सबेरे जिस समय रधिया घर बुहारते बुहारते मेरे पढ़नेके कमरेमें आई तब मैंने कहा क्यों रधिया, कल तेरे बड़ी चोट लगी थी?

रधियाने गद्गद स्वरसे कहा—"चोट क्यों नहीं लगी भैया! बदमाश मोहनाने ऐसे जोरसे थप्पड़ मारा था कि मेरे गालमें पाँचों उँगलियाँ उपट आईं। और कल सिरमें दर्द भी इस जोरसे हो रहा था कि मैं रातभर सिर डाले पड़ी रही। पड़े पड़े मेरे हाथों पैरोंमें भी दर्द होने लगा है। अभीतक पैरोंमें दर्द हो रहा है।" इतना कहते कहते उसकी आँखोंसे दो-चार आँसू टपक पड़े।

रधियाकी इन बातोंका खास मतलब मेरे मनमें अपने ऊपर हमदर्दी पैदा करना ही था। किन्तु उसकी यथार्थ दशा देखकर भी मैं बहुत

ही दुःखित और लज्जित हुआ। मैंने सोचा कि रधियाको भूतका भय दिखाना अच्छा नहीं हुआ। इसके लिए मुझे पहले ही दिन पछतावा हुआ था। इस समय उसकी ये बातें सुनकर मैं बहुत ही शरमिन्दा हुआ। मैंने रधियासे सहानुभूति प्रकट करते हुए कहा—"रधिया, मैं बहुत ही लज्जित हूँ। मुझे नहीं मालूम था कि तू गिर पड़ेगी और इतना कष्ट पावेगी। मोहना भी बड़ा गँवार है। चोट लग गई थी तो भी औरतपर हाथ चलाना न चाहिए था। खैर, मैं उसे सावधान कर दूँगा।"

ये हमदर्दीकी बातें सुनकर रधियाकी आँखोंसे आँसुओंकी झड़ी लग गई। बहुत देरतक चुपचाप रधिया रोती रही। उसके बाद कुछ सँभलकर उसने कहा—"भैया, मैं तो अनाथ हूँ। मुझपर तुम्हें दया रखनी चाहिए। पत्थर पड़ें मेरी आदतपर; क्रोधमें मैं न-जानें क्या क्या बक डालती हूँ। तुम मेरी ऐसी बातोंपर ध्यान न दिया करो। मैं तुमको अपने भाईसे भी बढ़कर अपना समझती हूँ। तुम लोगोंने मुझे संसारमें खड़े होनेको जगह दी है। नहीं तो मैं अबतक न जानें किधर बह जाती। जबतक मैं जिऊँ तबतक मुझे अपनी सेवामें रहने दो।"

मैंने कहा—"रधिया, तू रोती क्यों है? हमलोग तो तुझे कभी कुछ कहते भी नहीं। कल तू माताजीसे कैसी झूठी झूठी बातें कह रही थी? मैंने उनका भी कुछ बुरा न माना। मैंने सोचा कि यह क्रोधके काबूमें आकर बक रही है, बकने दो। मैं तेरी बातोंसे खुश या नाराज नहीं होता।"

रधियाने बिना किसी सङ्कोचके कह डाला—"भैया, मैं सच कहती हूँ, मुझे नहीं याद कि मैंने कल क्या कहा था। तुम कुछ बुरा न मानना। कल भगवतीके साथ मैंने तुम्हारी किताबें सँभालकर रक्खी

थीं। यह बात मैं कहनेहीवाली थी कि तुमने बरमराच्छसका नाम ले दिया !—हा भैया, क्या सचमुच इस पेड़में बरमराच्छस रहता है ?"

सवाल करते-ही-करते रधियाके रोंगटे खड़े हो आये और उसने हाथ जोड़कर ब्रह्मराक्षसके लिए प्रणाम किया।

मैंने हँसकर कहा—"दूर हो पगली, ब्रह्मराक्षस कहाँ है ? यह सब झूठी बात है। मैं तुझे डरवा रहा था।"

रधियाने मेरी बातपर विश्वास न करके कहा—"नहीं भैया, तुम मुझे भुलावा दे रहे हो।"

मैंने कहा—मैं तुझसे सच कहता हूँ, इस पेड़पर ब्रह्मराक्षस नहीं है। डरनेसे ही डर लगता है। मैं तुझसे एक बात कहे देता हूँ; उसे तू याद रखना। जब तुझे डर लगे तभी तू भगवान्‌का ध्यान करना। फिर तुझे डर नहीं लगेगा।"

रधियाने कहा—"अच्छा, रामनाम लेनेसे भी क्या भूतका भय नहीं रहता ?"

मैंने कहा—"एक ही बात है। जो भगवान् है वही राम हैं। रामका नाम ही लेना।"

रधियाने कुछ खुश होकर कहा—"भैया, क्या मैं यह जानती नहीं कि तुम मुझसे स्नेह रखते हो—मेरी भलाई सोचते हो ! भगवतीके बारेमें मैंने जो कुछ जाना है सो सब तुमसे किसी समय कहूँगी। यह सुनो, मा न-जानें क्यों बुला रही हैं; जरा सुन आऊँ।"

मैंने हँसकर कहा—"जा।"

भूतका भय मिट जानेसे मैं भी प्रसन्न हुआ। रधियाके आनन्दकी तो कुछ हद ही नहीं थी।

सोलहवाँ परिच्छेद ।

रधियाने भगवतीके बारेमें क्या जाना है, यह जाननेके लिए मुझे कुछ उत्सुकता हुई । माताजीके मुँहसे सुना कि भगवती तीन चार दिनसे हमारे घर नहीं आई; रधियाके बुलाने जाने पर भी भगवती नहीं आई। सुनकर मुझे कुछ विस्मय हुआ । मामला क्या है, यह जाननेके लिए एक दिन मैंने रधियाको अपने पास बुलाकर कहा—" रधिया, भगवती अब हमारे घर क्यों नहीं आती ? क्या तू आज उन लोगोंको बुलाने गई थी ? "

रधियाने कहा—" मैं अभी अभी तो उनके यहाँसे लौटी चली आ रही हूँ। भैया, भगवती किसी तरह आना ही नहीं चाहती।"

मैं—" क्यों ? "

रधिया—" सो मैं क्या बताऊँ ? उसकी माँने तो कई दफे मेरे साथ आनेके लिए भगवतीसे कहा । मगर वह नहीं आई, मैं क्या करूँ ? "

मैं–" तो क्या तूने भगवतीको कुछ कहा था ? "

अब रधिया कहाँ जाय ? यह प्रश्न करते ही भोली भाली रधियाने रोकर आकाश--पाताल एक करना शुरू कर दिया । इन तीन चार दिनोंमें रधिया ब्रह्मराक्षसकी बातको एकदम भूल ही गई थी । रधियाके रँग-ढँग देखकर मुझे एक सन्देह हुआ । शायद इसने भगवतीसे मेरे ब्याहके बारेमें कोई बात कही है; इसीसे वह मेरा घर आना नहीं चाहती और शायद इसी कारणसे आज कई दिनसे व्यासजीकी कथाके समय भी मैं उसे वहाँ नहीं देख पाता। सन्देह उत्पन्न होते ही मनका भाव छिपाकर मैंने रधियासे कहा—" तू झूठमूठ चिचियाकर सिरपर आकाश क्यों उठाये लेती है रधिया ? "

रधियाने भर्राई हुई आवाजमें कहा—"तुम भैया यह क्या कहते हो? भला मैं कभी यह बात किसीसे कह सकती हूँ?"

मैंने कहा—"कौन बात?"

रधिया घबड़ा गई। उसने टूटे-फूटे शब्दोंमें कहा—"यही कि, वही बात—जो बात कहनेके लिए तुमने मना कर दिया था—मैं क्या कभी उस बातको कह सकती हूँ भैया? यही देखो, उस दिन किताबें सजानेके बारेमें तुमने कितनी ही बातें पूछीं; पर मैंने कुछ भी तुमसे नहीं कहा।"

श्रीमती राधा दासी अपनी 'बात छिपाने' की शक्तिका परिचय पहले मुझे ही देंगी, इसका पहले मुझे खयाल भी न था। जो कुछ हो, रधियाके इस उत्तरसे मुझे सन्तोष हुआ और मेरा सन्देह धीरे धीरे विश्वासके रूपमें बदलने लगा। मुझे यह बात सम्पूर्ण सम्भव जान पड़ने लगी कि रधियाने ही उस दिन भगवतीसे मेरे ब्याहकी बात कह दी है और इसी कारण भगवती मेरे घर आना नहीं चाहती। मैंने इससे और माताजीसे ब्याहकी बात प्रकट करनेके लिए बार बार ताकीद कर दी थी। रधियाने उस बातको जाहिर कर दिया और उसके लिए मेरे निकट अपराधिनी हुई। मैंने समझ लिया कि रधिया सहज बात नहीं कहेगी और न अपना अपराध ही स्वीकार करेगी। लाचार मैंने भी कौशलसे काम लिया और मैं दूसरे ढंगसे असली हाल जाननेकी कोशिश करने लगा।

मैंने कहा—"भगवतीने पुस्तकें सजाई हैं यह बात तूने अवश्य मुझसे नहीं कही; लेकिन यह हो सकता है तूने भगवतीसे उसके साथ मेरे ब्याह होनेकी बात कह दी हो। और ऐसा होना ही बहुत

सम्भव है । जब कुछ दिनों बाद मेरे साथ उसका ब्याह होनेहीवाला है, तब कहनेमें दोष ही क्या है ? "

इतना कहकर कुछ मुसकिराकर मैंने उससे पूछा—" तूने भगवतीसे क्या कहा था ? और भगवतीने तुझसे क्या कहा था ? "

मैं अगर डाल-डाल डोलता हूँ तो रधिया पात-पात फिरती है । मेरा प्रश्न सुनते ही रधिया साक्षात् सरलताकी मूर्ति बनकर विस्मयके भावसे कह उठी—" वाह, तुम ये कैसी बातें कर रहे हो ! समझ गई, जलमुहे मोहनाने ही यह सब लगाया बुझाया है ! "

मैंने देखा, इस तरह काम नहीं चलेगा । इसीसे मैंने कहा—" मोहनको तू बेकार गाली क्यों दे रही है ? उसने मुझसे कुछ भी नहीं कहा । और तू उस बातके लिए इतना व्याकुल क्यों हो रही है ? तूने कुछ नहीं कहा, नहीं सही । और अगर तूने कुछ कहा ही होगा, तो उससे होगा ही क्या ? अच्छा, यह बता कि भगवतीने उस दिन मेरे पढ़नेके कमरेमें बैठकर कोई संस्कृतकी पोथी पढ़ी थी या नहीं ? "

रधिया—" संसकिरत मंसकिरत कौन जाने भैया । भगवतीने तुम्हारी उसी बड़की किताबको खोलकर इधर उधर उलट पुलटकर पढ़ा था । "

मैं—" जैसे पण्डित लोग पढ़ते हैं उसी तरह ? "

रधिया—" हाँ, उसी तरह । मुझे तो बड़ी हँसी आती थी । "

मैं—" उसके बाद ? भगवतीने कुछ कहा ? "

रधिया—" कहा क्यों नहीं ? भगवतीने किताबोंको बुरी दशामें देखकर मोहनकी बड़ी निन्दा की । मैंने कहा—' न हो तुम ही इन किताबोंको ठीक ठीक सजाकर रख दो । मैं अगर पढ़ी-लिखीहुई होती तो ये किताबें कभी इस तरह न रहने पातीं ।' भगवती चुपचाप किताबोंको

सिलसिलेसे सजाने लगी और मैं धूल झाड़ झाड़ कर उसे देने लगी। भगवतीका स्वभाव ही ऐसा है। वह कहीं भी जरासी गन्दगी नहीं देख सकती। जब हमारे घर आती है तब गिरस्तीकी चीजोंको सँभालकर रख जाती है—अरगनीमें अगर एक भी कपड़ा बेढंगा देखती है तो उसे ठीक सँभालकर रख देती है। माजी तो भगवतीको देखकर बहुत ही खुश होती हैं।"

मैं—"अच्छा यह रामकहानी बंद करके यह बतला कि इसके बाद भगवतीसे तूने क्या कहा?"

रधिया झट अपना बचाव करके कही उठी—"और मैंने क्या कहा? और कहती ही मैं क्या?"

मैंने देखा कि रधियाको काबूमें लाना सहज काम नहीं है। कुछ सोचकर मैंने कहा—"अच्छा रधिया, जरा सोचकर देख तो सही, कुछ ही दिनोंमें भगवतीके साथ मेरा ब्याह हो जायगा, तब तो फिर कोई बात छिपी नहीं रहेगी? सब मुझे मालूम हो जायगा। इसलिए छिपानेका कोई काम नहीं है। भलेमानुसकी तरह सब खुलासा कह दे।"

मेरी ये बातें सुनकर रधियाने कुछ देर सोचा। उसके बाद वह बोली—"तो कहती हूँ, सुनो। खफा न होना, आज कलकी लड़कियाँ बड़ी सयानी हैं; ये अपने मुँहसे कुछ नहीं कहतीं और इसीसे उनके मनकी बात जानना सहज काम नहीं है।"

मैं—"मैं केवल यह पूछता हूँ कि तूने भगवतीके मनका भाव कैसा देखा और क्या समझा?"

रधिया—"कुछ कुछ समझा है।"

मैं—"क्या समझी है, खुलासा क्यों नहीं कहती?"

रधिया—"अच्छा भैया यह तो बताओ कि अन्नपूर्णा तुम्हारी चर्चा होनेपर तुम्हारा नाम लेती है, मगर भगवती क्यों कभी तुम्हारा नाम नहीं लेती?"

मैंने हँसकर कहा—"मेरा नाम नहीं लेती तो इससे क्या? भगवती मेरा नाम लेनेकी कोई जरूरत नहीं समझती, इसीसे वह नाम नहीं लेती। बेमतलब किसी मर्दका नाम लेनेसे लाभ? अन्नपूर्णा अभी बच्चा है। वह बे-मतलब, जब देखो तब, सबका नाम लेती है। मगर भगवतीने सुधबुध सँभाली है। उसकी और अन्नपूर्णाकी क्या बराबर?"

रधियाने कहा—"अच्छा भैया, यह बात जाने दो। भगवतीकी सहेली गोपी अभी सुसरालसे आई है। जब वह सुसराल गई थी, तब यह तुम्हारा घर तैयार नहीं हुआ था। इसीसे वह उस दिन भगवतीके साथ यह घर देखने आई थी। ऊपर जानेके समय तुमको ऊपर समझ कर, भगवती आनाकानी करने लगी। गोपीके बारबार कहने पर भी भगवती ऊपर जानेको राजी नहीं हुई। यह देखकर मैंने कहा—'आती क्यों नहीं हो, ऊपर कोई नहीं है। भैयाजी उस जंगलमें हैं; अभी नहीं आवेंगे'। मेरे यों कहने पर भगवती भी गोपीके साथ ऊपर चली गई। हम तीनों जनी ऊपर घूमघूम कर सब घरकी सैर करने लगीं। तुम्हारे पढ़नेके कमरेमें तुम्हारी किताबोंको बुरी दशामें देखकर भगवती मोहनकी निन्दा करने लगी। यह हाल मैं तुमसे कह ही चुकी हूँ। भगवती और मैं, दोनों, किताबें झाड़-पोंछकर रखने लगीं और गोपी जंगलकी तरफकी खिड़की खोलकर इधर निहारने लगी। उसने जंगलकी ओर देखते ही मुझसे कहा—'हाँजी, तुम्हारे भैया क्या इसी जंगलमें हैं?' मैंने कहा—'हाँ'। गोपीके यह पूछने पर कि तुम जंगलमें क्या किया करते हो मैंने कहा—'पढ़े रहते हैं, शिकार करते हैं—

सोचा करते हैं'। यह सुन कर गोपीने कहा—'अच्छा, तुम अपने मैयाको इस तरह अकेले जंगलमें क्यों पड़े रहने देती हो? किसी दिन आफत हो जायगी।' सुनते ही मैं चौंक पड़ी। मैंने कहा—'यह क्या कहती हो, आफत क्या हो जायगी?' गोपीने कहा—'आफत न हो, सो तो अच्छा ही है। मैं क्या यह कहती हूँ कि आफत हो? मोहनसे जाकर आफतका हाल पूछो। वह तो कहो उस दिन हमारी सखी थी इसीसे आफत टल गई, नहीं तो न-जानें क्या होता!' मैंने कहा 'कहती क्या हो! मोहनाने तो मुझसे कुछ कहा नहीं। बतलाओ, क्या हुआ था?' गोपी कहनेके लिए तैयार थी, मगर भगवतीने आँख मार दी। फिर गोपीने कुछ नहीं कहा। भगवतीकी यह करनी देखकर मुझे उसपर बड़ा गुस्सा आया। मैंने भगवतीसे कहा—'यों आँख मारनेसे क्या होगा? दस पन्द्रह दिनमें तो मैयाकी रखवालीका काम तुमको मिल ही जायगा।' गुस्सेमें मैंने बात कह तो डाली, मगर फिर वैसे ही सँभल गई। मगर गोपी बड़ी नटखट है। वह मुझसे बारबार, खुलासा करके कहनेके लिए, सवाल-पर सवाल करने लगी। मगर मैंने कुछ भी नहीं बताया। तुम्हारे मना करनेकी याद आ गई।

मैंने कहा—"बतानेमें तूने कसर ही क्या रक्खी कम्बख्त? अच्छा, जो किया सो अच्छा ही किया। अब यह बतला कि भगवतीकी माताके मुँहसे भी तूने कुछ इस बारेमें सुना है।"

रधिया बोली—"भगवतीकी माँ और व्यासजी इस बातको जान गये हैं। उनसे यह बात किसने कही, सो मैं नहीं जानती; मगर तुम्ही बताओ, बात कबतक छिपी रह सकती है। कोई बात पाँच कानोंमें पहुँचते ही डंकेकी चोट फैल जाती है। आहा, मगर वे बड़े भले आदमी हैं। मैं जब कभी जाती हूँ तो मुझसे पूछने लगते हैं कि हाँजी,

क्या सचमुच तुम्हारे मालिक और मालकिनने हमारी प्रार्थना मंजूर कर ली है ? क्या हमारे ऐसे भाग्य भी होंगे ? भगवतीको क्या सचमुच ऐसा वर नसीब होगा ? उसने क्या पहले जन्ममें ऐसे पुण्य किये हैं ?—"

रधियाको बीचहीमें रोककर मैंने कहा—"बस, अब रहने दे, बहुत हो गया। जा, घरमें जाकर कामकाज कर।"

रधिया घरके भीतर चली गई। मैं भी कुछ देर बाद अपने पढ़नेके कमरेमें पहुँचा। वहाँ जाकर अच्छे ढंगसे सजाकर रक्खी हुई पुस्तकोंको देखते देखते अचानक वाल्मीकीय रामायणकी पोथीपर मेरी नजर पड़ी। मैंने अपने मनमें कहा कि अगर रधियाका कहना सच है तो भगवतीने जरूर यही पुस्तक पढ़ी है। तो भगवती संस्कृत भी पढ़ी-लिखी है ? भगवती देवभाषा संस्कृत जानती है ! तेरह बरसकी बालिका संस्कृत भाषा पढ़ती है और वाल्मीकीय रामायण समझ सकती है—यह मुझे एक बड़े अचंभेकी बात मालूम पड़ी। रधियाके कहने पर सहज ही विश्वास करनेको जी नहीं चाहा। सन्देह मिटानेके लिए मैंने रधियाको ऊपर बुलाया। उसके आने पर मैंने कहा—"भगवती कौन सी किताब पढ़ रही थी रधिया ?"

रधियाने कहा—"भैया, मैं कैसे वह पोथी खोजकर बता सकती हूँ ? तुम्हारी वही बड़की किताब थी। हाँ, यह है।"

इतना कहकर रधियाने वही वाल्मीकीय रामायण दिखा दी। अब मुझे कुछ भी सन्देह नहीं रहा। मगर मैं रधियाको मनमें और मुँहसे भी गालियाँ देने लगा। मैंने कुछ क्रोध और कुछ स्नेहसे मिले हुए स्वरमें कहा—"रधिया, तू अगर अभी सब बात खोल न देती तो शायद कभी मुझे भगवतीके मुँहसे संस्कृत सुनना नसीब भी हो जाता। मगर तेरे पेटमें बात कहाँ पच सकती है ?"

मेरी इस डाँटसे रधिया कुछ घबड़ाई। उसने कहा—"भैया, मुझसे जो कसूर हुआ वह तो मैंने तुमसे कह ही दिया। अब मुझे बकनेसे क्या फल होगा? अच्छा, अगर मैं एक दिन तुमको भगवतीके मुँहसे यही संसकीरत सुना दूँ तब तो तुम खुश होगे?"

मैंने कहा—"कैसे सुनावेगी?"

रधिया—"जिस तरह बन पड़ेगा।"

कुछ देर सोचकर मैंने कहा—"नहीं, मैं सुनना नहीं चाहता। भगवतीके साथ तेरा किसी तरहका दगाबाजी करना मुझसे नहीं देखा जायगा। भगवती सीधी सादी है, उसके साथ ठगाई करना ठीक नहीं।"

मेरी बातें सुनकर रधिया घरके भीतर चली गई। जाते समय उसने आँचलसे मुँह ढाँप लिया था। जान पड़ता है, मेरा रँग-ढँग देखकर उसे हँसी आ गई थी।

सत्रहवाँ परिच्छेद।



बात किसी तरह छिपी नहीं रही। एक एक करके गाँव भरके लोग इस बातको जान गये। सुनकर सब लोगोंको बड़ी खुशी हुई। भगवतीने तो कई दिनोंसे घरसे बाहर निकलना बंद ही कर दिया था; मुझे भी लाचार होकर गाँवमें आना जाना बंद करना पड़ा। सभी मेरे चाल-चलन और समझकी बड़ाई करते थे, भगवतीके रूप और गुणोंकी चर्चा करके मुझे उसके योग्य और उसे मेरे योग्य बताते थे, और व्यासजीकी चिन्ता कम होने पर प्रसन्नता प्रकट करते थे। गाँववालोंके रँगढँगसे यही जान पड़ने लगा कि, भगवतीके साथ ब्याह करना स्वीकार करके

मैंने केवल व्यासजीको ही नहीं, किन्तु उन लोगोंको भी वेदामका गुलाम वना लिया है! मैंने देखा, बड़ी आफतका सामना है! इस आफतमें पड़कर मैंने घरसे वाहर न निकलनेका पक्का इरादा कर लिया। किन्तु इसमें भी मुझे सुभीता नहीं देख पड़ा। जब देखो तब, गाँवकी बालिका, युवती और अधेड़ औरतोंके झुण्डके झुण्ड घरमें आने लगे। वे मेरे व्याहके बारेमें माताजीसे बातचीत करने लगीं। लड़कियों और अधेड़ोंकी बात जाने दीजिए, घूँघट काढ़नेवाली नौजवान औरतें भी बेखटके साहसके साथ ऊपर चढ़कर मेरे पढ़नेके कमरेमें झाँकने लगीं। जो नित्य मुझे देखती थीं उनको भी मुझे देखनेकी इच्छा बहुत ही प्रबल हो उठी। मैंने देखा, घरमें ठहरना तो कठिन है। मेरी हालतके आदमीके लिए वनवास ही शान्ति दे सकता है, यह निश्चय करके मैं कई दिनों तक, सवेरेसे शामतक, जंगलमें रहा। केवल भोजन करनेके लिए एक बार मैं घरमें आता था। लेकिन कठिनता यह हुई कि हर घड़ी, दिन भर, जंगलमें रहनेसे जी ऊबने लगा। अपनी इच्छाके वनवास और अनिच्छाके वनवासमें कितना अन्तर है, सो शायद सभी जानते होंगे। क्या करूँ, किससे अपने दुःखकी बात कहूँ, कुछ भी निश्चय नहीं कर सका। एक दिन प्रयोजनवश वनके गढ़से बाहर निकल कर डरते डरते धीरे धीरे पैर रखते, मैं घरके भीतर गया। जाकर देखा, मेरे सौभाग्यसे वहाँ उस समय कोई पड़ोसिन नहीं थी। केवल माताजी और रधिया एकाग्र चित्तसे फुर्तीके साथ उड़दकी बड़ी दे रही थीं। मैं कुछ देरतक खड़े खड़े उनका बड़ियाँ देना देखता रहा। लड़कपनमें मैं इन कच्ची बड़ियोंको बड़े चावसे खाया करता था।

मैंने माताजीका सिर उठाना कठिन समझकर आप ही उनसे कहा—"अम्मा, बड़ी ही दिया करोगी? मेरी बात नहीं सुनोगी?"

माताजीने झट बड़ी देना बन्द कर दिया और स्नेहपूर्ण व्याकुल दृष्टिसे मेरी ओर देखकर कहा—“ क्या बात है बचुआ? तेरी बात नहीं सुनूँगी?”

मैंने कहा—“ बहुत नहीं। मैं तुमसे यह पूँछता हूँ कि मुझे क्या इतनी जल्दी वनवास करना पड़ेगा?”

प्रश्न सुनकर माताजी चौंक पड़ी। उन्होंने कहा—“ वनवास कैसा? वनवास करें तेरे दुश्मन!”

मैंने कहा—“ यह तो ठीक है। मगर मुझे तो सचमुच घर छोड़ना पड़ा है। तुम तो कोई खबर नहीं रखतीं। केवल नहाने और खानेके समय तुम मुझे घरमें देखती हो। उसके बाद दिन भर मैं कहाँ रहता हूँ और क्या करता हूँ, सो तुम कुछ नहीं जानतीं। तुम तो दाल भिगोने–धोने–बाँटने और बड़ियाँ देनेमें दिन भर लगी रहती हो। डेढ़पहर रात गये तक ब्याहकी तैयारीमें उलझी रहती हो। मैं घड़ीभर भी घरमें टिकने नहीं पाता, इसीसे सुबहसे शामतक जंगलमें ही रहता हूँ। अगर ब्याहके पहले ही वनवास करना पड़ेगा, तो मैं ऐसे ब्याहको नमस्कार करता हूँ!”

माताजी—“ क्यों बचुआ, क्या हुआ? तू घरमें रहता क्यों नहीं? सचमुच मैं तुझे दिनभर नहीं देखती। कुछ पूछना होता है तो मैं ढूँढ़-कर थक जाती हूँ, तेरा पता ही नहीं लगता। तू बचुआ, अकेले जंगलमें क्यों फिरा करता है? मैं तो तुझे कई बार मना कर चुकी हूँ।”

मैंने कहा—“ मैं तो कह रहा हूँ कि मैं घरमें दम भर ठहरने ही नहीं पाता। गाँव भरकी औरतें मुझे देखनेके लिए जैसे पागल हो रही हैं। जो तीसों दिन मुझे देखा करती हैं वे भी ऊपर आकर मेरे कमरेमें झाँक जाती हैं। क्यों रधिया, मेरा चेहरा कुछ बदल तो नहीं गया है?

तू बता सकती है कि गाँवकी औरतें मुझे देखनेके लिए क्यों इतनी कोशिश कर रही हैं ? "

मेरी बात पूरी होनेके पहले ही रधिया हुंकार छोड़कर उठ खड़ी हुई और रोनी आवाजमें कहने लगी—" जो बुराई वह मेरे सिर ! गाँवकी लड़कियाँ और बहुएँ ऊपर चढ़कर तुम्हें देखने क्यों जाती हैं, इसकी भी कैफियत मुझे देनी होगी ! अम्मा, भैयाकी बातें समझती हो ? मैंने ही जैसे इन्हें जंगलमें रहनेके लिए लाचार किया है। मै ही जैसे गाव-भरकी औरतों और लड़कियोंको बुलाकर इनके ऊपरके कमरेमें झाँकनेके लिए भेजा करती हूँ। नहीं जानती, कौन हरामजादा मेरे पीछे पड़ा है ! अम्मा, तुम जल्दी अपने उस घरको चलो; मुझसे अब यहाँ नहीं रहा जायगा। और अम्मा, एक महीनेके लगभग हुआ, चाचाजी अभी तक बाहरसे लौटकर नहीं आये। आज जो चिट्ठी आई है, उसमें क्या लिखा है ? "

चिट्ठीकी याद आते ही माताजीने कहा—" सच तो है ! क्या वह चिट्ठी तूने बुचुआको अभी नहीं दी ? मैंने तो तुझसे कहा था कि जा, दे आ। "

रधिया—"आपने तो दे आनेको कहा था, मगर उस जंगलमें अकेले जाय कौन ? मोहना भी घरमें नहीं था, चिट्ठी मैंने इसी तकियेके नीचे रख दी थी। "

मैंने क़हा—" बहुत अच्छा किया। तेरी ऐसी सीधी औरत तो संसार भरमें न होगी। देखते ही आँखें जुड़ा जाती हैं ! "

अभीतक तो रधिया गरज ही रही थी, अब सचमुच आँसुओंकी वर्षा होने लगी।

मैंने चट तकियेके नीचेसे चिट्ठी निकालकर पढ़ी। माताजीने कहा—"क्या लिखा है?"

मैंने कहा—"सब कुशल मङ्गल है। बाबूजी कल सबेर यहाँ आजायँगे। उनके साथ बड़ी बहू, मँझली बहू और लड़के-बाले आरहे हैं। बड़े दादाको इस समय छुट्टी नहीं मिली; इस कारण केवल उन्हींका आना न होगा। मँझले दादा ब्याहके दो एक दिन पहले कुछ दिनकी छुट्टी लेकर आजायँगे। और सिद्धिनाथ भी आयेगा। लेकिन मौसीको लानेके लिए यहाँसे आदमी भेजना होगा। जान पड़ता है, बाबूजी वहाँसे व्यासजीके पास चिट्ठी पत्री भेजते रहे हैं। बाबूजी लिखते हैं कि व्यासजीने इस बातके लिए बड़ी प्रार्थना की है कि इस फाल्गुनमें ही ब्याह हो जाना चाहिए। मेरी समझमें भी अब देर करना ठीक नहीं है। तुम अपनी मातासे कहना कि, वह ब्याहकी तैयारी करे। मैं भी शीघ्र आता हूँ। इत्यादि।"

कहाँ वर्षा हो रही थी, कहाँ घाम निकल आया। रधिया इन बातोंको सुनते ही खुश होकर कहने लगी—"भैया, तुम मुझे दोष देते थे। देखो न, बाबूजीने ही उनके यहाँ चिट्ठी भेजी है और इसीसे भगवती हमारे घर आना नहीं चाहती।"

मैंने रधियाको आँखके इशारेसे मना किया और कहा—"तू इतनी बकबक क्यों कर रही है! जल्दीसे बड़ियाँ दे डाल; उसके बाद तुझे सब घर बुहारना और साफ करना होगा। बड़ी भौजी और मँझली भौजी आ रही हैं—सिद्धिनाथ आ रहा है। तू तो जानती ही है कि सिद्धिनाथ जरा भी गन्दगी पसन्द नहीं करता। कहीं अगर तनिक भी गन्दगी होगी, तो वह तुझे करारी डाँट बतावेगा।"

रधियाने हँसते हँसते कहा—"वाह, मेरा सिद्धिनाथ भाई वैसा

लड़का नहीं है। वह मुझे बड़ी बहिनके बराबर मानता है। जैसी मौसी हैं; वैसा ही सिद्धिनाथ है। जो कुछ हो, सचमुच मुझे बहुतसे काम करने हैं। अम्मा, तुम अकेले ही बड़ियाँ दे डालो। मैं सब सामान ठीक करके सफाई करने जाती हूँ। बहुएँ पहले पहल इस घरमें आती हैं। मेरी किसी गलतीके लिए अगर वे इस घरकी निन्दा करें तो अच्छा न होगा। भैया, तुम भी मोहनके आने पर उससे बाहरका बैठका और चौतरा साफ करवा डालो। मैं भी भीतर जाकर सब सफाई करती हूँ और तुम इलाहाबादसे जो तसबीरें लाये थे उन्हें नीचेके बैठकखानेमें लगा न दो। फिर कब लगाओगे?"

इतना कहकर रधिया बड़ियाँ देना छोड़कर उठ खड़ी हुई और हाथ धोने भीतर चली गई।

माताजीको बड़ा ही आनन्द हुआ। बहुओंके साथ पोते, पोती और बहिनका लड़का आरहा है, यह समाचार सुनकर उनके आनन्दके आँसू निकल आये। मैं भी रधियाके उपदेशके अनुसार नीचेके बैठकखानेमें तसबीरें टाँगनेका उद्योग करने लगा।

अठारहवाँ परिच्छेद।



पिताजीके साथ बड़ी मौजी, मँझली मौजी उनके लड़के-लड़का और नौकर चाकर शान्तिकुटीरमें आ गये। सिद्धिनाथ भी आया। दो एक दिन बाद मौसी और राजेश्वरी दीदी (मौसीकी लड़की) भी आ गई। बड़े दादाकी आठ बरसकी लड़की लक्ष्मी और मँझले दादाके दोनों लड़के मोती और चुन्नीका आनन्दकोलाहल हर घड़ी घरमें गूँजने लगा। गाँवकी, जवान और बूढ़ी स्त्रियोंके बराबर आते जाते रहने और बातचीत करनेसे

घरमें एक तरहका गोलमाल सा मचा रहता था। मेरे लिए तो दमभर भी घरमें ठहरना कठिन था। मेरी मँझली भौजी बड़ी दिल्लगीबाज और हँसमुख थीं; वे मौका पाते ही हँसी-दिल्लगीकी बौछारोंसे मेरे नाकों दम कर देती थीं। मैंने उनके भयसे फिर जंगलमें आश्रय लिया।

पहले दिन, आते ही, उन्होंने मुझे देखकर हँसते हँसते कहा—"कहो ब्रह्मचारीजी, हम लोगोंको किस लिए न्यौता दिया गया है? तुम तो कहते थे कि इस जन्ममें मैं व्याह ही नहीं करूँगा। याद है, मैंने कहा था—अगर जिन्दगी है तो देखूँगी! देखो, मेरा कहना सच हुआ कि नहीं? अच्छा, यह तो बताओ, दुलहिन तुम्हारे पसन्द है? दुलहिनका मायका कहाँ है? क्या मैं उसे एक दफे देख सकती हूँ?"

मैंने कहा—"इतनी जल्दी काहेकी है भौजी? जरा बैठो, ठंडी हो लो, दो चार दिनके बाद व्याह हो जाने दो। व्याहके बाद जी भरकर देख लना।"

म० भौजी—"वाह जी, तुम्हारी बातोंमें मैं बहल जानेवाली नहीं हूँ। व्याहके बाद फिर हम जी भरकर देखने पावेंगी? क्या हमारे और कोई काम-काज नहीं है? फिर उस समय हम देखेंगी या तुम देखोगे? उँहूँ, यह न होगा। क्यों रधिया, जान पड़ता है तू भी दुलहिनको यहाँ लाना भूल गई। शायद तू यह भूल गई थी कि आज हम सब जनीं यहाँ आवेंगी?"

रधियाने हँसते हँसते कहा—"वाह बहूजी, आते देर नहीं हुई और गालियाँ देने लगीं? जान पड़ता है, पूरी-कचौरी और पकवानके बदले गालियोंसे ही मुझे पेट भरना होगा। तुम्हारी गालियोंसे ही मेरा पेट भर जायगा! मगर सच तो यह है कि तुम्हारी गालियाँ पकवानसे भी खस्ता और मिठाईसे मीठी लगती हैं! बहुत दिनोंसे तुम्हारी गालियाँ

नहीं खाई; इसीसे वे और भी मीठी लगती हैं। क्यों बहू, इस तरह कोई किसीको भूल जाता है ? मँझले भैया तो अच्छे हैं ? "

मँ० भौजी—" बहुत अच्छे हैं। और तू घबड़ाती क्यों है, दो ही चार दिनमें दर्शन पावेगी। अब तू यह बतला कि, दुलहिनको यहाँ ले आवेगी या नहीं ? जा, एक दम भरके लिए दुलहिन को बुला ला; कहना, दुलहा जरा दुलहिनको देखना चाहता है। "

मैंने कहा—" वाह भौजी, यह तुमने बड़ी मुश्किल की। "

मँ० भौजी—" मुश्किल काहेकी ? क्या हम ही अकेले देखेंगी ? तुम आँखें बन्द किये रहोगे ? तुम्हारा ही देखना तो सच्चा देखना है। हम केवल आँखोंसे देखेंगी; और तुम तो तन और मन दोनोंसे देखोगे। "

मैंने कहा—" सो तो मैं कई दफे देख चुका हूँ और नित्य ही देखता रहता हूँ। अब तुम देखना चाहती हो, यह जुदी बात है। "

मँ० भौजी—" अच्छा यही सही। मैं ही देखूँगी। मगर देखो जी, दुलहिनके आने पर इधर उधरसे झाँकते न फिरना। मैं रधियासे कड़ा पहरा देनेके लिए कह दूँगी। बाबूजी कहते थे कि तुम इस जंगलमें कहींपर दिनरात बैठे रहते हो। तुम वहीं जाओ। अः, मेरी भी समझ कैसी उलटी हो गई है। ठीक ही तो है; तुम तो आज कल वनके मानुप—वनमानुप हो रहे हो। तुम दुलहिनको देखोहीगे क्या ? तुम तो कुछ किताबें ले जाओ और उसी जगह लेटे लेटे पढ़ो। "

मैंने कहा—" वाह भौजी, तुम तो बड़ी चालाक और पण्डिता हो आई हो। "

मँ० भौजी—" तो इसमें अचरज ही क्या है ? पण्डित देवरकी भौजी क्यों न पण्डिता होगी। "

मैंने कहा—" देवरको तो तुम वनमानुष बताती हो। जान पड़ता है वैसी ही विद्या-बुद्धि तुममें भी होगी ! "

मँ० भौजी—" इसमें सन्देह ही क्या है । अब रधिया, तू दुलहिनको लाने जाती है कि नहीं ? "

रधिया—" जाऊँगी क्यों नहीं ? लो जाती हूँ । मगर दुलहिन जो न आवे तो फिर क्या होगा ! आज पन्द्रह दिनोंसे बराबर मैं बुलाने जाती हूँ; मगर वह आती ही नहीं । "

मँ० भौजी—" अच्छा, तू दुलहिनसे जाकर कह दे कि यहाँ जूजूका डर नहीं है । और जूजू अगर होगा भी तो वह दिनको जंगलमें ही रहता है । फिर उसका डर किस बातका ! उससे यह भी कहना कि वह नातेमें मेरी बहिन लगती है । भगवतीकी मा और मेरी बुआ दोनों बहिनें होती हैं । मैंने बाबूजीके मुँहसे व्यासजीका नाम सुनते ही सब हाल परबतियासे कहला दिया था । "

रधिया—" क्या ! भगवती तुम्हारी बहिन है ? "

यह खबर पाते ही रधिया माताजीके पास दौड़ी गई और कहने लगी—" अम्मा अम्मा, सुनती हो, भगवती मँझली बहूकी बहिन लगती है ! "

रधियाके तीन–चार बार चिल्लाकर कहनेपर भी माताजीको उसकी बात नहीं सुन पड़ी । मोती उनकी गोदमें जोरसे चिल्ला रहा था । माताजी उसे जबर्दस्ती गोदमें रखना चाहती थीं और वह किसी तरह गोदमें रहना नहीं चाहता था । मोतीके चिल्लानेसे, रधियाके उच्च स्वरसे और माताजी डाँटनेसे एक अजब गोलमाल मचा हुआ था । मैं भी मौका देखकर मँझली भौजीसे छुटकारा पानेके लिए खिसककर बाहरकी बैठकमें चला आया ।

बैठकमें आकर देखा, लक्ष्मी और चुन्नी दोनों दीवारमें लगी हुई तसवीरोंको एकाग्रभावसे देख रही हैं । मैंने उनसे कहा—" लक्ष्मी, चुन्नी, अच्छी हो ? "

मेरी आवाज सुनते ही दोनोंने दौड़कर मेरे हाथ पकड़ लिये और वे अत्यन्त विनय और व्यग्रताके साथ कहने लगीं—" काका, हमें तनिक जंगलमें ले चलिए । सिद्ध काका जंगलमें घूमने गये हैं । हमको नहीं ले गये । बोले, तीसरे पहर तुमको ले चलेंगे । ले चलिए । "

मैंने कहा—" अच्छा मेरे साथ आओ । "

इतना कहकर, दोनोंके हाथ पकड़कर, मैं जंगलमें घुसा । लक्ष्मी और चुन्नीके तरह तरहके अद्भुत प्रश्नोंका उत्तर देता हुआ मैं उनको जंगलका कुछ हिस्सा दिखा लाया । घरकी ओर लौटते समय मैंने देखा कि एक घनी छाँहवाले मनोहर स्थानमें, कुछ फूले हुए सालूके पेड़ोंके नीचे एक शिलाखण्डपर, सिद्धिनाथ एकाग्रभावसे बैठा हुआ है । सिद्धिनाथको देखकर मैंने कहा—" क्यों सिद्धिनाथ, घर नहीं गये, सीधे जंगलमें ही चले आये ? आओ, हाथ पैर धो लो, नहा लो और कुछ जल-पान कर लो । "

सिद्धिनाथ—" चलता हूँ, अभी तो कुछ बहुत दिन नहीं चढ़ आया है । मुझे इससे भी देरमें नहाने-खानेका अभ्यास है । मगर दादा, आपने बहुत अच्छे स्थानपर यह घर बनवाया है । मैंने तो अभीतक ऐसी मनोहर जगह और कहीं नहीं देखी । कई बार मैं इस प्रान्तमें भी आया हूँ; मगर यहाँतक आनेका मौका कभी नहीं आया । अपने घरसे इतने पास ही ऐसा सुन्दर स्थान होनेका मुझे खयाल भी न था । मैं इस पहाड़के ऊपर चढ़ा था । आहा, इसके ऊपरसे चारों ओर कैसी सुन्दर शोभा देख पड़ती है । पहाड़के नीचे एक छोटीसी नदी बह रही

है। मैं उस नदीके किनारे जंगलकी बहुत दूर तक सैर कर आया हूँ। मेरा तो यहाँसे उठनेको जी ही नहीं चाहता।"

मैं—"हाँ, जगह तो बहुत ही मनोहर है। तुम यहाँ कुछ दिन रहो। तुम्हारे साथ बड़े सुखसे समय बीतेगा। यहाँ अकेले रहनेसे मेरा जी कभी कभी ऊबने लगता है। किसीके साथ बातचीत करनेको नहीं मिलती। केवल कभी कभी किताबें पढ़ता हूँ, या इधर उधर घूमा करता हूँ। तुमने तो अबकी बी० ए० की परीक्षा दी है न?"

सिद्धि०—"हाँ।"

मैं—"अभी कुछ नतीजा नहीं निकला?"

सिद्धि०—"जी नहीं, मगर जल्द ही निकलनेवाला है। पास होनेकी तो मुझे बड़ी भारी आशा है, आगे ईश्वरके हाथ बात है।"

मैं—"अच्छा ही नतीजा निकलेगा। अच्छा चलो, अब घर चलें। ये लड़के-बच्चे अभीतक भूखे हैं। जबसे आये हैं तबसे इन्होंने कुछ भी नहीं खाया।"

सिद्धिनाथ उठकर मेरे संग घरको चला। राहमें मोहन मिला। उसने कहा—"भैया, मैं तो तुमको खोजते खोजते हैरान हो गया। घण्टाभर हुआ, तबसे मैं आप लोगोंकी तलाशमें घूम रहा हूँ। इन लड़कोंने तो अभीतक कुछ भी नहीं खाया। और अम्मा न-जानें किस लिए आपको बुला रही हैं। रधियाने कहा है कि वे ऊपर आपके पढ़नेके कमरेमें बैठी हुई हैं।"

मैं घर पहुँचते ही झटपट ऊपर चढ़ गया। पढ़नेके घरमें जाकर देखा, वहाँ माताजी नहीं थीं। माताजी तो नहीं थीं, मगर औरतें कई एक बैठी हुई थीं। मँझली भौजी, दोनोंकी दासियाँ, हमारी श्रीमती राधा देवी, दो एक अड़ोस-पड़ोसकी औरतें, गोविन्द, अन्नपूर्णा, गोपी

और भगवती भी—सब वहाँ मौजूद थीं! देखते ही मैं तो सन्नाटेमें आगया। समझ लिया कि यह सब मँझली भौजीका फरफंद है। मुझे देखते ही मँझली भौजी और बड़ी भौजी हँसने लगीं। रधिया और दूसरी दोनों दासियाँ भी उस हँसीमें शरीक हो गईं। मामला बेढब देखकर मैं वहाँसे खिसकना ही चाहता था कि मँझली भौजी मेरा मंशा समझ गईं; उन्होंने फुर्तीसे मेरा हाथ पकड़ लिया और कहा—"अजी जाते कहाँ हो? ऐसी बहार देखनेको क्या तुम्हारा जी नहीं चाहता? तनिक आँखें खोलकर देखो, हम भी देखें। केवल जंगलों और पहाड़ोंमें फिरनेसे कभी ऐसी शोभा देखनेको नहीं मिल सकती। यह देखो, मोतीने अभीसे नाता जोड़ लिया है। भगवतीको देखते ही इसने मुझसे पूछा—'अम्मा, यह कौन है?' मैंने कहा—'यह तेरी काकी है।' मोतीने कहा—'काकी है? अम्मा, मैं काकीकी गोदमें जाऊँगा।' उसी घड़ीसे मोती अपनी काकीकी गोदपर अधिकार जमाये बैठा है। लड़के तो भगवानका रूप होते हैं। अपने आदमीको देखते ही वे पहचान लेते हैं। अच्छा जी, तुम तो मर्द हो, औरत नहीं हो, फिर इस तरह छुके छिपे क्यों फिरते हो?"

मैंने कहा—"मैं तो लक्ष्मी और चुन्नीको जंगलकी सैर करानेके लिए ले गया था।"

मेरी बातपर ध्यान न देकर मँझली भौजीने भगवतीसे कहा—"बहिन, तुम भी तनिक आँखें ऊपर उठाओ। मेरे देवर ऐसे वैसे नहीं हैं। वे न वनमानुष हैं और न जूजू हैं। कामदेवके समान सुन्दर हैं और विद्याके तो जहाज ही हैं। यह तो मैं अच्छी तरह जानती हूँ कि तुम इन्हें दमभरके लिए भी आँखोंकी ओट नहीं होने दोगी। फिर

हमारे ही सामने उधर देखनेमें क्या हर्ज है ! जरा चार आँखें करो; देखकर आँखें भी सुख पावें। ”

मैं भौजीसे हाथ छुड़ाकर भागनेकी चेष्टा करने लगा; लेकिन भाग नहीं सका। इसी समय एकाएक पिताजीके पुकारनेकी आवाज सुन पड़ी।

पिताजीकी आवाज सुनते ही भौजीने मेरा हाथ छोड़ दिया। मेरी भी जान बची। मैं चटपट नीचे पिताजीके पास चला आया।

उन्नीसवाँ परिच्छेद।

ब्याहका दिन निकट आ-गया। नातेदार और इष्ट मित्रलोग सब आ पहुँचे। केवल बड़े दादा और मेरे मित्र भोलानाथका आना नहीं हुआ। बड़े दादाको तो छुट्टी नहीं मिली; इससे वे नहीं आये और भोलानाथ बीमारीके कारण नहीं आये। भोलानाथके न आनेका मुझे बहुत दु:ख हुआ। भोलानाथपर मुझे कुछ खीझ भी पैदा हुई। किन्तु उसकी चिट्ठीको अच्छी तरह पढ़कर देखा तो मालूम हुआ कि वह ऐसा ही लाचार है; किसी तरह उसका आना नहीं हो सकता। आज लग-भग छ: महीनेसे उसे जूड़ी सता रही है; उसका शरीर इस समय भी अत्यन्त दुर्बल है। डाक्टरोंने उसे कुछ दिनतक बम्बईमें रहनेकी सलाह दी है। इसीसे उसने एक सालकी छुट्टी लेकर बम्बईमें रहनेका इरादा कर लिया है। भोलानाथने छुट्टीके लिए अरजी भी दे दी है; पर अभी वह मंजूर नहीं हुई। मंजूर होते ही वह बम्बई रवाना हो जायगा।

भोलानाथका अभीतक ब्याह नहीं हुआ। यह पहले ही बतलाया जा चुका है कि भोलानाथके साथ ललिताका ब्याह पक्का हो चुका था; किन्तु भोलानाथके बीमार हो जानेसे और ललिताकी भी माताका देहान्त हो जानेसे यह काम कुछ समयके लिए रुक गया। जो कुछ हो, भोलानाथ यद्यपि ब्याहमें शरीक नहीं हो सका, तो भी उसने पत्रमें मुझे और मेरी स्त्रीको आशीर्वाद दिया था, दोनोंके कुशलकी कामना प्रकट की थी तथा मेरे और भगवतीके लिए यथायोग्य उपहार भी भेजे थे।

ब्याहका दिन धीरे धीरे निकट आ गया और एक दिन मैं भगवतीके साथ विवाहके पवित्र-बन्धनमें बँध गया; दोनोंका जीवन एक हो गया। यह शुभ दिन भी धीरे धीरे अतीतके गर्भमें चला गया। ब्याह हो जानेके बाद मुझे मालूम पड़ने लगा कि भगवतीको मैं बहुत दिनोंसे पहचानता हूँ; भगवती मेरी चिरकालकी ब्याही हुई स्त्री है। उसके जीवनके साथ मेरा जीवन किसी बहुत पुराने जमानेसे बँधा हुआ है। वह बन्धनकी गाँठ मानों अबतक वैसी ही दृढ़ बनी हुई है; जरा भी ढीली नहीं हुई। मामला कुछ भी समझमें नहीं आया। सब जादूका तमाशा या स्वप्न सा जान पड़ने लगा। शरीरकी तरफ देखा, देखा कि भगवतीमें और मुझमें कुछ भी भेद नहीं है—हम दोनों 'एक प्राण दो देह' हैं। मनकी तरफ देखा, देखा कि हम दोनोंका मन भी एक है। आत्माकी तरफ देखा, देखा कि हम दोनोंका आत्मा भी एक है। बड़ा ही विचित्र मामला था। अद्भुत कारखाना था। भगवतीके साथ मेरा यह आश्चर्य मिलन एक दिनमें—एक ही घड़ीमें—किस तरह सम्पन्न हो गया, इस प्रश्नको मैं किसी तरह हल नहीं कर सका।

ब्याहके बाद लड़की विदा होनेका दिन आया। कन्यारूपी सोनेकी प्रतिमाके विसर्जनकी घटना गृहस्थोंके यहाँ अकसर देखनेमें आया करती

है। इस कारण इस बारेमें कोई लिखने लायक नई बात नहीं देख पड़ती। उस समय—लड़की विदा करते समय—व्यासजी ऐसे ज्ञानी विरक्त पुरुष भी लड़कोंकी तरह रोते थे। परन्तु गोविन्द भैया (मेरा साला) बड़े बुद्धिमानकी तरह माता-पिताको धीरज बँधाते हुए कह रहे थे कि "अम्मा, दादा, तुम रोते क्यों हो? जीजीके साथ मैं जाऊँगा। चिन्ता काहेकी है?" लड़केकी यह बात सुनकर रोनेवाले सब हँस पड़े।

स्त्रीको लेकर मैं घर आया। माताजी तो आनन्दके मारे फूली नहीं समाती थीं। उनकी साध इतने दिनोंमें परमेश्वरने पूरी की। घरमें कई दिनोंतक आनन्द-उत्सवकी धूम मची रही। हमारी पूर्वपरिचित मिठाना या सुकलाइन भी निमन्त्रित होकर शान्तिकुटीरमें आई थीं। उन्होंने घरमें पैर रखते ही माताजीसे कहा—"कहो बचुआकी अम्मा, मेरा ही कहा सच निकला कि नहीं? मैंने तो कहा था कि तुम बचुआके लिए कुछ चिन्ता न करो। बचुआ तो हमारा बड़ा सीधा लड़का है। उसने इतना पढ़ा-लिखा है, जानकारी हासिल की है और लोग उसका आदर करते हैं। भला वह कभी तुमको दुख पहुँचावेगा? आहा, बचुआ बड़ा ही सीधा भोला लड़का है। हम सबको बहुत मानता है।"

सुकुलाइनकी ये बातें सुनकर मैंने अपने मनमें कहा—"इसमें क्या शक है! लेकिन भवानी, पहले भगवतीको देखकर, उसीके लिए तुम्हारा बचुआ इस शान्तिकुटीरमें नहीं बसा है।"

मँझली भौजीकी हँसी-दिल्लगीकी आफतका सामना हर घड़ी मुझे करना पड़ता था। लेकिन अब मैं उनकी हँसी-दिल्लगीके डरसे जंगलकी गढ़ीमें आश्रय नहीं लेता था। अब मैं भगवतीको देखने और उससे बातचीत करनेका मौका हरघड़ी देखा करता था। देखनेका

मौका तो अकसर मिलता था, मगर बातचीत करनेका मौका मिलना दुर्लभ ही था। इसी कारण कभी कभी मुझे बड़ी कुढ़न हुआ करती थी।

व्याहकी धूमधाम धीरे धीरे कम हो गई। दूरके रहनेवाले नातेदार लोग एक एक करके बिदा हो गये। भगवती भी बीच बीचमें अपने मायके जाती और दो-चार दिन रहकर चली आती थी। मैं धीरे धीरे भगवतीके हृदयका परिचय पाने लगा। लेकिन इस पहले परिचयसे मैं यह कुछ भी न समझ सका कि वह अच्छा है या बुरा। व्याहके बाद ही हमारे देशमें पति-पत्नीमें प्रेम उत्पन्न होता है। यही कारण है जो व्याहके बाद ही कोई यह नहीं कह सकता कि मुझे पति-पत्नि-सम्बन्धका सुख प्राप्त होगा या नहीं। यह सुख जब तक नहीं मिलता तबतक सभीको सन्देहके झोके खाने पड़ते हैं। यह सन्देहका समय बड़ा ही कष्टदायक होता है। आशा केवल इतनी ही रहती है कि पति-पत्नी दोनोंमेंसे यदि कोई होशियार कारीगर होता है, तो वह पत्थरके ढोकेमेंसे इष्ट देवकी मनमानी मूर्ति गढ़ ले सकता है।

बीसवाँ परिच्छेद ।



मौसी और उनकी लड़की अपने घर जानेकी इच्छा प्रकट करने लगीं; मगर माताजीके बहुत कुछ कहने सुननेसे उन्होंने कुछ दिन और शान्तिकुटीरमें रहना स्वीकार कर लिया। सिद्धिनाथने तो परीक्षाका फल जब तक मालूम न हो तबतक मेरे पास रहना स्वीकार ही कर लिया था। परन्तु घरमें उसके दर्शन दुर्लभ ही थे। वह जंगलमें, पहाड़ोंपर,

पासहीके किसानोंके गाँवोंमें हमेशा घूमा फिरा करता था। लक्ष्मी, अन्नपूर्णा, गोविन्द आदि बच्चोंसे उसका बड़ा हेलमेल था। इन लड़के-लड़कियोंको लेकर वह इधर उधर घूमा करता था। सिद्धिनाथका भ्रमण-वृत्तान्त मुझे नित्य अन्नपूर्णा और लक्ष्मीके मुँहसे सुननेको मिल जाता था। सिद्धिनाथ जंगलमें बैठकर उन लड़कोंको पेन्सिलसे सुन्दर पशु, पक्षी, फूल, फल, वृक्ष, लता आदिकी जो तसबीरें खींच देता था अथवा छोटी छोटी सरल कवितायें लिख देता था, वे तसबीरें और कवितायें भी मुझे देखनेको मिल जाती थीं। सिद्धिनाथ इस तरह बाहर ही बाहर रहकर सारा दिन बिता देता था। वह बिना किसी मतलबके घरमें आता ही न था।

एक दिन तीसरे पहर मैं पढ़नेके कमरेमें बैठा हुआ पुस्तक-पाठ कर रहा था। इसी समय भगवती न जाने किस जरूरतसे उस कमरेमें आई। दमभरमें अन्नपूर्णा और गोविन्द भी वहाँ आपहुँचे। गोविन्द और अन्नपूर्णाको देखकर मैंने कहा—"कहो जी, क्या खबर है?"

अन्नपूर्णाने तनिक मुसकिराकर कहा—"खबर और क्या है! जीजीको देखने आई हूँ।"

मैंने कहा—"बहुत अच्छा किया। एक नहीं, एक सौ बार आओ। आज सिद्धिनाथके साथ तुम लोग किधर घूमने गये थे?"

अन्नपूर्णाने कहा—"आज हमलोग बहुत दूर नहीं जा सके। यहीं बैठे रहे थे।"

मैंने कहा—"क्यों? सिद्धिनाथ क्या करता था?"

अन्नपूर्णाने कहा—"वे आज कहीं नहीं जा सके। उन्होंने एक तसबीर खींची है और गोविन्दके लिए एक कविता लिखा दी है।"

इतना कहकर अन्नपूर्णा गोविन्दकी ओर देखकर हँसने लगी।

मैंने कहा—" कैसी कविता और कैसी तसवीर है ? देखें। "

अन्नपूर्णा तसवीर और कविता दिखानेके पहले, उन्हें छिपाकर, कहने लगी—" आज गोविन्दने आपके गुलाबके पेड़के पास जाकर एक बड़ा भारी फूल तोड़कर उसकी सब पँखुरी नोंच डाली। यह देखकर सिद्ध भैयाने कहा—' गोविन्द तुमने यह काम अच्छा नहीं किया। आओ, आज तुम्हारे लिए एक कविता लिख दें। ' यों कहकर एक पेड़के नीचे बैठकर उन्होंने यह कविता लिखी। मैंने कहा—' सिद्ध भैया, मुझे एक तसवीर खींच दो।' तब सिद्ध भैयाने मुझे एक तसवीर भी खींच दी।"

इतना कहकर आनन्दमयी अन्नपूर्णाने हँसते हँसते वह चित्र और वह कविता मुझे दिखाई।

मैंने कहा—" तसवीर तो बड़ी अच्छी बनी है। लेकिन गोविन्दके बाल इसमें ठीक नहीं बने हैं। "

अन्नपूर्णा और भगवती, दोनों, उस तसवीरको देखकर हँसने लगीं। गोविन्द शरमाकर अपनी बड़ी बहिनकी आड़में हो गया।

मैंने कहा—" अन्नपूर्णा, तसवीर तो देखी, अब सिद्धिनाथकी कविता भी पढ़ो, जरा सुनें। "

अन्नपूर्णा पढ़ने लगी—

" बच्चेसे फूलकी उक्ति। "

करते हो प्यार हमको, हो मित्र तुम हमारे,
मेरे समान तुम भी फूलो सुगन्ध धारे।
जब तुम मुझे न पाते रोते मचल-मचलकर,
पाकर मुझे खुशीसे नाचो उछल-उछलकर॥ १॥
पर जब कि डालियोंपर हँसते हैं बागमें हम,
आनन्द भी हमें जब मिलता है कुछ नहीं कम।

तब तोड़कर हमें क्यों दुखिया बना रहे हो ?
सुखकी हँसी हमारी क्यों यों मिटा रहे हो ? ॥ २ ॥
बच्चो, विचार देखो, कोई तुम्हें रुला दे,
सारी हँसी खुशी यह पलमें अगर मिटा दे—
देखे मजा अगर, तो सुखशान्ति क्या मिलेगी ?
ऐसेको देखकर क्या दिलकी कली खिलेगी ? ॥ ३ ॥
फिर क्यों हमें वृथा ही यों नोच डालते हो ?
लेकर खुशी हमारी सिर सोच डालते हो ?
तुम भी हँसी खुशीसे सबको प्रसन्न कर दो,
अपनी प्रसन्नताका आनन्द जगमें भर दो ॥ ४ ॥

अन्नपूर्णाके मुँहसे कविता सुनकर मैं बहुत प्रसन्न हुआ। मैंने कहा—“ सिद्धिनाथने तो बड़ी अच्छी कविता लिखी है अन्नपूर्णा ! ”

अन्नपूर्णाने इसके उत्तरमें कुछ भी नहीं कहा। थोड़ी देर बाद, जैसे कुछ सोच कर, उसने कहा—“ अच्छा जीजाजी, तब तो हम जो रोज ठाकुरपूजाके लिए फूल तोड़ती हैं उसमें भी दोष है ? ”

मैं सहसा इस प्रश्नका ठीक उत्तर न दे सका। जरा सोचकर मैंने कहा—“ ठाकुर-पूजाके लिए फूल तोड़ना पाप नहीं है। फूलोंको बेकार तोड़कर नष्ट कर डालना ही पाप है। यह देखो न, लिखा है—

पैरोंपै देवतोंके हमको अगर चढ़ाओ,
तो तोड़ना हमारा हो ठीक, पुण्य पाओ।
हम मित्र हैं तुम्हारे, कहने पै जो चलोगे,
दोगे न दुख किसीको, तो फूलकर फलोगे ॥ ५ ॥

मेरा उत्तर सुनकर अन्नपूर्णाका मुखकमल जैसे खिल उठा।

अन्नपूर्णासे बातचीत करनेकी और कोई बात न देखकर मैंने कहा—“ अन्नपूर्णा तुम्हारी जीजीको तो एक वर मिल गया। अब तुम्हारे लिए एक अच्छा वर खोजना चाहिए। ”

यह सुनकर, अन्नपूर्णाने गर्दन हिलाकर हँसते हँसते मेरा हाथ पकड़कर कोमल, मीठे और अस्पष्ट स्वरमें कहा—" क्यों, मैं सिद्धिनाथ बाबूसे ब्याह करूँगी ।"

अन्नपूर्णाकी यह बात सुनकर मैं और भगवती दोनों ही आनन्दपूर्ण विस्मयसे चौंकसे पड़े । मैंने हँसते हुए कहा—" हाँ, क्या सिद्धिनाथने तुमसे कुछ कहा है अन्नपूर्णा ? "

अन्नपूर्णा—" कहा क्यों नहीं ? सिद्धिनाथ बाबूने मुझसे कहा कि 'अन्नपूर्णा, मुझसे ब्याह करोगी ?' मैंने कहा—' करूँगी ।' "

मैंने कहा—" सिद्धिनाथ तुमको पसंद है ? "

अन्न०—" हाँ । "

यह सुनते ही मैं अन्नपूर्णाको गोदमें उठाकर, बरामदेमें बाहर आकर, कहने लगा—" ओ अम्मा, ओ मौसी, सुनो एक और ब्याह जल्द होनेवाला है । अन्नपूर्णा सिद्धिनाथसे ब्याह करनेको कहती है । "

इस आकस्मिक आपत्तिसे अत्यन्त आकुल होकर मेरे हाथोंके बन्धनसे छुटकारा पानेके लिए अन्नपूर्णा जीजानसे चेष्टा करने लगी। अन्तको किसी तरह मेरे बन्धनसे निकलकर, हाथसे गिरीहुई उस तसवीर और कविताको बिना उठाये ही अन्नपूर्णा अपनी जान लेकर भागी। उसके बाल खुले हुए थे और कपड़े भी अस्तव्यस्त हो रहे थे । गोविंद अपनी बहिनको किसी भारी आफतमें पड़ी जानकर पहले ही भाग गया था ।

हँसते हँसते मेरे पेटमें बल पड़ गये । थोड़ी ही देरमें माताजी, मौसी, बड़ी भौजी, मँझली भौजी, मौसीकी लड़की आदि सब औरतें ऊपर आ गईं । मैंने उनको वह तसवीर और वह कविता दिखाकर

सब हाल कह सुनाया। मेरी बातें सुनकर माताजीको बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने कहा—"यह तो बड़ा विचित्र रहस्य है! मैं भी अभी इसी बारेमें बातचीत कर रही थी।"

मँझली भौजी यह सुनकर कहने लगीं—"मौसी, अब क्या सोच-विचार कर रही हो? हम अब तुम्हारे लड़केके ब्याहकी पूड़ियाँ खाये-बिना यहाँसे नहीं जायँगी।"

मौसीने हँसकर कहा—"यह तो बड़ी खुशीकी बात है।" इस गोलमालके समय पिताजी भी वहाँ आगये। मैं उसी समय धीरे धीरे वहाँसे खिसक गया।

इक्कीसवाँ परिच्छेद।

कई दिनतक मँझली भौजी और सिद्धिनाथसे खूब हँसी दिल्लगी होती रही। परन्तु सिद्धिनाथ सहजमें हार माननेवाला लड़का न था। अबकी बराबरका सामना था। एक दिन सिद्धिनाथके साथ मैं अपने पढ़नेके घरमें बैठा हुआ साहित्यचर्चा कर रहा था। इसी समय भगवतीके साथ मँझली भौजी आगई। भगवतीको देखकर सिद्धिनाथ वहाँसे जानेकी चेष्टा करने लगा। मैंने उसे रोक लिया। यह देखकर मँझली भौजीने कहा—"अजी तुम सिद्धिनाथको रोकते क्यों हो? उनका यह समय बहुत ही बेशकीमत है!"

सिद्धि०—"कैसे?"

मँ० भौजी—"कैसे? बिलकुल ही भोले हैं! कुछ जानते ही नहीं! अन्नपूर्णा गोविन्द दोनों आये हैं! अन्नपूर्णाके साथ घूमने नहीं जाओगे?"

सिद्धि०—"जाऊँगा क्यों नहीं ? लेकिन मैं केवल अन्नपूर्णाहीके साथ तो घूमने जाता नहीं। अन्नपूर्णा, गोविन्द और हमारे घरके और भी लड़के तो जाते हैं।"

मँ० भौजी—"सो तो जाते हैं। लेकिन आजकल असल घूमना अन्नपूर्णाके साथ ही होता है।"

सिद्धि०—"कैसे ?"

मँ० भौजी—"कैसे ? जैसे कुछ समझते ही नहीं! मैं यह कहती हूँ कि बच्चोंको फुसलाकर व्याह ठीक करना ही तुम मर्दोंकी मर्दानगी है। तुम्हारे दादा तो एक लड़कीको फंदेमें फँसाकर अपना ही चुके हैं। तुम भी तो उन्हींके भाई हो न ? तुमने भी दूसरी लड़कीको फुसलाकर गाँठ लेना चाहा है।"

मैंने कहा—"तुम मेरे लिए नाहक ऐसी बातें कह रही हो। यह तुम्हारे पास ही तो भगवती मौजूद है। इससे पूछ देखो, ब्याह होनेके पहले कभी मैंने इससे कोई बात की है। भगवती तो ब्याहके पहले अनेकों बार हमारे घर आई है। मगर मैंने एक दिन भी इसे नहीं देखा और न देखनेकी चेष्टा ही की। मैं तो दिन भर जंगलमें ही रहता था।"

मँझली भौजीने कहा—"नहीं, भगवतीसे न तुमने कोई बातचीत की और न भगवतीने तुमसे कोई बातचीत की। यह तो सब सच है। लेकिन पेड़के नीचे जब तुम पड़कर सो जाते थे तब भगवती आकर तुमको जगाती थी, तुम्हारा मुँह धोनेके लिए अपने घरसे पानी ले आती थी, तुम्हारे जब पसीना निकलता था तब अपने आँचलकी हवा तुमपर करती थी। तब इससे अधिक और बातचीत करनेकी जरूरत ही क्या थी ? बातचीत नहीं हुई तो न सही।

भगवती शरमाकर मँझली भौजीके बदनमें चुटकियाँ लेने लगी।

मैंने हँसकर कहा—“ जान पड़ता है, तुमने यही सुना है। ”

मँ० भौजी—“ मैंने चाहे जो सुना हो, तुम्हारा तो ब्याह हो गया! जो होना था सो हो गया। तुमको तो अब कोई दोष नहीं दे सकता; मगर भैया सिद्धनाथ, तुमने उस लड़कीसे ब्याह करनेका वादा करके, उसका मन चुराकर, अच्छा नहीं किया। अब अगर किसी कारणसे अन्नपूर्णाके साथ तुम्हारा ब्याह न हो सका तो क्या होगा ? ”

सिद्धि०—“ ब्याह क्यों न होगा ? एक दफे नहीं, एक सौ दफे होगा। मैं अन्नपूर्णासे ब्याह करूँगा और अन्नपूर्णाने भी मुझसे ब्याहका वादा कर लिया है। ”

मँ० भौजी—“ पर अभी तो यह बच्चा है, अगर ब्याहके पहले उसका यह इरादा बदल जाय ? ”

सिद्धि०—“ बदल जायगा तो मेरी क्या हानि है ? मेरा विचार ठीक रहना चाहिए। अगर अन्नपूर्णा मुझसे ब्याह करना चाहेगी तो मैं ‘ नहीं ’ न करूँगा। ”

मँ० भौजी—“ वाह वाह, खूब बातें बनाना जानते हो। और क्यों न बातें बनाओ; कवि ही ठहरे। दश पाँच तुकें मिलाकर कविता लिख-कर ही लड़कियोंका मन हर लेते हो। जो कुछ हो, अगर तुम्हारे ही ऐसे कवि या शायराना तबीयतके और दस बीस आदमी होते, तो गरीब मा-बापोंको अपनी लड़कियोंके लिए लड़के तलाश करनेमें परेशान न होना पड़ता। अच्छी बात है भैया, जल्दी ब्याह कर डालो; हम भी देख लें। हम बहुत दिन तक तो यहाँ ठहर ही नहीं सकती हैं। अच्छा, तुम एक दिन हम लोगोंको इस जंगल और पहाड़की सैर क्यों नहीं करा

लाते ! हम जब चली जायँगी तब किसे दिखाओगे ? तुमने यह भी कहा था कि मैंने किसी सतीपर एक कविता लिखी है। उस दिन मुझे छुट्टी नहीं थी, इसीसे मैं वह तुम्हारी कविता नहीं सुन सकी। वह कविता भी मुझे सुनाओगे या नहीं ?"

सिद्धिनाथ—"अच्छी बात है, आज ही तुम लोग सैर करने चलो। आज ही मैं तुमको सब सैर करा लाऊँगा और वह कविता भी वहींपर कहीं बैठकर सुना दूँगा।"

मँझली भौजीने भगवतीकी तरफ देखकर कहा—"क्यों भाई, आज ही चलोगी ? चलो, आज ही तीसरे पहर हो आवें। आज बाबूजी अभी घरमें नहीं हैं। सबेरे तो कामकाज इतना रहता है कि मुझे मरनेकी भी छुट्टी नहीं मिल सकती। चलो, रधिया, नन्दजी और जीजीसे भी कह दें।"

इतना कहकर मँझली भौजी भगवतीके साथ नीचे चली गई।

मैंने सिद्धिनाथसे कहा—"किस विषयपर कविता लिखी है सिद्धिनाथ ?"

सिद्धि०—"इसी सेंदुरिया पहाड़के सम्बन्धमें।"

मैं—"सेंदुरिया पहाड़ ? सेंदुरिया पहाड़ कहाँ है ?"

सिद्धिनाथने विस्मयके स्वरमें कहा—"आप सेंदुरिया पहाड़को नहीं जानते ? कैसे आश्चर्यकी बात है। यही जो शान्तिकुटीरके उत्तर ओर छोटासा काला पहाड़ है, जिसके नीचे पहाड़ी नदी बहती है।"

मैं—"उसीका नाम सेंदुरिया पहाड़ है ? मैं तो यह कुछ भी नहीं जानता। मैं तो उसे केवल काली पहाड़ी समझता था। उसके ऊपर मैं रोज घूमने जाता हूँ; मगर उसका नाम मैंने किसीसे नहीं सुना। तुमने उसका नाम किससे सुना ?"

सिद्धि०—" इसी शान्तिपुरके लोगोंसे मैंने सुना है। इस पहाड़के सम्बन्धमें एक सतीके प्रतापकी कहानी सुन पड़ती है। उसी कहानीके आधारपर, इसी पहाड़ीपर बैठकर, मैंने एक कविता लिखी है। मँझली भौजी उसी कविताके लिए कह रही थीं।"

मैंने हँसकर कहा—" देख पड़ता है, तुम एशियाके वर्ड्सवर्थ हो। वर्ड्सवर्थ भी इसी तरह घूमने निकल जाते थे। मनमें अगर किसी भावका उदय होता था तो वे चट कागज पेंसिल निकालकर वहीं कविता लिखने बैठ जाते थे। उन्होंने अपनी बहुतसी कवितायें इसी तरह घरके बाहर ही लिखी हैं।"

सिद्धि०—" हाँ, यह तो जानता हूँ। किन्तु किसके साथ आप किसकी तुलना करते हैं। वड्सवर्थ स्वर्गके कवि थे। जगतमें एक वही आदर्श कवि-जीवन व्यतीत कर गये हैं।"

मैं—" उन्होंने आदर्श कवि-जीवन व्यतीत किया, इसमें कोई सन्देह नहीं। लेकिन आदर्श कवि-जीवन व्यतीत करनेवाले एक वे ही इस पृथ्वीपर नहीं हुए।"

सिद्धिनाथने कुछ विस्मित होकर कहा—" और कौन हुआ है?"

मैं—" हमारे देशमें, इसी भारतवर्षमें, ऐसे ही कवि हुए हैं।"

सिद्धि०—" हमारे देशमें कौन हुए हैं?"

मैंने हँसकर कहा—" कविकुलगुरु महर्षि वाल्मीकि।"

सिद्धिनाथका विस्मय उत्तरोत्तर बढ़ते देखकर मुझसे हँसे विना नहीं रहा गया। मैंने कहा—" क्या तुमने कविवर वाल्मीकिकी रामायण नहीं पढ़ी?"

सिद्धिनाथने कहा—" बचपनमें एक वार मैंने तुलसीकृत रामायण पढ़ी थी। लोगोंसे यह जरूर सुना है कि वाल्मीकि पहले डाकू थे।

पीछे रामका उल्टा नाम जपनेसे उनके पापोंका क्षय हो गया। तब ब्रह्माने आकर उनको वरदान दिया और रामायण लिखनेकी आज्ञा दी।"

मैंने कहा—"महर्षि वाल्मीकिकी बनाई रामायणमें इस प्रसङ्गका कहीं उल्लेख नहीं मिलता। मुझे भी इस बारेमें सन्देह है कि महर्षि वाल्मीकि पहले ठग या डाकू थे। और अगर यही मान लिया कि उनके जीवनका पहला हिस्सा कुकर्मकलुषित था, तो भी तुमको स्मरण रहना चाहिए कि मैं महर्षि वाल्मीकिकी बात कह रहा हूँ; डाकू वाल्मीकिकी नहीं।"

सिद्धि०—"अच्छा, वाल्मीकिने किस ढँगसे अपना जीवन व्यतीत किया?"

मैं—"वाल्मीकिने महर्षियोंके ढँगसे अपना जीवन बिताया। वे जीवनकी अन्तिम घड़ीतक उसी सत्य, सुन्दर, महान्, एक, अद्वितीय महापुरुषके ध्यान और धारणामें लगे रहे। बस्तीके बाहर, भारी जंगलकी घनी शोभाके बीच, शान्तिपूर्ण आश्रममें रहकर, कुछ एक चुने हुए शिष्योंके साथ उन्होंने अपना जीवन व्यतीत किया। वे अपने हृदयमें जिस अपूर्व सुन्दरताकी लीला देख रहे थे उसे बतलानेमें मैं सर्वथा असमर्थ हूँ। उस सौन्दर्यके एक कणकी उपलब्धिमें ही मेरा हृदय भर जाता है। जगतके लिए समान रूपसे पूजनीय सीतादेवी जिनकी अपूर्व सौन्दर्यसृष्टि है, बुद्धिमान् लक्ष्मण और मातृभक्त भरत तथा महात्मा रामचन्द्र जिनकी अद्वितीय प्रतिभाके कारण आज भी हरएक भारत-वासीके हृदयकी भक्ति पाते हैं और पूज्य हो रहे हैं, उन महर्षि वाल्मीकिके ज्ञानके बारेमें कुछ कहना तो सूर्यको दीपक दिखानेके समान ही होगा। रामायणकी रचना कैसे हुई, यह तुम जानते हो?"

सिद्धि०—" नहीं । "

मैं—" तो ध्यान लगाकर सुनो । महर्षि वाल्मीकि स्वाभाविक कवि थे । उस पूर्ण सौन्दर्य और पूर्ण पवित्रताके एकमात्र आधार महान् परमेश्वरकी आराधना करते करते, जगतमें उनकी पूर्णताका उदाहरण देखनेके लिए, महर्षि वाल्मीकिके हृदयमें आप ही इच्छा पैदा हुई । जगतके सभी महाकवियोंके हृदयमें आप ही ऐसी प्रबल इच्छाका होना स्वाभाविक ही है । किन्तु जगत् तो अपूर्ण है । जान पड़ता है, उस महापुरुष परमेश्वरकी इच्छा ही ऐसी है । परन्तु बहुत लोग जगतमें इस अपूर्णताको देखकर खिन्न होते हैं और यदि वे सावधान न हुए तो अन्तको जगतके शत्रु, मनुष्यमात्रके शत्रु, हो जाते हैं । महर्षिके जीवनमें भी एक दिन ऐसी ही अवस्था उपस्थित हुई थी । वे संसारमें कहीं भी पूर्णता न देखकर पहले क्षोभको प्राप्त हुए । इसी समय देवऋषि नारदजी उनके आश्रममें उपस्थित हुए । नारदजी तीनों लोकोंमें विचरण करते हैं । उन्हें देखते ही वाल्मीकिजीने पूछा—भगवन् आपके लिए तो ऐसा कोई स्थान नहीं है जहाँ आप न जा सकें, अथवा जिसे आप न जानते हों । आप बता सकते हैं कि इस समय जगतमें ऐसा भी कोई है जो पूर्ण, आदर्श और सर्व गुणालंकृत हो ? "

" नारदजी वाल्मीकिके मनका भाव समझकर कुछ देर तक सोचते रहे । सोचकर उन्होंने कहा—' महर्षिजी, आप जैसा महापुरुष चाहते हैं वैसे महापुरुष जगतमें अत्यन्त दुर्लभ हैं । परन्तु इस समय ऐसे एक महापुरुषका जन्म हुआ है; उनका नाम है रामचन्द्र । वे अयोध्याके महाराज दशरथके पुत्र हैं । ' इतना कहकर उन्होंने रामचन्द्रका जन्मसे लेकर उस समय तकका सब चरित संक्षेपमें कह सुनाया । भगवान्

रामचन्द्र इस समय लङ्कासे सीताका उद्धार करके अयोध्याके सिंहासन पर बैठकर प्रजाका पालन कर रहे थे।

"देवर्षि नारदके मुखसे रामचन्द्र और सीतादेवी आदिके वृत्तान्तको सुनकर वाल्मीकिका क्षोभको प्राप्त हुआ हृदय आनन्द और उल्लाससे खिल उठा। उनकी दोनों आँखोंसे एक अलौकिक ज्योति निकलने लगी। उनका हृदय परिपूर्ण हो उठा। वह पृथ्वीपर स्वर्गका अभिनय देखने लगे। कुछ देर बाद देव-ऋषि नारद दूसरी जगह चले गये। वाल्मीकि भी नित्यके आवश्यक कर्मोंके लिए प्रिय शिष्य भरद्वाजके साथ तमसानदीके निर्मल जलमें स्नान करनेको चले। किन्तु वाल्मीकि-जीके हृदयमें उस समय भी उस स्वर्गीय वीणाकी झनकार उठ रही थी। वे एक महान् भावमें मग्न हो रहे थे। जगतके हरएक पदार्थमें वे अलौकिक पवित्रता और सौन्दर्य देख रहे थे। तमसाका स्वच्छ जल देखकर ही उन्होंने उत्साहके स्वरमें भरद्वाजसे कहा—'वत्स, देखो देखो, तमसाकी यह जलराशि साधुलोगोंके हृदयकी तरह कैसी स्वच्छ और निर्मल है।' स्वच्छ जल देखकर भी उनका हृदय अच्छी तरह तृप्त नहीं हुआ। उन्होंने भरद्वाजसे कहा—'वत्स, तुम मुझे वल्कल दे दो। मैं इस नदी-निकटके वनमें जरा घूम जाऊँ।' इतना कहकर उन्होंने वनमें प्रवेश किया—।"

यहींतक कहा था, इसी समय लक्ष्मी, चुन्नी, अन्नपूर्णा, गोविन्द आदि लड़की लड़के आनन्द-कोलाहल करते हुए आ पहुँचे। सभी कहने लगे—मैं जाऊँगा मैं जाऊँगा।

मैंने कहा—"कहाँ रे?"

लक्ष्मीने कहा—"काकी, बुआ, अम्मा वगैरह सब कपड़ेलत्ते पहने तुम्हारे साथ कहीं घूमने जा रही हैं। हमको भी काकाजी, ले चलिए।

अम्मा हमें नहीं ले जाना चाहती। तुम भी न ले चलोगे तो हम पीछे पीछे चलेंगे।"

मैने कहा—"अच्छा ले चलेंगे, गोलमाल न करो।"

इसी बीचमें छोटासा बच्चा मोती भी ऊपर चढ़कर मेरे पास आ गया। उसके बाद मेरी धोती पकड़कर और मुखकी ओर देखकर उसने हाँफते हाँफते व्याकुल भावसे अपनी स्वर्गीय तोतली भाषामें कहा—"काका, अम बी चलेंगे; अम बी चलेंगे।"

मने कहा—"तू भी चलेगा? अच्छा, आ मेरी गोदमें।"

वाल्मीकिका वृत्तान्त आगे नहीं कहा जा सका। दोनों भौजी, भगवती, रधिया, मौसीकी लड़की और भौजीकी दोनों दासियाँ, सब साफ सुथरे कपड़े पहनकर मेरे पास ऊपर आईं। मँझली भौजीने आते ही कहा—"चलो भाई, चलो।"

मैंने सबके कपड़ोंकी तरफ देखकर कहा—"तुम लोग क्या कहीं जाफत खाने जा रही हो? हम लोगोंको भी कुछ माल खानेको मिलेगा या नहीं?"

मँझली भौजीने कहा—"मिलेगा क्यों नहीं? हम क्या अकेले सब खा लेंगीं?"

मैंने कहा—"भाई सिद्धिनाथ, उठो। वाल्मीकिका वृत्तान्त और किसी समय सुनना।"

इसके बाद हम सब घरसे बाहर निकले। घरमें केवल माताजी, मौसी और मोहन रह गया। मँझले दादा पिताजीके साथ कहीं गये हुए थे।

बाईसवाँ परिच्छेद।



घरसे बाहर निकलते ही हम लोग अपने घरसे मिले हुए जंगलमें घुसे। मँझली भौजीने कहा—" बचुआ, जंगलमें जानेवाली राह तो है न ? "

मैंने कहा—" आदमीकी बनाई हुई राह नहीं है। हाँ पेड़ोंके बीच ऐसी फाँकें हैं, जिनसे होकर अनायास ही आया जाया जाता है। मगर बीच बीचमें ऐसे कँटीले पेड़ हैं कि उनमें तुम्हारे कपड़े अटक जानेका डर है। जरा कपड़े सँभालकर चलना। "

सिद्धिनाथ राह दिखाता हुआ आगे आगे चला। लड़की-लड़के उसके पीछे चलने लगे। स्त्रियाँ उनके पीछे चलीं। मैं सबके पीछे चला। मोती एक दासीकी गोदमें चढ़ाहुआ जा रहा था।

मँझली भौजीने फिर पूछा कि—" बचुआ, जंगलमें कुछ डर तो नहीं है ? भाई, तुम कैसे इस जंगलमें घूमते फिरते हो ? यहाँ तो पेड़ोंके सिवा और कुछ देख ही नहीं पड़ता। यह देखो, चारों ओर इन पेड़ोंके झुर्मुटसे अन्धकार सा हो रहा है। इन पेड़ोंमें कोई खूनी जानवर तो नहीं छिपा होगा ? बापरे ! यहाँ तो दिनको ही शाम सी देख पड़ती है ! "

मैंने कहा—" भौजी, तुमको डर काहेका है ? कुछ डर होता तो हम तुम लोगोंको यहाँ ले आते ? अन्नपूर्णा वगैरह तो नित्य इधर ही पूजाके फूल चुनने आया करती हैं। क्यों अन्नपूर्णा, क्या तुमको डर लगता है ?"

अन्नपूर्णाने हँसकर कहा—" क्यों लगेगा ? डर काहेका ? मैं तो अकसर अकेले ही इधर फूल तोड़ने आया करती हूँ। "

मँझली भौजीने कहा "तुम्हारे तो यहाँ सिद्धिनाथ हैं और तुम्हारी जीजीके लिए भी देवरजी मौजूद हैं। तुमको तो काई डर नहीं हैं। जो कुछ डर है सो हम लोगोंको। रधिया, घर लौट चलेगी?"

रधियाका मुँह सूख रहा था। उसने कहा—"अजी मुझे तो याद ही न था। मिठाना बुआ कई दफे इस जंगलमें न जानेके लिए मुझे समझा चुकी हैं।" इसके बाद बहुत धीमे स्वरमें उसने कहा—"मान लो कि यहाँ बाघ भालू आदि नहीं हैं, मगर देवता (भूत-प्रेत) तो न जाने कितने रहते होंगे!"

रधियाकी यह बात सुनकर सब औरतें सन्नाटेमें आकर खड़ी हो गईं। भगवती जरा इधर उधर करने लगी। सिद्धिनाथ बाल-बच्चोंको लिए कुछ दूर आगे बढ़ गया था। वह रधियाकी उन सब बातोंको नहीं सुन सका। मौसीकी लड़कीने भयसूचक स्वरसे सिद्धिनाथको पुकारा और कहा—"अरे सिद्धू, लौट आओ। हम लोग जंगलकी सैर करने नहीं जाँयगी।"

सिद्धिनाथने जोरसे कहा—"तुम लोग चली आओ। आगे बहुत साफ सुथरी खुलासा जगह है।"

सिद्धिनाथकी बात कौन सुने? रधिया और मौसीकी लड़कीने घर लौट चलनेकी सलाह ठहराई। मँझली भौजी, बड़ी भौजी और उनकी दोनों दासियाँ कुछ इधर उधर करने लगीं। उनका रँग ढँग देखकर मोती भी डरसा गया। उसने कहा—"अम्मा, गोदी ले ले।" यों कहकर वह दासीकी गोदसे माकी गोदमें चला गया। भगवती बेशक कुछ भी नहीं डरी। उसने मौसीकी लड़कीसे धीरेसे कहा—"यहाँ कुछ डर नहीं है, तुम चलती क्यों नहीं हो?"

रधियाको ही सब अनर्थकी जड़ देखकर मैंने कहा—" रधिया, तू भूत-प्रेतोंका डर दिखाकर सबको घर लौटाये लिये जाती है ? अच्छा, जा, मगर जानती है कि अगर कोई दर्शन करने जाकर राहसे लौट आता है तो उसका क्या होता है ? वनके देवतोंका वन ही मन्दिर है। इस मन्दिरसे तू सबको लौटाये लिये जाती है। इसका मजा तू पीछे चक्खेगी ! "

रधिया भयसे चिल्लाकर बोली—" बप्पारे, मैं क्या जानेको मना करती हूँ ? बहुएँ तो आप ही नहीं जाना चाहतीं। "

मैंने कहा—" बड़ी भौजी, तुम आओ, कुछ डर नहीं है। "

इतना कहकर मैं सबके आगे हो लिया।

घर लौट जानेसे अनिष्टकी संभावना देखकर सब स्त्रियाँ काठकी पुतलीसी मेरे पीछे चल पड़ीं।

घड़ीभरमें हम लोग एक खुली हुई साफ जगहमें पहुँच गये। दो बीघेके लगभग जमीनपर कोई पेड़ नहीं था। लेकिन उसके चारों ओर वन ही वन था। तीसरे पहरकी धूप पड़नेसे वह स्थान जगमगा रहा था। लड़की-लड़के वहाँपर दौड़ धूप और गुल-शोर करने लगे। कोई पास ही लगे हुए जंगली पेड़ोंके फूल चुनने लगे। सिद्धिनाथ एक बड़े भारी काले पत्थरपर बैठा हुआ हमारे आनेकी राह देख रहा था। स्त्रियाँ उस जंगलके भीतर सहसा ऐसा साफ और सुन्दर स्थान पाकर जैसे विस्मित, आनन्दित और प्रफुल्लित हो उठीं। किसीके चेहरे पर जरा भी भयके चिह्न नहीं देख पड़े। मँझली भौजी कह उठीं—"आहा, कैसी सुन्दर जगह है बचुआ ! मैं समझती थी यहाँ केवल पेड़ ही पेड़ होंगे। जंगलमें ऐसी जगहके होनेका खयाल भी कोई नहीं कर सकता। वहाँ-पर वह क्या है ? क्या गऊएँ चर रही हैं ? बचुआ, यह छोटीसी

लड़की यहाँ अकेली ही गऊ चराया करती है क्या ? रधिया, जीजी, बचुआ सच ही कहते थे कि इस जंगलमें कुछ भी डर नहीं है। हम तो भाई शहरकी रहनेवाली हैं, जंगल कभी देखा ही न था, इसीसे डर रही थीं।"

मैंने कहा—"यह देखो, इस साखूके पेड़के तले, इस घासके ऊपर मैं नित्य लेटेलेटे किताबें पढ़ा करता हूँ। आज भी सवेरे मैं यहाँ आचुका हूँ।"

बड़ी भौजीने कहा—"बड़ी अच्छी जगह है भाई! आओ, जरा यहीं बैठें।"

यह कहकर वे जमीनपर बैठ गईं। उनकी देखादेखी और भी सब औरतें बैठ गईं। मँझली भौजी इधर उधर देखते देखते सहसा बोल उठीं—ओ बचुआ! यह क्या है? इसके तो बड़े लम्बे लम्बे कान हैं! वह देखो, वह उधर जंगलमें घुस गया।

भौजीकी बातें सुनकर रधिया चिल्ला उठी और दौड़कर मेरे पीछे छिप रही।

मैंने क्रोध करके कहा—"करती क्या है? हरामजादी, तुझीको सबसे पहले खा डालेगा क्या?"

और भी सब स्त्रियाँ रधियाके रँग ढँग देखकर, डरकर, उठ खड़ी हुईं।

मैंने कहा—"भौजी, वह खरगोश है। यह बड़ा सीधा जानवर होता है, कभी किसीको हानि नहीं पहुँचाता। बेचारा कोमल पत्ते खा रहा था, तुम्हारी खटक पाकर बिलमें चला गया। मनुष्य ही इनका शत्रु है। लोग इसका मांस खाते हैं।"

बड़ी भौजीने कहा—" वह जो 'शिक्षावली' में खरगोश और कुत्तेका बयान है, वही खरगोश ?"

मैंने हँसकर कहा—" हाँ।"

स्त्रियाँ फिर निश्चिन्त होकर उसी जगह पर बैठ गईं। जिन्होंने खरगोश नहीं देखा था वे फिर खरगोशके निकलनेकी आशासे उधर ही ताकती रहीं।

जंगलके भीतर बोलते हुए मधुर शब्दवाले पक्षियोंकी बोलियाँ सुनाई पड़ रही थीं। उन बोलियोंके सम्बन्धमें हर एकने अलग अलग प्रश्न करना शुरू कर दिया। मैंने यथाशक्ति सबके प्रश्नोंके उत्तर दिये। एकाएक जंगलमें दूर पर एक मोर बोल उठा। सब स्त्रियाँ डरकर चौंककर मेरी ओर ताकने लगीं। स्त्रियोंका रँग-ढँग देखकर मुझसे हँसी रोके नहीं रुकी। मैंने कहा—" कोई डरकी बात नहीं है। जंगलमें मोर बोल रहा है।"

जिन्होंने पहले कभी मोरकी आवाज सुनी थी, उन्होंने मेरी बातका समर्थन किया।

सिद्धिनाथने कहा—" यहाँ बैठे बैठे तो काम चलेगा नहीं। चलो, हम लोग पहाड़की सैर कर आवें।"

सब स्त्रियाँ पहाड़की सैरके लिए उठ खड़ी हुईं। स्त्रियोंकी वन घूमनेकी लालसा देखकर मैंने सिद्धिनाथसे कहा—" अच्छा, पहले इस नदीके किनारे चलना चाहिए। नदीके किनारे जंगल नहीं है, सब साफ जगह है, और वहाँपर धूप भी है।"

सिद्धिनाथ मेरे अभिप्रायको समझकर उसी तरफ चला।

उस नदीका क्षीण प्रवाह कहींपर एक चौड़ी चाँदीकी चादरकी तरह लम्बा चला गया था, कहीं कलकल करता हुआ पथरीली ऊँची जगहसे गिरकर सफेद फेन उगल रहा था, और कहीं टेढ़ामेढ़ा होकर अजगरसा जान पड़ता था। नदीके किनारे गोल चिकने रंगबिरंगे पत्थरोंके टुकड़े पड़े थे। उन्हें चुननेके लिए सब लड़की-लड़के आगे आगे कोलाहल करते चले। नदीकी विचित्र शोभा देखते देखते और तरह-तरहकी अनेक बातें करते करते हम लोग अन्तको उसी काले रंगकी सेंदुरिया पहाड़ीके पास पहुँच गये।

पहाड़के भयानक सौन्दर्यको देखकर स्त्रियोंके मनमें कैसे भावोंका उदय हुआ होगा, सो सभी लोग सहजमें अनुमान कर सकते हैं। मैंने कहा—"मँझली भौजी, यह देखो सेंदुरिया पहाड़ है। चलो, ऊपर चढ़ें।"

ऊपर चढ़नेकी बात सुनते ही सब स्त्रियोंके मुँह सूख गये। मैंने कहा—"कुछ डर नहीं है। चढ़नेमें कुछ कष्ट न होगा। इस नदीकी ओर यह पहाड़ खड़ासा जान पड़ता है। मगर हम इधरसे नहीं चढ़ेंगे। पूर्वकी ओर आओ, चलें।"

मैं सबको पहाड़की दूसरी ओर ले गया और धीरे धीरे ऊपर चढ़ने लगा। सीढ़ियोंसे मकानके दूसरे खण्डपर चढ़नेमें जैसे कुछ कष्ट नहीं होता वैसे ही लम्बी झुकी हुई उस पहाड़ीपर चढ़कर उसकी चोटीपर पहुँचनेमें किसीको कष्ट या थकावट नहीं जान पड़ी। पहाड़ी चौड़ी थी, इससे वह एक काले पत्थरकी मैदान सी जान पड़ती थी। वह पूर्व-पश्चिम लम्बी थी।

स्त्रियाँ और लड़की-लड़के मनमानी जगहपर बैठकर पहाड़ीके ऊपरसे विस्मयके साथ चारों ओरके दृश्य देख रहे थे। पहाड़ीके पश्चिम

ओर उसके पैरोंको धोती हुई यह नदी बह रही थी। नदी उत्तर-पूर्व ओरसे आकर उस पहाड़ीको घेरती हुई दक्षिण ओर चली गई थी। तीसरे पहरके सूर्यकी किरणें जंगलके हरे और चिकने पत्तोंपर पड़कर मनोहर शोभाकी सृष्टि कर रही थीं। पहाड़के पूर्व ओर बहुत दूरतक, ढाकके पेड़ोंके बीचमें, निकाले हुए पत्थरोंके ढेर इधर उधर बिखरे हुए पड़े थे। उनसे उस स्थानकी भयानकता दूनी जान पड़ती थी। स्त्रियोंके चेहरे देखकर मैंने समझ लिया कि वे इस भयानक सुन्दरताका कुछ भी अनुभव नहीं कर सकतीं। पहाड़से मिला हुआ दक्षिण ओरका स्थान और स्थानोंकी अपेक्षा साफ था। वहाँपर जंगल भी नहीं था। उधर ही देखते देखते लक्ष्मी बोल उठी—"अम्मा, देखो, यह जंगलमें किसका घर है?"

सब स्त्रियाँ उसी ओर ताकने लगीं। मँझली भौजीने विस्मित होकर कहा—"सच तो है! बचुआ, यह किसका घर है?"

मैंने हँसकर कहा—"यह किसका घर है? क्या तुमने इस घरको कभी नहीं देखा?"

अन्नपूर्णाने जरा ध्यानसे देखकर कहा—"वाह! यह तो तुम्हारा ही घर है। यह देखो हमारा गाँव है!"

स्त्रियाँ सन्नाटेमें आगईं। मँझली भौजीने कहा—"बचुआ, यहाँसे हमारा घर इतना पास है? इधर तो अधिक जंगल भी नहीं है। तब तो हमें लौटकर पहलेके जंगलसे नहीं जाना पड़ेगा?"

मैंने हँसकर कहा—"नहीं।"

मँझली भौजी बोल उठीं—"आः, जान बची। तुम्हारे वन घूमनेको मैं दण्डवत करती हूँ। मैं तो एक चक्करमें पड़ गई थी। मुझे कुछ भी नहीं जान पड़ता था कि मैं किधरसे आई, कहाँ आई और अब

किधरसे जाऊँगी। मेरा मन घरमें ही लगा हुआ था। घर देखकर अब जैसे जानमें जान आई।"

मैंने हँसकर कहा—"मँझली भौजी, ये जंगल-पहाड़ वगैरह तुम लोगोंके लिए नहीं हैं। तुम्हारे लायक स्थान घर ही है। जंगलमें तुम लोगोंके मनमें स्फूर्ति नहीं होती। स्त्रियोंमें केवल सीतादेवी ही ऐसी हुई हैं, जो अपने स्वामीके साथ घने जंगलमें बेखटके घूम सकी हैं। वे कैसी स्त्री थीं, सो तुम अपनी देवरानीसे सुन सकती हो!"

मँझली भौजीने मुसकिराकर कहा—"अच्छा भाई, ऐसा ही करूँगी। पण्डिताजीसे पूछ लूँगी। अच्छा सिद्धू भैया, क्या तुमने इसी पहाड़पर कविता लिखी है? जरा सुनाओ तो सही।"

सिद्धिनाथने कहा—"पहले यहाँ आकर यह दरार देख जाओ।"

हम सबने जाकर देखा, पहाड़का उत्तरका हिस्सा जड़से फटकर दो टुकड़े हो गया है। दरार इतनी चौड़ी है कि उसे फाँदनेकी हिम्मत नहीं पड़ सकती। वह दरार नीचे अन्धकार और लताओंसे परिपूर्ण थी। स्त्रियाँ उसे किसी भयानक जंगली जीवके रहनेकी जगह जानकर सहमने लगीं।

तेईसवाँ परिच्छेद।

सिद्धिनाथने सबसे बैठनेके लिए कहा और आप सबसे कुछ ऊँचे एक शिलाखण्डपर बैठ गया और गम्भीर भावसे कहने लगा —"बहुत समय हुआ जब इस शान्तिपुर गाँवमें एक पतिव्रता सती स्त्री रहती थी। उसी समय इस पहाड़की कन्दरामें एक अजगर भी रहता था।

(सुनकर सब औरतें सिहर उठीं।) उस अजगरने एक दिन उस सतीके स्वामीको पहाड़पर पाकर निगल लिया। (स्त्रियोंके मुखसे एक हल्की सी चीख निकल गई।) वह सती सेंदुरकी डिबिया हाथमें लिये माथेमें सेंदुर लगा रही थी। इसी समय उसे स्वामीकी विपत्तिका हाल सुन पड़ा। वह वैसे ही डिबिया हाथमें लिये दौड़ी हुई पहाड़पर आई। उसने पहले पहाड़की बहुत कुछ स्तुति इस लिए की कि वह उसके स्वामी और अजगरको अपनी खोहके बाहर निकाल दे। परन्तु पहाड़ने पतिव्रताकी बात नहीं सुनी। सतीको क्रोध आ गया। उसने वही सेंदुरकी डिबिया पहाड़पर खींच मारी। डिबियाके लगते ही उसी जगहसे कड़कड़ाहटके साथ पहाड़ फट गया। साँप मर गया और साँपके पेटसे सतीका स्वामी जीता जागता बाहर निकल आया। सतीने पहाड़के सेंदुरकी डिबिया मारी थी, इसीसे पहाड़को लोग ' सेंदुरिया पहाड़ ' कहने लगे।"

कथा सुनते सुनते स्त्रियोंके रोंगटे खड़े हो आये। भगवती अपनी बड़ी आँखें सिद्धिनाथके चेहरेपर जमाये हुए एकाग्र मनसे कथा सुन रही थी। सब लड़की-लड़के भी निश्चल होकर सुन रहे थे। वे डरकर स्त्रियोंके बीचमें आगये। मँझली भौजीने भयके स्वरमें कहा—" तब तो भैया सिद्धू, हमने इस पहाड़पर चढ़कर अच्छा काम नहीं किया।"

सिद्धिनाथने कहा—" चढ़ी हो तो क्या हुआ ? यहाँकी औरतें भी तो इस पहाड़पर आती हैं। एक दिन इस पहाड़पर आकर सतीकी पूजा कर जाना। सब दोष मिट जायगा।"

" यही करेंगे " कह कर मँझली भौजीने उस पहाड़ और सतीको प्रणाम किया। अन्य स्त्रियों और लड़कियोंने भी वही किया। मोतीकी दासीने उसको कुछ करते न देखकर उसका भी सिर झुका दिया।

जान तुझे घर और कामनाओंकी ढेरी ।
नरनारी सब करें दूरसे पूजा तेरी ॥ २ ॥

अजर अमर तुम शैलराज हो बड़े पुराने ।
कब तुम निकले भूमि फोड़ कोई क्या जाने ॥
देखा तुमने सत्य और त्रेतायुग द्वापर ।
देखे तुमने हैं अनेक परिवर्त्तन भूपर ॥ ३ ॥

नीरव भाषासे मनुष्यको मस्त बनाते ।
निकट तुम्हारे अहो, सभी आनन्द मनाते ॥
बैठ तुम्हारे पास, यादकर पूर्व-कहानी ।
कभी कभी वह चले शैल, आँखोंसे पानी ॥ ४ ॥

चुपकेसे गंभीरभावसे सती-शक्तिको ।
करो प्रचारित और बढ़ाओ सती-भक्तिको ॥
अबलासे तुम हार गये हो, क्या कारण है ?
यह सब महिमा पतिव्रताकी साधारण है ॥ ५ ॥

एक सती थी यहाँ, और था उसका स्वामी ।
करनी पड़ती जमींदारकी उसे गुलामी ॥
स्वामिकार्यसे एक दिवस वह यहाँ खड़ा था ।
अजगर भी विकराल एक इस जगह पड़ा था ॥ ६ ॥

लील गया वह उसे, खोहमें खिसक गया फिर ।
सुनकर ऐसी खबर गई दुखसागरसे घिर ॥
गिरी गाज सी, वह अचेत हो गई प्रथम ही ।
फिर उठकर पति-पास पहुँचनेको झट उमही ॥ ७ ॥

करती थी शृंगार भवनमें बैठी सुतिया ।
दौड़ पड़ी इस ओर लिये सेंदुरकी डिबिया ॥
मणिविहीन नागिनी सदृश विह्वल हो आई ।
बिखर रहे थे बाल, सभी सुधबुध बिसराई ॥ ८ ॥
देखा चारों ओर, न पाया अपने पतिको ।
करने लगी विचार, सोचकर पतिकी गतिको ॥

सिद्धिनाथने कहा—"अब सब लोग एकाग्र होकर कविता सुनो।"

इस प्रकार भूमिका बाँधकर सिद्धिनाथने अपनी कविता पढ़ना आरम्भ किया:—

सेंदुरिया पहाड़।

कृष्णकलेवर नग्नदेह योगीसे गिरिवर।
एकभावसे एकध्यानसे खड़े यहाँपर॥
चिरदिनसे यों ध्यानमग्न हो शोभा पाते।
निश्चल होकर खड़े बड़े जगमें कहलाते॥ १॥
बाहर रूखे और भयानक शुष्क हृदयके।
आता है तब पास न कोई मारे भयके॥
जान तुझे वर और कामनाओंकी ढेरी।
नर नारी सब कर दूरसे पूजा तेरी॥ २॥

सिद्धिनाथने इतना ही पढ़ा था, इतनेमें मँझली भौजीने बीचहीमें रोककर कहा—"यह देखो, तुमने तो आप ही लिखा है कि पहाड़के पास कोई नहीं आता, फिर तुम हमको यहाँ क्यों लाये?"

सिद्धिनाथने खीझकर कहा—"कैसी आफत है! तुम डरती क्यों हो? कवितामें यों न लिखें तो काम कैसे चले? तुम मन लगाकर सुनती जाओ; पढ़ते समय मुझे रोको नहीं।"

यों कहकर उसने फिर आदिसे पढ़ाना आरम्भ किया:—

कृष्णकलेवर नग्नदेह योगीसे गिरिवर।
एकभावसे एकध्यानसे खड़े यहाँपर॥
चिरदिनसे यों ध्यानमग्न हो शोभा पाते।
निश्चल होकर खड़े बड़े जगमें कहलाते॥ १॥
बाहर रूखे और भयानक शुष्क हृदयके।
आता है तब पास न कोई मारे भयके॥ . . .

जान तुझे वर और कामनाओंकी ढेरी।
नरनारी सब करें दूरसे पूजा तेरी ॥ २ ॥

अजर अमर तुम शैलराज हो बड़े पुराने।
कब तुम निकले भूमि फोड़ कोई क्या जाने ॥
देखा तुमने सत्य और त्रेतायुग द्वापर।
देखे तुमने हैं अनेक परिवर्त्तन भूपर ॥ ३ ॥

नीरव भाषासे मनुष्यको मस्त बनाते।
निकट तुम्हारे अहो, सभी आनन्द मनाते ॥
बैठ तुम्हारे पास, यादकर पूर्व-कहानी।
कभी कभी बह चले शैल, आँखोंसे पानी ॥ ४ ॥

चुपकेसे गंभीरभावसे सती-शक्तिको।
करो प्रचारित और बढ़ाओ सती-भक्तिको ॥
अबलासे तुम हार गये हो, क्या कारण है?
यह सब महिमा पतिव्रताकी साधारण है ॥ ५ ॥

एक सती थी यहाँ, और था उसका स्वामी।
करनी पड़ती जमींदारकी उसे गुलामी ॥
स्वामिकार्यसे एक दिवस वह यहाँ खड़ा था।
अजगर भी विकराल एक इस जगह पड़ा था ॥ ६ ॥

लील गया वह उसे, खोहमें खिसक गया फिर।
सुनकर वैसी खबर गई दुखसागरसे घिर ॥
गिरी गाज सी, वह अचेत हो गई प्रथम ही।
फिर उठकर पति-पास पहुँचनेको झट उमही ॥ ७ ॥

करती थी शृंगार भवनमें बैठी सुतिया।
दौड़ पड़ी इस ओर लिये सेंदुरकी डिबिया ॥
मणिविहीन नागिनी सदृश विह्वल हो आई।
बिखर रहे थे बाल, सभी सुधबुध बिसराई ॥ ८ ॥

देखा चारों ओर, न पाया अपने पतिको।
करने लगी विचार, सोचकर पतिकी गतिको ॥

हाहाकार अपार सभी जंगलमें फैला ।
सुनकर जिसको हुआ जड़ोंका भी मन मैला ॥ ९ ॥
की उसने बहु विनय प्रार्थना, शैल, तुम्हारी ।
पर तुम थे पाषाण, यदपि वह बहुत पुकारी ॥
जब अजगरको खोह-बीचसे नहीं निकाला ।
पतिव्रताके बढ़ी क्रोधकी मनमें ज्वाला ॥ १० ॥

लगीं निकलने नयनयुगलसे ज्यों चिनगारी ।
डिबिया उसने वहीं खींच सेंदुरकी मारी ॥
और कहा–"जो सती सदासे सच्ची हूँ मैं ।
स्वामिभक्तिमें अगर नहीं कुछ कच्ची हूँ मैं—॥ ११ ॥

तो तेरे दो खण्ड इसीसे होंगे इस दम ।
कर पतिका उद्धार, मिटा दूँगी तेरा भ्रम ॥"
जैसे डिबिया लगी, फटा वैसे ही गिरिवर ।
घोर शब्दसे गूँज उठा सारा जंगलभर ॥ १२ ॥
अजगर तो मर गया और बच गया सती-पति ।
धन्य धन्य कह उठे देवगण हो प्रसन्न अति ॥
पुष्पवृष्टि भी हुई देख नारीकी महिमा ।
सचमुच है अजेय पतिव्रतकी गुण-गरिमा ॥ १३ ॥
सभी गुणोंकी खान सुशीला बाला भोली ।
पतिको पाकर हाथ जोड़कर फिर यों बोली ॥
"हे गिरिवर, हूँ मैं प्रसन्न अब तेरे ऊपर ।
देती तुझे असीस यही मैं, तू इस भूपर ॥ १४ ॥
जब तक तारा चन्द्र सूर्य आकाश लसे हैं ।
सचराचर सब जीव विश्वके बीच बसे हैं ॥
तब तक तुम इस जगह सतीकी महिमा गाओ ।
सब लोगोंसे सदा भक्ति पूजा भी पाओ" ॥ १५ ॥
यों कहकर वह गई भवनको अपने नारी ।
तबसे होती यहाँ तुम्हारी पूजा भारी ॥

चैतमासमें सब किसान-कामिनियाँ मिलकर।
आती हैं सौभाग्यवृद्धिके लिए यहाँपर ॥ १६ ॥

लड़की कोई अगर विदा हो पति-घर जाती।
तो पहले तुमको प्रणाम करनेको आती ॥
छोटे बच्चे घेर घेर कर अपनी नानी।
सुनते हैं यह चावसहित प्राचीन कहानी ॥ १७ ॥

अब भी कोई स्त्री अगर, चलना चहे कुराह।
तो वह तुमको देख सुन, छोड़े नहीं सुराह ॥ १८ ॥

कविता समाप्त होनेपर स्त्रियोंकी मण्डलीसे एक विस्मय और आनन्दकी अस्पष्ट ध्वनि सुनाई पड़ी। मुझसे भी सिद्धिनाथकी कविताकी प्रशंसा किये बिना नहीं रहा गया। अपनी कविताकी बड़ाई सुनकर कुछ प्रसन्न होकर सिद्धिनाथ कहने लगा—"लेकिन इस पहाड़पर बैठकर क़विता पढ़े बिना ऐसा आनन्द नहीं आसकता।"

मैंने कहा—"तुम ठीक कहते हो।"

सूर्यदेव अस्ताचलपर जानेका उद्योग कर रहे थे। पहाड़की काली छाया धीरे धीरे बहुत दूर तक फैल रही थी। पासहीके गाँवसे एक अस्पष्ट कोलाहल उठ रहा था। चरवाहोंके लड़के गऊ भैंसोंको लिए एक एक करके जंगलसे बाहर निकल रहे थे और कभी कभी मधुर स्वरसे दो एक गीत गाते हुए आकाशमण्डलको गुँजा रहे थे। पक्षियोंके कलरवसे सारा जंगल परिपूर्ण हो रहा था और पेड़ोंके पत्तोंकी खड़खड़ाहट बढ़ाता हुआ सन्ध्याकालका वायु चल रहा था। सायङ्कालके इस रमणीय दृश्यने स्त्रियोंके हृदयोंपर भी एक अस्पष्ट अपूर्व भाव उत्पन्न कर दिया था। क्योंकि वे भी बहुत देर तक चुपचाप बैठी रहीं; किसीने एक भी अक्षर नही कहा। लड़के भी शान्त हो रहे।

कुछ देर बाद मँझली भौजी चौंकसी पड़ीं। उन्होंने कहा—"बचुआ, अब तो शाम हो आई, चलो, घर चलें। अम्मा अँदेसा कर रहीं होंगी।"

मैं कुछ न कहकर उठ खड़ा हुआ और सबके साथ धीरे धीरे पहाड़परसे उतरा। स्त्रियोंने नीचे आते ही फिर पहाड़को दण्डवत् प्रणाम किया।

घर आनेमें हमें अधिक समय नहीं लगा। हमारे लौटनेमें विलम्ब देखकर माताजी मोहनको भेज रही थीं। इसी समय हम लोगोंने घरमें प्रवेश किया। मेरी भौजाइयाँ और लड़के-लड़कियाँ माताजी और मौसीसे राहकी बातचीत करने लगीं। अन्नपूर्णा और गोविन्द दोनों अपनी बहिनसे बिदा होकर घरको गये। मैं बाहरकी बैठकमें आकर बैठा।

दूसरे दिन सबेरे माताजी और मौसीने कहा—" बचुआ, सिद्धिनाथ, हमको भी एक दिन सतीका पहाड़ दिखा लाना।"

सिद्धिनाथने कहा—" और उसी दिन सतीकी पूजा भी कर आना।"

चौबीसवाँ परिच्छेद।



मँझले दादाकी छुट्टीके दिन पूरे हो आये। वे अपनी नौकरीपर चले गये, लेकिन माताजीके कहनेसे मँझली भौजी और बाल बच्चोंको कुछ दिनके लिए शान्तिकुटीरमें ही छोड़ गये। कुछ दिनके बाद मौसी और उनकी लड़की भी अपने घरको चली गई। इसके बाद बड़े दादाने बड़ी भौजीको भेजनेके लिए चिट्ठी लिखी। पिताजी एक दिन

शुभ मुहूर्त्त देखकर बड़ी भौजी और लक्ष्मीको लेकर बड़े दादाके पास चले गये। घर सूना सा हो गया। जिस जगह नित्य आनन्द-उत्सव होते थे वह जगह जैसे रहनेके लायक भी नहीं रही। मँझली भौजीने एक दिन मुझसे कहा—"बचुआ, मुझे तो अब यह घर जैसे निगले लेता है। बड़ी जीजी, मौसी वगैरह सभी चली गईं।"

रधिया वहाँपर मौजूद थी। वह कह उठी—"और मँझले दादा भी तो चले गये हैं!"

मँझली भौजीने हँसकर कहा—"यह तो झूठ नहीं है। सचमुच रधिया, अब यहाँ एक घड़ी भी ठहरनेको जी नहीं चाहता। पर हमारे बचुआको कोई कष्ट न होगा, बल्कि हमारे रहनेसे ही इनको अधिक कष्ट मिल रहा है। ये अकेले ही रहना पसन्द करते हैं; जंगलमें अकेले बैठे रहते हैं; अकेले घूमते हैं; अकेले पढ़ते हैं। हम सब यहाँ रहकर इन्हें खिजानेके सिवा और क्या करती है! क्यों न बचुआ?"

मैं मँझली भौजीकी बातपर कुछ हँसकर बोला—"भौजी, अगर तुम मँझले दादाके पास जाना चाहती हो तो और बात है। लेकिन ऐसी बातें मुझसे परमेश्वरके लिए न करो कि तुम्हारे रहनेसे मुझे कष्ट होता है। इन बातोंसे सचमुच ही मुझे कष्ट होगा। अपने आदमियोंके पास रहनेसे कभी कोई दुःखित होता है? और जो दुःखित होता है वह बड़ा ही अधम पुरुष है। हाँ, यह सच है कि मैं कुछ निरालेमें रहना अधिक पसन्द करता हूँ। मैं गोलमाल या गुलगपाड़ेको पसन्द नहीं करता। अकेले घूमने और अकेले रहनेमें मुझे कुछ विशेष आनन्द मिलता है।"

मँझली भौजीने कहा—"मैं भी तो यही कहती हूँ। मैं तो कुछ और नहीं कहती। अच्छा, संसारके सब आदमी तो दस आदमियोंके साथ

बैठने उठने और रहने-सहनेको पसन्द करते हैं, पर तुम्हीं इसके विपरीत अकेले रहनेमें क्यों सुखी होते हो ?"

मँझली भौजीके प्रश्नका; रँग-ढँग देखकर मैं उनकी इस नालिशका कारण समझ गया। मैंने हँसकर कहा—"मैं अकेले रहना क्यों पसन्द करता हूँ, यह बात मैं तुम्हें किस तरह समझाऊँ ? एकान्तमें अकेले बैठकर सोचनेमें आनन्द आता है, सन्नाटेमें अकेले बैठकर पढ़नेमें आनन्द आता है। इसीसे मैं अकेले रहना पसन्द करता हूँ। कभी कभी मैं सिद्धिनाथके साथ पुस्तक पढ़ता हूँ, बातें करता हूँ, घूमने जाता हूँ। हरघड़ी तो मैं अकेला नहीं रहता।"

मँ० भौजी—"यह तुम्हारा कहना सच है। केवल मेरी बहिनके पास दो घड़ी बैठनेहीमें तुम्हें कष्ट होता है।"

असल बात प्रकट हो गई। मैंने कहा—"भौजी, तुम्हारे समझनेमें भूल है। मै ऐसा नासमझ नहीं हूँ। स्त्रीके पास बैठनेमें किसे कष्ट होगा ? किन्तु एक वाक्यहीन कठपुतलीके पास बैठे रहना, सचमुच ही बड़े कष्टकी बात होती है। काठकी पुतलीके पास बैठे रहनेकी अपेक्षा मैं पुस्तक पढ़ने, दो-चार किसानोंके साथ वार्तालाप करने, अथवा प्रकृति देवीकी गोदमें चुपचाप बैठे रहनेको अधिक आनन्ददायक समझता हूँ।"

मेरी बातें सुनकर मँझली भौजी कुछ खफा हो गईं। उन्होंने कहा—"भाई, तुम्हें जिसमें आनन्द मिले वही जाकर करो; उससे हमारा कोई हानि-लाभ नहीं। मगर खबरदार, तुम मेरी बहिनको काठकी पुतली न कहना। अगर भगवती काठकी पुतली है तो काठकी पुतली कौन नहीं है, यह मैं जानना चाहती हूँ !. लिख-पढ़कर खूब दिल्लगी करना सीखे हो। अँगरेजीके पण्डितोंमें ऐसी ही दिल्लगी हुआ करती है !"

मैंने देखा, मँझली भौजी आज सचमुच ही कुछ खफा हो गई हैं। मैंने अपना भाव बदल कर कहा—" भौजी, क्रोध न करो। तुम जो कहती हो उसे मैं मानता हूँ। मेरा भी यही विश्वास है कि भगवती काठकी पुतली नहीं है। किन्तु यह बात इस समय मेरी समझमें नहीं आती कि मेरा यह विश्वास अन्त तक यथार्थ ठहरेगा या नहीं।"

मँ० भौजी—" क्यों ?"

मैं—" क्यों क्या ? केवल दूसरेके कहनेसे सन्तोष नहीं होता। तुम कहती हो कि भगवती बहुत ही अच्छे स्वभावकी और गुणवाली है। अच्छी बात है। भगवतीका स्वभाव बहुत अच्छा है इस बातको तो मैं व्याहके पहलेहीसे जानता हूँ। किन्तु उसमें कोई असाधारण गुण है, इस बातको मैं नहीं जानता। जाननेकी चेष्टा करनेपर भी मैं नहीं जान सका। कोई बात ही न करे तो मैं उसके मनका भाव कैसे जानूँ ? भगवतीके साथ मेरा व्याह हुए इतने दिन हुए, किन्तु एक दिन भी उसने जी खोल कर बात नहीं की। बतलाओ, यह किस तरहकी लज्जा है ? यह लज्जा है या और कुछ, कौन जाने ! "

मँझली भौजीने विस्मित होकर कहा—" और कुछ क्या ? "

मैंने कहा—" शायद घृणा या अनादर हो। "

मँझली भौजी मेरे इस कथनको सुनकर हँसने लगीं। मैं उनकी हँसीका कारण न समझ सकनेके कारण कुछ झेंप गया। उन्होंने कहा— "बचुआ, जहाँ देखो वहाँ यही एक बात सुन पड़ती है। मै देखती हूँ कि तुम सब भाइयोंका एक ही ढँग है। अच्छा, तुम क्या समझते हो कि तुरतकी व्याही हुई बची पचीस बरसकी जवान औरतकी तरह तुम्हारे संग बातचीत करे ? या मेमसाहबकी तरह तुम्हारा हाथ पकड़कर तुम्हारे साथ टहले ? अगर तुम मेमसाहब बनाना चाहते हो तो वह भी होगा। दो

दिन सबर करो। हिन्दूके घरकी लड़की, थोड़ी उमरकी, तुम लोगोंकी तरह कैसे दो ही दिनमें सारा संकोच छोड़ कर हिलमिल सकती है?"

इतना कह कर वे फिर हँसने लगीं। मैं भी मँझली भौजीके इस तानेकी सचाई और तीव्रताका अनुभव करके उनकी इस बातका कुछ उत्तर नहीं दे सका। थोड़ी देर बाद वे फिर कहने लगीं—"बचुआ, भगवती खुलकर तुमसे बातचीत नहीं करती और इसीसे तुम रूठे हुए हो, यह मैं समझी। इस बारेमें तुमसे यही कहूँगी कि सबर करो। कहावत ही है कि सबरमें मेवा फलता है। कुछ दिन संग रहनेसे ही हियाव खुलेगा। यह बात सभी औरतोंमें होती है। लेकिन इससे तुम यह न समझना कि औरतें कुछ जानतीं नहीं या वे कुछ समझतीं नहीं। स्त्रियोंका गुण लज्जा ही है। पहले पहल सब स्त्रियोंमें लज्जा रहती है, इससे वे मुँहसे कुछ कहनेमें संकोच करती हैं। उसपर तुम लोगोंके ताने-तिस्ने सहने पड़ते है। यह सच है कि औरतें जबानी प्रेम नहीं जता सकतीं, पर जरूरत पड़ने पर उसी घड़ीकी ब्याही बालिका अपने स्वामीके लिए प्राण तक दे सकती है। तुम लोग चाहे जितनी डींग हाँको, प्रेमका चाहे जितना जबानी जमाखर्च करो, इस बारेमें तुम्हारी जाति औरतोंकी बराबरी कभी नहीं कर सकती।"

पीछेकी बातें मँझली भौजीने जरा जोर देकर कहीं। मैंने उनकी बातोंका अनुमोदन करके हँसते हँसते कहा—"तुम्हारा कहना ठीक ही है।"

मँझली भौजी फिर कहने लगीं—"और भगवती तुम्हारे साथ बातचीत ही क्या करे, तुम तो दिन भर किताबें पढ़नेमें ही लगे रहते हो। सबेरे तुम जंगलमें टहलने जाते हो, और सबेरे, भाई, हम लोगोंको भी काम-काजका बड़ा झंझट रहता है। रोटी खाकर ही तुम न जानें

कहाँ चले जाते हो। उस समय हम लोगोंको कुछ फुरसत रहती है, लेकिन तुम घरमें ही नहीं रहते, भगवती किससे बातचीत करे? रातको, बेचारी बालिका, किसी दिन सो जाती है, या समझती है कि कोई कान लगाकर आड़से सुन रहा होगा। दिनको तुम किताबें लिए जंगलमें पढ़ने जाते हो उस समय वह सैकड़ों मिसें करके तुम्हारे पढ़नेके कमरेमें आकर खिड़कीके पास खड़ी रहती है। तुम क्या उसके हृदयकी खबर रखते हो?"

मैंने कहा—"मुझे उसके हृदयकी खबर नहीं, यही तो मुझे दुःख है। अगर जरा भी खबर मिलती तो मैं अपनेको कृतकृत्य समझता। भगवतीके हृदयका परिचय पानेके लिए मैंने कितनी ही चेष्टायें की हैं, उससे कितने ही प्रश्न किये है, किन्तु सब बातोंका वही एक उत्तर मिला है—'मैं नहीं जानती।' अच्छा बाबा नहीं जानती तो न सही; मुझे भी जाननेकी कुछ जरूरत नहीं है। मैं जैसा था वैसा ही रहूँगा। उदासीन था, उदासीन ही रहूँगा। जंगलोंमें फिरूँगा, अकेला रहूँगा, अकेला पढूँगा, अकेले बैठकर चिन्ता करूँगा। पुस्तकें हैं, साधु-महात्माओंके जीवनचरित हैं, धर्म्मशास्त्र हैं। इन सबकी चर्चा करूँगा। इस चर्चासे—इस अध्ययनसे—जो आनंद पाऊँगा, सो भगवती भी वह आनन्द नहीं दे सकती। इसके सिवा प्रकृति देवी हैं, भगवान् हैं। प्रकृतिकी गोदमें बैठकर भगवानकी अपार महिमाके बारेमें विचार करनेसे जो आनन्द होगा, जगतकी और किसी चीजमें वह आनन्द पानेकी आशा मैं नहीं कर सकता। इसके सिवा परमेश्वरकी सृष्टि यह भारी जगत् पड़ा हुआ है। इस जगत्में काम करनेके लिये बड़ा भारी मैदान देख पड़ता है। भगवतीकी ममतामें पड़कर मैं अपने जीवनके कर्त्तव्यको भूलना नहीं चाहता। मैं इस अनन्त कामके मैदानमें

उतरना चाहता हूँ—मैं इस भयानक लड़ाईमें भिड़ना चाहता हूँ। मैं अबतक इसी खयालसे व्याह करनेको राजी नहीं था कि व्याह करनेसे पीछे शायद मैं अपने जीवनके उद्देश्यको पूरा न कर सकूँगा। मेरी स्त्री अगर मेरे मनकी होती, मेरे जीवनके उद्देश्यको समझ कर मेरे साथ कर्त्तव्यकी राहमें आगे बढ़ सकती तब तो बड़े ही सुखकी बात होती। अच्छा, अगर वह सुख नहीं बदा है, न सही। मैं उसके लिए दुःखित भी नहीं हूँ। भगवती अगर मेरे साथ जीवनके मार्गमें अग्रेसर होना नहीं चाहती तो वह जहाँ है वहीं पड़ी रहे। लेकिन मैं उसके लिए अपनेको उसी जगह नहीं जकड़ रक्खूँगा; अपने पैरमें अपने हाथ कुल्हाड़ी नहीं मारूँगा; अपने हाथसे अपने हृदयका बलिदान नहीं करूँगा। मैं भगवतीके बन्धनको तुड़ाकर प्रबल तेज और असीम उत्साहसे इस अनन्त कामके मैदानमें उतर पड़ूँगा।"

मँझली भौजी मेरी इन आग्रह-भरी बातोंको सुनकर कुछ विस्मित हुईं। उन्होंने कहा—"बचुआ, मैं तुमको लड़कपनसे जानती हूँ। स्त्री होने पर भी मुझे कुछ कुछ इसका पता है कि तुम्हारे विचार ऊँचे दरजेके हैं। मगर मैं फिर भी कहती हूँ कि तुम इस तरह निराश न हो जाओ। भगवतीको तुम अभी पहचान नहीं सके। उसके भी विचार खूब ऊँचे दरजेके हैं। भगवतीके समान सीधी और उदार स्वभावकी दूसरी लड़की ढूँढ़नेसे भी मिलना कठिन है। तुम इतना घबराओ नहीं। दो दिन सबर करो।"

मैंने कहा—"मँझली भौजी, तुम सबर करनेको कहती हो, अच्छा, मैं सबर करनेको राजी हूँ। लेकिन एक बात जाननेके लिए मेरा चित्त छटपटा रहा है। भगवतीके साथ मेरा सम्बन्ध जिन्दगी भरके लिए हो गया है। जिसके साथ जिन्दगी बितानी होगी, वह कैसा आदमी है,

यह जाननेकी इच्छा होना स्वाभाविक है या अस्वाभाविक ? फिर भगवती बिल्कुल बच्चा नहीं है । उसकी हमजोलीकी और भी तो लड़कियाँ हैं; लेकिन वे तो उसके जैसा व्यवहार नहीं करतीं । मैं तुमसे अपने मित्र भोलानाथका जिक्र कई बार कर चुका हूँ । ललिताकी बातें भी तुमने मुझसे सुनी हैं । ललिता जैसी बालिका है, उसका हृदय जैसा सरल है, उसके मनका भाव जैसा पवित्र है वैसा और कहीं मुझे नहीं देख पड़ता । मुझे तो वह देवकन्या ही जान पड़ती है । देखो न, अभी तक उसका ब्याह नहीं हुआ; लेकिन वह भोलानाथको चिट्ठी लिखनेमें नहीं लजाती । भोलानाथने बम्बईसे मुझको लिखा है कि ललिताने उसे चिट्ठी लिखी है और उसमें उसकी बीमारीके लिए अत्यन्त चिन्ता और घबराहट प्रकट की है । ललिता यह भी जानती है कि भोलानाथके साथ ही उसका ब्याह होगा । अच्छा ललिता क्यों नहीं लजाती ? ”

मँझली भौजीने जरा मुसकाकर कहा—“ बचुआ, इसका एक कारण है । ललिता लड़कपनसे भोलानाथको देख रही है और लड़कपनसे ही उन दोनोंमें भाई-बहिनका सा भाव है । (मँझली भौजीकी दिल्लगी कैसी तीव्र है !) मान लिया कि ललिता इस समय ब्याहकी बात जान गई है; लेकिन लड़कपनका वह भाव तो एकदम जा नहीं सकता । बल्कि इस समय वही भाव प्रेमके रूपमें बदल रहा है । भगवतीके साथ अगर तुम्हारा वैसा कुछ सम्बन्ध होता तो उसका भी तुम्हारे साथ वही बरताव होता। (मँझली भौजीसे पेश पाना बहुत ही कठिन है।) किन्तु वह जो कुछ हो, तुम कुछ चिन्ता न करो । मैं कहती हूँ, दो दिन सबर करो; फिर सब तुम्हारी समझमें आ जायगा । बचुआ, मै औरतकी जातको खूब पहचानती हूँ; भगवती ऐसी लड़कियाँ बहुत कम देखनेको मिलती है । ”

इस प्रकार कहते कहते वे एकाएक चुप हो गई। नीचे मोतीके रोनेकी आवाज सुनकर उन्होंने कहा—" मोती न जानें क्यों रो रहा है, जरा देख आऊँ। देखो, तुम बेकार अपना मन उदास न करो। भगवती ऐसी स्त्रीके मिलनेसे एक दिन तुम अपनेको बड़ा भाग्यशाली समझोगे; यह बात मैं आज कहे देती हूँ।"

मँझली भौजी मुझे अपने छोटे भाईके समान स्नेहकी दृष्टिसे देखती थीं। वे मेरे मनकी हालत भी खूब अच्छी तरह समझ सकती थीं। वे यह जानती थीं कि मैं जरा मुँहचुप्पा आदमी हूँ; इसीसे वे समय पर मेरे हृदयकी हालत समझकर चतुराईसे मेरे मनमें घिरी हुई चिन्ताकी घटाको उड़ा देनेकी भरसक कोशिश किया करती थीं। स्नेहमयी भौजीकी मीठी मीठी बातोंसे मेरे मनका सन्ताप बहुत कुछ कम हो जाता था। आज भी उनके साथ बातचीत करनेसे मेरे मनमें एक प्रकारकी शान्ति आगई। मुझे जान पड़ने लगा कि शायद मैं खीझ दिखाकर भगवतीके कोमल हृदयपर चोट पहुँचा रहा हूँ। शायद मैं अनुचित अभिमान और खीझ प्रकट करके अपने दोनोंके हृदयमें उगनेवाले पवित्र प्रेमके अंकुरको नष्ट कर रहा हूँ।

यह ध्यानमें आते ही मुझे अपने किये पर बड़ा ही पछतावा हुआ। मैंने सोचा कि मैं निश्चय ही बड़ा दुष्ट, हृदयहीन और सर्वथा संसारधर्म्म पालनके अयोग्य हूँ। सहसा आँखोंमें आँसू भर आये। मैं गद्गद कण्ठसे भगवानको पुकारने लगा। मैंने कहा—" भगवन्, मैं क्या कर रहा हूँ! मुझे कर्त्तव्यका पालन करनेके लिए दृढ़ संकल्प दीजिए। मेरे मान और अभिमानको चूर्ण कर दीजिए। अपनेको भूल कर दूसरेको सुखी बनानेकी बुद्धि मुझे दीजिए। रक्षा करो! देव, मेरी रक्षा करो!"

पचीसवाँ परिच्छेद।



मैं अपने कमरेमें बैठा हुआ उदासभावसे इसी तरह पछता रहा था, इतनेमें भगवती धीरे धीरे पैर रखती हुई एक गिलासमें पानी लिये मेरे पास आई। मैंने उसके मुखकी ओर देखा। वह विषादसे भरा हुआ था और इसीसे उसमें एक अपूर्व पवित्र भाव झलक रहा था। किन्तु उसकी दोनों आँखें हृदयकी गहरी ग्लानिका पता दे रही थीं। भगवतीको देखकर मैंने कहा—" किसके लिए जल लाई हो ? "

भगवतीने कहा—" तुम्हारे लिए। मुझसे मँझली जीजीने यहाँ जल लेकर आनेके लिए कहा था। "

बात सुनते ही मेरी आँखके टपसे एक बूँद टपक पड़ा। करुणामयी मँझली भौजीके इस स्नेह-ऋणको मैं किस तरह चुका सकता हूँ !

मेरी आँखमें एकाएक आँसू देखकर भगवती व्याकुल हो उठी। वह कुछ देरतक चुपचाप खड़ी रही। उसकी आँखोंमें आँसू भरे हुए थे। उसने कहा—" देखो, मैंने अनेक अपराध किये हैं; तुम मुझे माफ करो। मैं बड़ी अभागिन हूँ, मैंने तुमको बहुत कष्ट पहुँचाया है; मेरे जीवनको धिक्कार है ! "

आगे उससे और कुछ नहीं कहा गया। बाएँ हाथसे, धोतीके आँचलसे, वह आँसू पोंछने लगी।

मैंने कहा—" अगर तुम यों रोओगी, तो सचमुच ही मुझे बड़ा कष्ट होगा। तुमने मेरा कोई अपराध नहीं किया। सच पूछो तो मैं ही तुम्हारा अपराधी हूँ। मैं तुम्हारे लायक नहीं हूँ। मैं बड़ा ही नीच हूँ। तुम्हारी ऐसी स्त्री पाकर भी अगर मैं सुखी नहीं हो सका तो वह तुम्हारा नहीं, मेरा ही दोष है। "

मेरी बातका कुछ भी उत्तर न देकर वह उसी तरह आँखोंमें आँचल लगाये रोती रही।

इस दृश्यको मैं न देख सका। मैंने कहा—"तुम करती क्या हो? तुम जैसी पागल हो, मैं भी वैसा ही पागल हूँ। कही कुछ भी नहीं, और हम दोनों रो रहे हैं। क्यों? किसलिए रोती हो? क्या हुआ है?"

मेरा स्वर सहसा दिल्लगीका ऐसा हो गया।

मेरी बात सुनकर भगवतीने मुँहपरसे जरा आँचल हटाया और मेरी तरफ देखा। मैं हँस पड़ा। भगवतीको भी हँसी आगई। लेकिन हँसी छिपानेके लिए उसने फिर आँचलसे मुँह ढक लिया। मैंने कहा—"अब यह क्या! अब क्या कोई दूसरा स्वाँग होगा?" इतना कहकर मैंने उसका हाथ पकड़ लिया।

भगवतीने कोपका भाव दिखाकर कहा—"जाओ, तुम केवल हँसी दिल्लगी करना ही पसन्द करते हो। तुम्हारी खीझें भी कोरी दिल्लगी ही होती हैं। कई दिनसे तुमने मुझसे एक भी बात नहीं की, दिनमें जंगलमें रहते हो; घरमें घड़ी भर नहीं ठहरते। अभी रो रहे थे। मेरी तो कुछ समझमें ही नहीं आता।"

मैंने कहा—"तुम्हारी शिकायत कुछ कुछ सच भी है। बीचबीचमें मेरा मन बहुत ही खराब हो जाता है। उस समय मुझे जंगलके सिवा और कहीं अच्छा नहीं लगता। तब मैं अकेले रहना ही पसन्द करता हूँ; किसीसे बातचीत नहीं करता। लेकिन तुम्हारे रहनेपर भी मेरे मनका खराब होना मुझे भी एक आश्चर्यकी बात मालूम होती है।"

भगवतीका मुँह फिर सूख गया। उसने कहा—"आश्चर्यकी बात क्या है; सब मेरा ही अभाग है।"

मैंने कहा—"देखो, सभी बातोंको अभागपर डाल देना ठीक नहीं। अगर तुम चाहो तो हम दोनों ही खूब सुखी हो सकते है।"

भगवतीने कहा—"सो क्या मैं नहीं चाहती कि तुमको सुखी रक्खूँ? तुम मुझे यह बतला दो कि क्या करनेसे तुमको सुख होगा, तो मैं भरसक वही करनेकी कोशिश करूँगी।"

मैंने कहा—"बेशक, तुम्हारा यों कहना तुम्हारे योग्य ही है। तुम अगर, मुझसे जी-खोलकर बातचीत करो तो मैं खूब सुखी होऊँगा। तुम अच्छी तरह मेरी किसी भी बातका उत्तर नहीं देना चाहती, बस यही मुझे सारा कष्ट है। यह तुम जानती हो कि मैंने इतना पढ़ा-लिखा है। जीवनके किसी उद्देश्यको सिद्ध करके सुखी बननेके लिए ही मै जंगलमें शान्ति-कुटीर बनाकर बसा हूँ। मैं तुमसे यह सब खुलासा करके कहना चाहता हूँ। तुमको अपने मनकी बातें सुनाकर तुम्हारे मनकी बातें मैं जानना चाहता हूँ। उसके बाद अगर देखूँगा कि तुम मेरे जीवनके उद्देश्यको समझकर मेरे साथ गृहस्थके–संसारके–धर्मका पालन करनेके लिए तैयार हो, तो फिर मेरे समान सुखी संसारमें और कौन दूसरा होगा?"

भगवतीने कहा—"तुम जिस लिए यहाँ आकर बसे हो सो मैं पिताजीसे सुन चुकी हूँ। ब्याहके पहले ही एक दिन पिताजीने अम्मासे इस बारेमें बातचीत की थी। तुमने इतना पढ़ा-लिखा है; पर नौकरी न करके थोड़ी ही आमदनीमें सन्तुष्ट रहकर, भरसक अपना और पराया उपकार करनेके लिए तुम यहाँ आकर बसे हो—यह कहकर पिताजीने तुम्हारी बड़ाई की थी। ब्याहके बाद भी पिताजीने मुझसे कहा था कि 'देखो बेटी, तुम उनको किसी तरह कष्ट न देना।' पिताजीका उपदेश मुझे भूला नहीं है। तुम जो कहोगे वही मैं करूँगी। तुमको अगर मैं सुखी न कर सकी तो मेरे जीनेसे ही क्या फल है?"

भगवतीकी बातें सुनते सुनते तो मेरे हृदयमें आनन्दकी बिजली भर गई। आँखोंमें भी आँसू झलक आये। मैंने किसी तरह अपनेको सँभालकर कहा—" मै व्यर्थ ही तुमपर रूठकर भगवानके निकट अपराधी हुआ हूँ। सो जो कुछ हो तुम मेरे जीवनके उद्देश्यको समझ गई हो, यही मेरे लिए बड़े सन्तोष और आनन्दकी बात है। मैं यही चाहता हूँ। इसके साथ ही मैं एक और बात कहूँगा। वह यही कि मैंने बहुत लिखा पढ़ा है सही, लेकिन मैं हूँ बड़ा ही गरीब। मेरे बराबर पढ़ने-लिखनेवाले लोग लम्बी तनख्वाहकी नौकरी करते हैं; बड़े आदमियोंकी चालसे चलते हैं। उनकी औरतें और बाल-बच्चे अनेक बहुमूल्य गहने पहनते हैं। उनके बहुतसे नौकर चाकर हैं। मतलब यह कि किसी बातकी कमी नहीं है। किन्तु मेरी ऐसी अवस्था है कि मैं तुम्हारी चाहके गहने और कपड़े देकर तुमको शायद सुखी न कर सकूँगा—"

मेरी बात पूरी भी नहीं होने पाई, भगवती बीचमें बोल उठी—" तुम ये कैसी बातें कर रहे हो! मैंने गहने कपड़ेके लिए क्या किसी दिन कुछ तुमसे कहा है? मेरे पिताजीको भी तो लोग भारी पण्डित कहते हैं। मगर मेरे पिताजी क्या अमीर हैं? मेरी माताजीके हाथमें तुमने सोहागकी चूड़ियोंके सिवा और कोई गहना कभी देखा है? मैं भी कोई गहना नहीं चाहती। मैं अपने हाथोंमें चार चूड़ियोंको ही सबसे बढ़िया गहना समझती हूँ। गहना पहननेमें मुझे तो लज्जा लगती है। मँझली जीजी ही मुझे जबर्दस्ती गहने पहना दिया करती हैं। मैं गहने पहनना नहीं चाहती। मैं चूड़ियाँ ही पहनना पसन्द करती हूँ।"

भगवतीकी बातें सुनकर मैं कितना विस्मित और आनन्दित हुआ, सो मैं शब्दोंद्वारा प्रकट नहीं कर सकता। मैंने देखा, केवल भगवतीका रूप ही भगवतीके समान नहीं उसका हृदय भी वैसा ही है।

थोड़ी देर तक दोनों चुप रहे। बादको और बात चलानेके इरादेसे मैंने कहा—" तुमने उस दिन कहा था कि 'मैंने अपने पिताजीसे रघुवंशके १० से १५ सर्ग तक पढ़े हैं और वाल्मीकि-रामायण भी थोड़ी थोड़ी पढ़ी है। फिर तुम जबसे हमारे घर आई हो तबसे पढ़ती लिखती क्यों नहीं ? "

भगवतीने कहा—" पिताजीने तो तुम्हारे पास पढ़नेके लिए मुझसे कहा था। मगर तुमसे पढ़ूँ क्या, तुम तो घरमें घड़ीभर भी नहीं ठहरते। अच्छा, दोपहरको तुम जंगलमें जाकर क्या पेड़ोंके नीचे पड़े पड़े सोया करते हो ? "

मैंने हँसकर कहा—" क्यों ? वह, उस दिनकी, बात याद आगई क्या ? "

भगवतीने कहा—" हाँ, उस दिन तुम्हारी हालत देखकर हम लोगोंको बड़ा डर लगा था। "

मैंने कहा—" अच्छा, उस समय क्या तुमको जरा भी इस बातका खयाल आया था कि मेरे ही साथ तुम्हारा ब्याह होगा ? "

भगवतीने मुसकाकर सिर नीचा करके गर्दन हिलाई।

मैंने कहा—" लेकिन मैंने जबसे तुम्हें देखा था तबसे दो एक बार ऐसा खयाल किया था। "

भगवती पैरोंपर नजर गड़ाये जहाँकी तहाँ खड़ी रही और लाजकी लालीने उसके मुखमण्डलको रंग दिया। भगवतीकी यह लज्जा-नम्र मूर्ति मुझे बहुत ही सुन्दर देख पड़ी।

मैं एकटक कुछ देरतक उस पवित्र सौन्दर्यको देखता रहा। सहसा हृदयमें भावकी एक प्रबल उमंग आई। घड़ी भरमें कितनी ही मधुरता, कितनी पवित्रता, कितनी अतृप्त आकांक्षा और कितनी ही सुन्दरताकी

लहरें हृदय-सागरमें उठकर उसीमें लीन हो गईं। मैंने सोचा यह क्या विचित्र मामला है! भगवतीके निकट इतनी सुन्दरता और सुखके होनेका मुझे जरा भी खयाल नहीं था। मैंने अपने मनमें सोचा कि आज हमारा हृदयसे हृदय मिल गया; आज आत्मासे आत्माका मिलन हुआ; आज ही हमारा सच्चा व्याह हुआ।

छव्वीसवाँ परिच्छेद।



दो पहरके समयका मेरा बनवास छूट गया। श्रीमतीजीने ही मुझे घरका पालतू बना लिया। भोजनके बाद अकसर भगवती रामायणकी पोथी हाथमें लिये मेरे कमरेमें आ जाती थी। भगवतीने वाल्मीकीय अयोध्याकाण्ड समाप्त कर दिया था; अब वह मुझसे अरण्यकाण्ड पढ़ रही थी। सूर्य जैसे आकाशमें प्रवेश करते हैं वैसे ही भगवान् रामचन्द्रजीने भी देवी जानकी और छोटे भाई लक्ष्मणके साथ पशुपक्षिपूर्ण और वेदकी ध्वनिसे गूँजते हुए भयानक दण्डकारण्यमें प्रवेश किया। इस श्लोकसे, जिस दिनसे, हमने पाठका आरम्भ किया उसी दिनसे हम दोनोंके हृदयोंमें मानो सरस्वतीके हाथसे बजती हुई वीणाकी अमृतमय झनकार होने लगी। पाठ छोड़कर कहीं जानेको जी नहीं चाहता था। किसी किसी दिन मँझली भौजी भी आकर रामायणकी अमृतभरी कथा सुनती थीं। लेकिन वे बुद्धिमती स्त्रीकी तरह हम लोगोंको अकसर एकान्तमें 'अकेले' ही रहने देती थीं। एक दिन पाठ समाप्त होनेपर सीतादेवीकी वनवासकी अलौकिक इच्छाका उल्लेख करके मैंने भगवतीसे कहा—"देखो, उस दिन जंगलमें तुमको बहुत ही डर मालूम हुआ था। अब सीतादेवीकी कथा तुमने पढ़ी? देखा तुमने कि स्वामीके साथ

वनमें घूमनेमें उन्हें एक दिन भी डर नहीं लगा,–कितनी ही बार राक्षसोंको देखकर, एक बार उनके हाथमें पड़कर भी वन घूमनेकी इच्छा उनसे नहीं छूटी। पञ्चवटीमें वे बड़े सुखसे दिन बिता रहीं थीं। इस देशकी क्या किसी भी देशकी स्त्री उनकी बराबरी नहीं कर सकती।"

भगवतीने कहा—"यह तो सच है। लेकिन तुम तो उस दिनकी बात कहते हो, उस दिन तो मुझे जरा भी डर नहीं लगा था। रधिया और मँझली जीजी ही भयके मारे सिट पिटा गई थीं और बीच बीचमें चौंक उठती थीं। मैं तो फूल तोड़ने रोज ही उधर जाया करती थी और इस बातको तुम भी जानते हो। अगर मुझे डर लगता तो मैं फूल तोड़ने क्यों जाती ? और तुम सीताकी बात कह रहे हो। सो तो मैं बचपनमें जब तुलसीकृत रामायण पढ़ती थी तब सीताकी कथा पढ़कर—"

भगवती आगे कुछ नहीं कह सकी। न जानें कहाँसे लज्जाने आकर उसका मुँह बन्द कर दिया।

मैंने हँसकर कहा—"रुक क्यों गई ? सीताकी कथा पढ़कर तुम्हारे मनमें क्या आता था ? बतलाओ न!"

लज्जाके मारे भगवती और कुछ नहीं कह सकी। बोली, "जाओ, मैं नहीं जानती।"

मैंने हँसते हँसते कहा—"फिर वही 'नहीं जानती'!"

इसी समय अन्नपूर्णा वहाँपर आ गई। अन्नपूर्णाको देखकर भगवतीने कहा—"अन्नपूर्णासे पूछो।"

मैंने कहा—"यह खूब कहा! तुलसीकृत रामायण पढ़नेसे तुम्हारे मनमें क्या भाव उत्पन्न होता था, सो अन्नपूर्णा बतला देगी? अन्नपूर्णा शायद 'पर-चित्त-विज्ञान-विद्या' जानती है। क्यों अन्नपूर्णा, रामायणमें सीताकी कथा पढ़कर तुम्हारी जीजीके मनमें क्या होता था, सो क्या तुम जानती हो ?"

अन्नपूर्णाने विस्मित होकर कहा—"सो म कैसे जान सकती हूँ !" फिर कुछ देर सोचकर वह बोल उठी—"क्यों जीजी, तुम जो अम्मासे कहती थीं कि मैं भी सीता ऐसी होऊँगी, वही बात ? ओ जीजाजी, जीजी कहती थी कि 'मैं भी जो सीता होती तो राज्य छोड़कर स्वामीके साथ वनको जाती।' जीजी इन चौपाइयोंको अकसर पढ़ा करती है। जीजीने मुझे भी ये चौपाइयाँ कण्ठ करा दी हैं। तुम सुनोगे ?"

भगवती बड़ी आफतमें पड़ गई। उसके कपोल लज्जाके मारे लाल हो आये। उसने टेढ़ी नजरसे अन्नपूर्णाकी ओर देखकर कहा—"दूर हो लुची, तू यहाँ मरनेके लिए क्यों आई है ?"

जीजीकी डाँट सुनकर अन्नपूर्णाकी बदमाशी और भी बढ़ गई। जोरसे खिलखिलाकर हँसती हुई मुझसे बोली—"जीजा, जीजीकी चौपाइयोंको तुम मन लगाकर सुनो।" यों कहकर आनन्दमयी अन्नपूर्णा कोमल मधुर स्वरसे कहने लगी:—

राजकुमारि सिखावन सुनहू। आन भाँति जिय जनि कछु गुनहू॥
आपन मोर नीक जो चहहू। बचन हमार मानि घर रहहू॥
आयसु मोर सासु-सेवकाई। सब विधि भामिनि भवन भलाई॥
यहिते अधिक धर्म नहिं दूजा। सादर सासु-ससुर-पदपूजा॥
जबजब मातु करहि सुधि मोरी। होइहि प्रेमविकल मति भोरी॥
तबतब तुम कहि कथा पुरानी। सुन्दरि समझायहु मृदुबानी॥
कहौं सुभाय सपथ सत मोही। सुमुखि मातुहित राखहुँ तोही॥

गुरुश्रुतिसम्मत धर्मफल, पाइय बिनहिं कलेस।
हठबस सब संकट सहे, गालव नहुष नरेस।

मैं पुनि करि प्रमान पितुबानी। वेगि फिरब सुनु सुमुखि सयानी॥
दिवस जात नहिं लागहि बारा। सुन्दरि सिखवन सुनहु हमारा॥
जो हठ करहु प्रेमबस बामा। तौ तुम दुख पावहु परिनामा॥
कानन कठिन भयंकर भारी। घोर घाम हिम वारि बयारी॥
कुस कण्टक मग कंकर नाना। चलब पयादे बिनु पदत्राना॥

चरनकमल मृदु मंजु तुम्हारे। मारग अगम भूमिधर भारे॥
कंदर खोह नदी नद नारे। अगम अगाध न जाहिं निहारे॥
भालु बाघ वृक केहरि नागा। करहिं नाद सुनि धीरज भागा॥
भूमि सयन वल्कल बसन, असन कंद फल मूल।
ते कि सदा सब दिन मिलहिं, समय समय अनुकूल॥
नर अहार रजनीचर करहीं। कपटवेष विधि कोटिक धरहीं॥
लागइ अति पहारकर पानी। विपिन-विपति नहिं जाइ बखानी॥
ब्याल कराल विहग बन घोरा। निसिचर-निकर नारिनरचोरा॥
डरपहिं धीर गहन सुधि आये। मृगलोचनि तुम भीरु सुभाये॥
हंसगवनि तुम नहिं बनजोगू। सुनि अपजस मोहिं देइहहिं लोगू॥
मानस-सलिल-सुधाप्रतिपाली। जियइ कि लवनपयोधि मराली॥
नव-रसालवन-विहरनसीला। सोह कि कोकिल बिपिन करीला॥
रहहु भवन अस हृदय विचारी। चंद्रवदनि दुख कानन भारी॥
सहज सुहृद गुरु स्वामि सिख, जो न करहि हित मानि॥
सो पछताइ अघाइ उर, अवसि होइ हितहानि॥
सुनि मृदुवचन मनोहर पियके। लोचन-नलिन भरे जल सियके॥
सीतल सिख दाहक भइ कैसे। चकइहि सरद-चाँदनी जैसे॥
उतरु न आव बिकल वैदेही। तजन चहत सुचि स्वामि सनेही॥
बरबस रोकि बिलोचन-बारी। धरि धीरज उर अवनिकुमारी॥
लागि सासु पग कह करजोरी। छमब देवि बड़ि अबिनय मोरी॥
दीन्ह प्रानपति मोहिं सिख सोई। जिहि बिधि मोर परम हित होई॥
मैं पुनि समुझि दीख मनमाहीं। पियवियोगसम दुख जग नाहीं॥
प्राननाथ करुनायतन, सुन्दर सुखद सुजान।
तुमबिन रघुकुलकुमुदविधु, सुरपुर नरकसमान॥
माता पिता भगिनी प्रिय भाई। प्रिय परिवार सुहृद समुदाई॥
सासु ससुर गुरु सुजन सहाई। सुत सुन्दर सुसील सुखदाई॥
जहँलगि नाथ नेह अरु नाते। पिय बिन तियहिं तरनिते ताते॥
तन धन धाम धरनि पुर राजू। पतिविहीन सब सोकसमाजू॥
भोग रोगसम भूषन भारू। जमजातनासरिस संसारू॥

प्राननाथ तुम बिन जगमाहीं। मो कहँ सुखद कतहुँ कोउ नाहीं॥
जिय बिन देह नदी बिन बारी। तैसिय नाथ पुरुष बिन नारी॥
नाथ सकल सुख साथ तुम्हारे। सरद बिमल बिधुबदन निहारे॥

खग मृग परिजन नगर बन, बल्कल बिमल दुकूल।
नाथसाथ सुरसदन सम, पर्नसाल सुखमूल॥

बनदेवी बनदेव उदारा। करिहैं सासु ससुर सम सारा॥
कुसकिसलयसाथरी सुहाई। प्रभुसँग मंजुमनोज तुराई॥
कन्द मूल फल अमिय अहारू। अवधसौधसतसरिस पहारू॥
छिन छिन प्रभुपदकमल बिलोकी। रहिहौं मुदित दिवस जिमि कोकी॥
बनदुख नाथ कहे बहुतेरे। भय बिषाद परिताप घनेरे॥
प्रभुबियोगलवलेश समाना। होंहि न सब मिलि कृपानिधाना॥
अस जिय जानि सुजानसिरोमनि। लेइय संग मोहिं छाँड़िय जनि॥
बिनती बहुत करौं का स्वामी। करुनामय उरअन्तरजामी॥

राखिय अवध जो अवधिलगि, रहत जानिये प्रान।
दीनबन्धु सुन्दर सुखद, सीलसनेहनिधान॥

मोहिं मगचलत न होइहि हारी। छिन छिन चरनसरोज निहारी॥
सबहिं भाँति पियसेवा करिहौं। मारगजनित सकल श्रम हरिहौं॥
पाँय पखारि बैठि तरुछाहीं। करिहौं बायु मुदित मनमाहीं॥
स्रमकनसहित स्याम तन देखे। कहँ दुख समउ प्रानपति पेखे॥
सम महि तृन तरुपल्लव डासी। पाँय पलोटिहि सब निसि दासी॥
बार बार मृदु मूरति जोही। लागहि ताप बयारि न मोही॥
को प्रभु सँग मोहि चितवनहारा। सिंहबधुहि जिमि ससक सियारा॥
मैं सुकुमारि नाथ बनजोगू। तुमहिं उचित तप मोकहँ भोगू॥

ऐसेहु बचन कठोर सुनि, जो न हृदय बिलगान।
तौ प्रभु बिषमबियोगदुख, सहिहैं पामर प्रान॥

मैंने कहा—"वाह अन्नपूर्णा, वाह! यही तुम्हारी जीजीकी चौपाइयाँ हैं? तुम्हारी जीजी श्लोक भी जानती है क्या? तुमने कोई श्लोक भी याद किया है?"

अन्नपूर्णा हँसते हँसते कहने लगी—"याद क्यों नहीं किये ? वे संस्कृत श्लोक हैं। उन्हें भी सुनोगे ?"

मैंने कहा—"सुँनूगा क्यों नहीं ? सुननेहीके लिए तो तुमसे पूछ रहा हूँ।"

अन्नपूर्णाने कहा—"अच्छा सुनो।"

यों कहकर वह नीचे लिखे श्लोकोंको अत्यन्त मधुर स्वरसे कहने लगी।

"कल्याणबुद्धेरथवा तवायं न कामचारो मयि शङ्कनीयः।
ममैव जन्मान्तरपातकानां विपाकविस्फूर्ज्जथुरप्रसह्यः॥
उपस्थितां पूर्वमपास्य लक्ष्मीं वनं मया सिद्धिमसि प्रसन्नः।
तदास्पदं प्राप्य तयाऽतिरोषात् सोढाऽस्मि न त्वद्भवने वसन्ती॥
निशाचरोपप्लुतभर्तृकाणां तपस्विनीनां भवतः प्रसादात्।
भूत्वा शरण्या शरणार्थमन्यं कथं प्रपत्स्ये त्वयि दीप्यमाने॥
किंवा तवात्यन्तवियोगमोघे कुर्यामुपेक्षां हतजीवितेऽस्मिन्।
स्याद्रक्षणीयं यदि मे न तेजः त्वदीयमन्तर्गतमन्तरायः॥
साऽहं तपः सूर्यनिविष्टदृष्टिरूर्ध्वं प्रसूतेश्चरितुं यतिष्ये॥
भूयो यथा मे जननान्तरेऽपि त्वमेव भर्त्ता न च विप्रयोगः॥*

---

* अर्थात्, शुभबुद्धिवाले आप मुझपर व्यभिचारकी शङ्का कभी नहीं कर सकते। मेरे ही पूर्वजन्मके पातकोंका यह असह्य फल उदय हुआ है। पहले, वनवासके समय, स्वयं उपस्थित हुई राज्यलक्ष्मीको छोड़कर आप मेरे साथ वनको गये। वह राज्यलक्ष्मी आज आपको पाकर मेरा आपके पास रहना कैसे सह सकती है ? आपकी कृपासे मेरी शरणमें ऋषिपत्नियाँ आती थीं, क्योंकि उनके पतियोंको राक्षस सताते थे। वही मैं आज आपके विद्यमान रहते दूसरोंकी शरणमें कैसे जाऊँगी ? अथवा आपके वियोगसे निष्फल होते हुए इस जीवनको मैं छोड़ ही क्यों न दूँ ? किन्तु बाधा यही है कि आपका तेज (गर्भ) मेरी कोखमें है। मैं पुत्र उत्पन्न होनेके उपरान्त सूर्यमण्डलमें दृष्टि लगाकर तप करनेकी चेष्टा करूँगी, जिससे दूसरे जन्ममें भी आप ही मेरे पति हों; वियोग न हो। (रघुवंश, सर्ग १४)

अन्नपूर्णाका संस्कृत उच्चारण बहुत ही सुन्दर, बहुत ही मधुर और बहुत ही विचित्र था। तान-लयके साथ अन्नपूर्णाके मधुर कण्ठसे निकले हुए इन श्लोकोंने मेरे कानोंमें अमृतकी वर्षा कर दी। मैं विस्मय, आनन्द और उल्लासके मारे कुछ देर तक कुछ भी न बोल सका। इसके बाद मैंने अन्नपूर्णासे कहा—"अन्नपूर्णा, तूने ऐसे सुन्दर श्लोक सुनाकर मुझे जैसा आनन्द दिया है उसका इनाम मैं तुझे क्या दूँ? आ, तुझे गोदमें लेकर प्यार करूँ।" यों कहकर मैंने दोनों हाथ फैला दिये।

मेरे विचित्र ढंग और अद्भुत प्रस्तावको सुनकर अन्नपूर्णा हँसते हँसते नीचे भाग गई। अन्नपूर्णाकी यह करतूत देखकर पहले तो मैं कुछ निश्चय नहीं कर सका; किन्तु तत्काल ही मेरी नींद खुल गई। मैं अपने प्रस्तावपर बहुत ही लज्जित हुआ। मैंने देखा, मेरा रँग-ढँग और प्रस्ताव केवल अद्भुत ही नहीं, बल्कि वह असंगत और अन्नपूर्णाके लिए भीतिजनक भी है।

भगवती मेरी अवस्था देखकर हँसने लगी और बोली—"तुम पागल तो नहीं हो गये हो?"

मैंने कुछ गंभीर होकर कहा—"करीब करीब पागल ही हो रहा हूँ। ऐसी सुन्दर लड़कीके मुँहसे ऐसे सुन्दर श्लोक सुनकर ऐसा कोई न होगा जो पागल न हो उठे। फिर तुम तो अन्नपूर्णाकी बड़ी बहिन हो! ये श्लोक तुमने ही अन्नपूर्णाको कण्ठ कराये हैं? बापरे, तुम्हारे मुँहसे संस्कृत श्लोक सुनकर तो मैं सचमुच ही सिड़ी हो जाऊँगा! भाई! औरतोंके साथ तो संस्कृत वंस्कृत पढ़ना कुछ न होगा। हिन्दी पढ़ना चाहो तो मैं राजी हूँ।

मेरी बातें सुनकर भगवती लज्जासे सिर झुकाकर हँसने लगी।

मैंने कहा—"अब तुम मुझे हँसकर वहला नहीं सकतीं। तुम्हारे पेटमें इतने गुन भरे हैं ? तुमने तो एक दिन भी मुझे नहीं वतलाया ? यही तो मैं जानना चाहता था। लेकिन मैं यह भी जान गया था कि तुम मुझसे, आपसे, कुछ भी नहीं कहोगी। अच्छा, अब मैं अन्नपूर्णासे गहरी दोस्ती करूँगा; नहीं तो मुझे कुछ भी पता नहीं लगेगा।"

ठीक इसी समय मँझली भौजी ऊपर आगईं। उन्होंने आते ही कहा—"बचुआ, क्या हो रहा है ? अन्नपूर्णाको पकड़ने क्यों दौड़े थे ?"

मैंने कहा—"कहाँ ?"

मँ० भौजीने आश्चर्यके साथ कहा—"कहाँ ? अन्नपूर्णा अभी भागी जा रही थी। यह देखकर मैंने कहा—'कहाँ भागी जा रही है ?' उसने हँसकर कहा—'जीजाजी मुझे पकड़ने आरहे हैं।' इतना कहकर एक ही साँसमें वह दरवाजेके उस पार निकल गई। अच्छा बचुआ, ये तुम्हारे कैसे ढँग हैं।"

मैंने कुछ हँसकर कहा—"ढँग क्या हैं ? अन्नपूर्णाके मुँहसे संस्कृत श्लोक सुनकर मैं बहुत ही खुश हुआ था।"

मँ० भौजीने कहा—"आ; यह वात थी ! मैं तो अन्नपूर्णाकी बातोंसे समझी थी कि हमारे घरमें भी सुन्द-उपसुन्दकी ऐसी लड़ाई होगी। सिद्धिनाथ तो अन्नपूर्णाके लिए पागल ही हो रहा है; उसपर अगर तुम भी उसे पकड़नेके लिए पीछे पीछे दोड़ोगे तो फिर बड़ी मुश्किल होगी।"

मँझली भौजीकी बातोंसे लज्जित होकर मैंने कहा—"भौजी, तुमसे बातोंमें पेश पाना मेरी शक्तिके बाहर है।"

मँझली भौजीने हँसकर कहा—" अच्छा, इस बातको जाने दो। अब यह बतलाओ कि तुम दोनोंकी सिद्धिनाथ और अन्नपूर्णाके व्याहके बारेमें क्या राय है।"

मैंने कहा—" व्याहके लिए इतनी जल्दी काहेकी है भौजी ? अन्नपूर्णा अभी नौ बरसकी है। और कुछ दिन जाने दो।"

मँ० भौजीने कहा—" और भी दो चार बरस बीतनेमें कोई दोष नहीं है, यह बात मैं मानती हूँ। लेकिन बातचीत पक्की कर रखनेमें क्या हानि है ? कल मैं भगवतीके साथ शान्तिपुर गई थी। बुआ कहती थीं—' भगवतीके लिए लड़का खोजनेमें बड़ा कष्ट उठाना पड़ा। पर भगवानकी कृपासे भगवतीके लायक ही लड़का मिल गया। बस, अब अन्नपूर्णाके लिए एक अच्छा लड़का मिल जाय तो हम निश्चिन्त हो जायँ।' बुआने इतना कहकर सिद्धिनाथकी बात उठाई। मैंने कहा—' बुआ, लड़का खोजनेकी जरूरत ही क्या है ? अन्नपूर्णाने बहुत दिन पहले ही सिद्धिनाथको पसन्द कर रक्खा है; इसके लिए अब तुम चिन्ता न करो। मेरी बातें सुनकर बुआ हँसने लगीं। वर कन्याने तो एक दूसरेको पसन्द कर लिया है। अब तुम लोगोंको इस सम्बन्धकी बात पक्की कर लेनी चाहिए।"

मैंने कहा—" अच्छी बात है भौजी। पिताजीको घर आने दो। उनके आनेपर मैं इस बारेमें उनसे बातचीत करूँगा।"

भौजीने कहा—" अच्छी बात है। मैं भी अम्माजीसे कहूँगी।"

इतना कहते कहते सहसा उन्होंने न-जाने क्या सोचा। वे मुसकाराकर मुझसे बोलीं—" बचुआ, आजकल तुम जंगलमें बिल्कुल नहीं जाते ! तुम तो जंगलमें रहना पसन्द करते थे न ? छी छी, दिन रात

घरमें बैठे रहोगे तो लोग तुम्हें मेहरा न कहेंगे ? बापरे, मुझे नहीं माल्म था कि भगवतीके पेटमें इतने गुन भरे पड़े हैं । भगवती, तूने ऐसा कौनसा मन्त्र सीख लिया जो इतने बड़े बनमानुसको अपने वशमें कर लिया ? जो कुछ हो, इसमें कोई सन्देह नहीं कि तूने यह बड़ी बहादुरीका काम किया ! "

मैंने हँसकर कहा—" भौजी तुम्हारी बातोंको समझना मेरी शक्तिके बाहर है । लेकिन मैं यह जरूर कहूँगा कि बहादुरी तो तुम्हारी ही है ! भगवतीकी बहादुरी इसमें क्या है ? "

मँझली भौजीने हँसकर कहा—" अब चाहे जो कहो ! "

सत्ताईसवाँ परिच्छेद ।



इसी तरह सुख और आनन्दसे शान्तिकुटीरमें मेरे दिन बीतने लगे । पिताजी जिस समय घर आनेवाले थे उस समय नहीं आये । किसी कामके आपड़नेसे दो महीने और भी घर आना न होगा, इस मतलबकी एक चिट्ठी पिताजीके पाससे आई । सिद्धिनाथ बी० ए० पास हो गया । उसने एम० ए० में पढ़नेके लिए जानेका इरादा किया । लेकिन मेरे पास पढ़नेका अधिक सुभीता होनेके कारण, मेरे ही कहनेसे, वह कुछ दिन और शान्तिकुटीरमें रहनेको राजी हो गया ।

भोलानाथकी चिट्ठी मुझे अकसर मिलती थी । लेकिन उसके पत्र पढ़कर मैं दिनपर दिन अधिक शंकित और खिन्न होने लगा । उसकी बीमारी घटनेके बदले दिनदिन बढ़ती ही जाती थी । बम्बईमें रहनेसे भी उसे कुछ फायदा नहीं हुआ । शरीर रोगी होनेके कारण उसका मन

भी चिन्तासे चूर हो रहा था। खासकर विदेशमें, जहाँ अपना कोई नहीं, उसके कष्टकी हद नहीं थी। उसकी प्रबल इच्छा थी कि वह किसी ऐसे स्थानमें जाकर रहे जहाँ अपने इष्टमित्र या सगे आदमी हों। लेकिन ऐसे सब स्थानोंकी आब हवा उसके अनुकूल न थी। स्वदेशको लौटनेके लिए उसे अत्यन्त आकुल और उद्विग्न देखकर मैंने पत्र लिखा कि—"यदि तुम्हारी देशमें लौट आनेकी ही इच्छा हो तो मेरी समझमें हमारे ही यहाँ तुम्हारा रहना ठीक होगा। यहाँकी आब-हवा बहुत ही अच्छी है। फिर यह तुम्हारा ही घर है और यह भी तुम जानते हो कि हम लोग तुमको सुखमें रखनेकी पूरी चेष्टा करेंगे। माताजीकी भी यही इच्छा है कि तुम यहीं आ-जाओ। वे तुमको हमसे कम नहीं समझतीं। तुम्हारी बीमारीकी खबरसे वे बहुत ही दुःखित हैं और अकसर तुम्हारा हाल पूछा करती हैं। इत्यादि।"

यह पत्र मैंने लिखा, लेकिन बहुत अर्सेतक कुछ जवाब नहीं मिला। अन्तको एक दिन अचानक मुझे भोलानाथका तार मिला कि "तुम्हारे ही यहाँ आना ठीक है। परसों शामको मैं स्टेशनपर पहुँचूँगा।" माताजी यह खबर पाकर बहुत ही खुश हुईं। सिद्धिनाथने तो भोला-नाथसे पढ़ा ही था, उसके तो खुश होनेकी बात ही थी। भगवती और मँझली भौजी भी बहुत खुश हुईं।

ठीक समयपर भोलानाथ आ पहुँचे। उस समय तीसरा पहर था। पश्चिम ओरके सालूके पेड़ोंकी आड़में सूर्यदेव छिप रहे थे। वर्षाका आरंभ होने पर भी आकाशमें बादल नहीं थे। ठंडी मन्द मन्द हवा चल रही थी। मेरे घरके सामनेका मैदान हरी हरी घाससे भरा था; उसमें कीचड़का कहीं नाम न था। भोलानाथकी पालकी धीरे धीरे आकर घरके सामने पहुँच गई। लेकिन पालकीका दरवाजा बंद था।

दरवाजा खोलकर भोलानाथ बाहर नहीं निकला । मैंने घबड़ाकर खुद जाकर द्वार खोला । खोलकर देखा, भोलानाथ सो रहा है । उसका शरीर अत्यन्त कमजोर और दुबला हो रहा था । देहमें मानो खून ही नहीं रहा था; चेहरा भी पीला हो रहा था । देखनेसे एकाएक कोई पहिचान नहीं सकता था । भोलानाथके रँग-ढँग देखकर मैं बहुत घबड़ाया । मैंने धीरेसे पुकारा—" भोला ! "

भोलाने धीरे धीरे आँखें खोलीं, और एकाएक मुझे पहिचान न सकनेके कारण विस्मयकी दृष्टिसे कुछ देरतक वह मेरी ओर देखता रहा । घड़ीभरके बाद भोलाने कहा—" कौन भाई देवदत्त ! मैं क्या तुम्हारे शान्तिकुटीरमें आगया ? धन्य परमेश्वर ! भाई, मुझे तुमसे मुलाकात होनेकी बिलकुल ही आशा न थी । अब एक बार माताजीके दर्शन हो जानेसे मैं निश्चिन्त हो जाऊँगा । उसके बाद मैं सुखसे मर सकूँगा—" यह कहते कहते भोलाकी आँखोंमें आँसू भर आये ।

भोलानाथकी बातचीत और रँग-ढँगसे मुझे भी भय माळूम पड़ा । भोलाके बदनपर हाथ रखकर देखा, उसको घोर ज्वर चढ़ा हुआ था । मैंने कहा—" तुम उठनेके लिए जल्दी न करो । स्थिर होकर जरा पड़े रहो । हम लोग तुमको धीरेसे घरमें लिये चलते हैं । "

सिद्धिनाथको देखकर भोलानाथने पहिचान लिया । सिद्धिनाथ और मैंने भोलानाथके शरीरको कपड़ोंसे अच्छी तरह ढक दिया और उसके बाद हम दोनों जने धीरे धीरे भोलानाथको बाहरकी बैठकके बरामदेमें ले गये । वहाँ भोलानाथने जरा बैठनेकी इच्छा प्रकट की । मैंने उसको एक आरामकुर्सीपर बिठा दिया । भोलानाथने एकबार नजर उठाकर सामनेका दृश्य देखा । देखकर वह कुछ प्रसन्न हुआ । थोड़ी देर चुप

रहकर धीरेसे उसने कहा—" यह तो सचमुच ही ऋषियोंका आश्रम है! ऐसी सुन्दर जगह तो मैंने और कहीं नहीं देखी! भाई, अब मेरी समझमें आया कि तुम सब छोड़कर यहाँ क्यों पड़े हो! तुमने अच्छा किया। भगवान् तुम्हारा मंगल करेंगे। मैं पापी हूँ; इससे कष्ट पा रहा हूँ। किन्तु सब उन्हींकी इच्छा है। जो उनकी इच्छा है वही हो।" इतना कहकर भोलानाथ चिन्तामें डूब गया।

मैंने कहा—" ठंडी हवामें यहाँ और बैठना अच्छा नहीं। चलो, बिछौनेपर चलके लेटो।"

भोलाने कहा—" मेरा नौकर क्या अभीतक नहीं आया?"

मैंने कहा—" तुम्हारा नौकर अभीतक नहीं पहुँचा। क्या जरूरत है, बतलाओ। यहाँ भी नौकर चाकर हैं। और ऊपर ले चलनेके लिए तो हम दोनों आदमी काफी हैं।"

यों कहकर मैं और सिद्धिनाथ धीरे धीरे भोलानाथको ऊपरके कमरम ले गये। मेरा पढ़नेका कमरा एक किनारेपर था और लंबा चौड़ा भी था। उसके भीतरसे चारों ओरकी बहार भी खूब अच्छी तरह देख पड़ती थी। मैंने उसीमें भोलानाथके रहनेका प्रबन्ध किया।

भोलानाथने ऊपर चढ़ते चढ़ते कहा—" मुझे भाई, नीचे बाहरकी बैठकहीमें क्यों नहीं रक्खा? मैं वहीं अच्छी तरह रह सकता था। ऊपरके कमरेमें रहनेसे औरतोंको दिक्कत होगी।"

मने कहा—" तुम्हारे लिए जो रहनेकी जगह ठीक की है, वहाँ एक तो औरतोंके जानेकी जरूरत ही नहीं पड़ती। और अगर जरूरत भी पड़ेगी तो कोई हर्ज नहीं। तुम्हारा नीचे सीलमें रहना तो किसी तरह ठीक न था।"

भोलानाथ बिछौनेपर बैठकर कुछ देरतक खिड़कीसे चारों ओरकी प्राकृतिक शोभा निहारता रहा; उसके बाद, बैठनेमें कष्ट होनेके कारण, लेट रहा।

मैंने कहा—"मुझे स्वप्नमें भी यह खयाल न था कि बुखार ही बुखारमें तुम्हारी यह हालत हो गई होगी। मैं तो समझा था कि तबियत कुछ खराब हो जानेके कारण आब-हवा बदलनेके लिए तुम बम्बई चले गये हो।"

भोलानाथने कहा—"जूड़ी ही मेरे सर्वनाशका कारण है। तिल्ली भी उसीके मारे बढ़ गई है। तीसरे पहर रोज हरारत चढ़ आती है। आज भी वही हरारत है। कुछ रात बीतनेपर बुखार छूट जायगा। बम्बई जानेसे तबीयत कुछ भी नहीं सुधरी। आज दो तीन महीने हुए, पर कुछ भी हालत नहीं बदली। एक तो बीमारीका कष्ट, दूसरे अपना आदमी कोई पास नहीं। कलुआ नौकर साथ था; वही जहाँ तक होता था, सेवा करता था।"

इतना कहकर भोलानाथ चुप हो रहे। थोड़ी देर बाद फिर उन्होंने कहा—"भाई तुम्हारे ब्याहके समय मैं नहीं आ-सका, इसके लिए तुम दुःखित तो नहीं हो? मैं आनेके लिए तैयार था, पर क्या करूँ, डाक्टरोंने फौरन् बम्बई चले जानेकी राय दी। लाचार प्राणरक्षाके लिए मुझे उधर ही जाना पड़ा। यहाँ नहीं आसका, इसके लिए मुझे भी बड़ा पछतावा और दुःख है।"

मैंने कहा—"उसके लिए पछताने या दुख करनेका कोई कारण नहीं है। तुम्हारे शरीरकी ऐसी हाल्त हो गई है, यह बात अगर मुझे मालूम होती तो मैं कभी यहाँ आनेके लिए तुमसे विशेष अनुरोध न करता। खैर, अब यह बतलाओ कि तुम दवा किसकी करते हो?"

भोलाने कहा—“इस समय तो वैद्यकी दवा करता हूँ। किन्तु बीच बीचमें वहाँ, डाक्टर देख जाता था। यहाँ कोई डाक्टर नजदीक है?”

मैंने कहा—“डाक्टर हैं, पर शान्तिपुर या शान्तिकुटीरमें नहीं हैं; यहाँसे कोसभर पर हैं। वे एक बहुत अच्छे डाक्टर हैं। मैंने सिद्धि-नाथको उनके पास भेजा है। वे अभी आते होंगे।”

इतनेहीमें माताजी वहाँ आगई। मैंने कहा—“भोला, अम्मा तुमको देखनेके लिए आई हैं।”

भोलानाथ माताजीको देखते ही बिछौनेपर उठकर बैठनेकी चेष्टा करने लगा। माताजीने उसे रोककर कहा—“बेटा, तुम पड़े ही रहो; उठ-नेकी जरूरत नहीं है। तुम्हारी दशा देखकर मुझे बड़ा ही दुःख हुआ। बचुआने तो मुझसे नहीं कहा कि तुम्हारी ऐसी तबीयत खराब है। मगर तुम बेटा, कुछ चिन्ता न करना। माता भगवती तुमको जल्द आराम कर देंगी। हम सब यहाँ तुम्हारी सेवा करेंगे। और मुझे तो तुम अपनी सगी मासे बढ़कर समझना। तुम्हें कुछ भी भय नहीं है।”

यों कहकर माताजीने भोलानाथके सिरपर हाथ फेरा।

भोलानाथकी दोनों आँखोंमें आँसू भर आये। थोड़ी देर बाद भर्राई हुई आवाजमें उसने कहा—“मैं आपको अपनी मा और बचुआको अपना भाई ही समझता हूँ। इसीसे तो यहाँ चला आया। मेरे न माता है, न भाई है। जगतमें एक बुआके सिवा मेरा मुझे कोई नहीं देख पड़ता। आप लोगोंने जो मुझे अपने स्नेहसे कृतार्थ किया उसका बदला मैं सौ जन्ममें भी चुका नहीं सकता।”

भोलाकी बातें सुनकर माताजीकी आँखोंसे भी आँसू टपक पड़े। पीड़ित, रोगकी यन्त्रणासे कातर, बे-माबापके भोलानाथका सूखा हुआ मुख देखकर पत्थर भी पसीज उठता था।

अट्ठाईसवाँ परिच्छेद ।



कुछ देर बाद डाक्टर साहब आकर भोलानाथको देख गये। उन्होंने भी तिल्ली बढ़ जानेकी बात बताई। लेकिन उन्होंने यह भी कह दिया कि एकाएक किसी जोखिमका डर नहीं है; आप लोग निश्चिन्त रहें। मेरे अनुरोधसे उन्होंने नित्य भोलानाथको आकर देख जानेका वादा किया। मैं प्रायः हरघड़ी भोलानाथहीके पास रहता था। केवल सबेरे दो घण्टेके लिए जंगलमें टहल आता था। भोलानाथ तीसरे पहर दो-तीन बजे तक अच्छा रहता था। उसके बाद ही जूड़ी आ जानेसे वह ढीला पड़ जाता था। उस समय उसे बड़ी तकलीफ होती थी। सबेरेके समय, किसी दिन इच्छा होने पर भोलानाथ नीचे उतरकर शान्तिकुटीरके सामने, जंगलके किनारे, टहलता था। उस समय सिद्धिनाथ या मैं उसके साथ रहता था। किसी दिन वह ऊपर ही रहता था। सिद्धिनाथ प्रायः हरघड़ी भोलानाथके निकट रहकर उसकी सेवा-शुश्रूषा करता था। वह कभी कभी उन्हें अच्छी पुस्तकें भी पढ़कर सुनाता था। सूरदासका एक आध भजन भी कभी कभी सिद्धिनाथ गाता था। सिद्धिनाथ बहुत अच्छा गाना जानता था।

एक दिन दोपहरके बाद भोलानाथ और मैं, दोनों, कमरेमें बैठे हुए तरह तरहकी बातें कर रहे थे। बात-ही-बातमें मेरे ब्याहकी चर्चा चली।

सुननेके लिए भोलानाथकी प्रबल इच्छा देखकर मैंने अपनी रामकहानी उसको सुनाई कि किस तरह मैं ब्याह करनेके लिए लाचार हुआ। अन्तको भगवतीका उल्लेख करके मैंने कहा—“मुझे बहुत दिनोंसे यह खटका था कि शायद मेरी स्त्री मेरे मनकी न मिल सकेगी। लेकिन भगवतीको पाकर मैं उस खटकेसे छुटकारा पा गया। जैसा मेरा स्वभाव है, उसका भी स्वभाव ठीक वैसा ही है। भगवती अच्छी तरह लिखी पढ़ी है। हिन्दी तो जानती ही है; संस्कृत भी रघुवंश तक पढ़ी है और आजकल वाल्मीकीय रामायण पढ़ रही है। मुझे भाई स्वप्नमें भी यह खयाल न था कि इस जंगलमें ऐसी स्त्री मिल जायगी। जो कुछ हो, यह सब उसी भगवानकी कृपा है। उसकी इच्छाके बिना कुछ नहीं होता। आशीर्वाद करो कि हम लोग सुखपूर्वक संसारमें अपने धर्मका पालन कर सकें।”

कुछ देर तक चिन्तामें डूबे रहकर भोलानाथने कहा—“व्यासजी जैसे महात्मा पुरुष हैं उन्हें देखकर उनकी कन्याकी ऐसी योग्यता होना मुझे कुछ विस्मयकी बात नहीं जान पड़ती। ऐसा होना ही स्वाभाविक है; न होना ही अस्वाभाविक और आश्चर्य था। जो कुछ हो तुमने ऐसी श्रेष्ठ स्त्री पाई है, इस बातको तुम्हारे मुखसे सुनकर मैं सचमुच बहुत ही सुखी हुआ।”

मैंने कहा—“हाँ, इस समय तो सुखसे दिन कटते हैं। इसके बाद भगवान् क्या करेंगे, सो कह नहीं सकता। मैंने तो संसारमें पैर बढ़ाया; अब तुम भी भगवानकी कृपासे शीघ्र ही ललितासे ब्याह करके प्रसन्न बनो। यही मेरी आन्तरिक इच्छा और आशीर्वाद है।”

ललिताका नाम लेते ही एक लम्बी एक साँस लेकर भोलानाथ चिन्तामें मग्न हो गया। बहुत देरके बाद वह कोमल स्वरसे, आप ही

आप, कहने लगा—"इसमें सन्देह नहीं कि ललिताके साथ व्याह होनेसे मैं भी सुखी होता। ललिताके सदृश स्त्री पाना भाग्यकी बात है। किन्तु अब व्याह न होगा। अब तक नहीं हुआ सो अच्छा ही हुआ। अगर हो गया होता, तो बेचारीको जन्म भर कष्ट ही मिलता। यह भी भगवानकी इच्छा और असीम कृपा है।"

मैं भोलानाथकी बातें सुनकर कुछ विस्मित हुआ। मैंने कहा—"ललिताके साथ तुम्हारा व्याह क्यों न होगा? मनोहरलालजीने क्या अपनी राय बदल डाली?"

भोलानाथने विषाद भरे मुखमण्डलपर सूखी हँसीकी रेखा देख पड़ी। उसने कहा—"उन्होंने अभीतक अपनी राय नहीं बदली है; लेकिन शीघ्र ही उन्हें अपनी राय बदलनी पड़ेगी। तुम उन्हें मेरी आशा छोड़ देनेके लिए समझा देना। मैं तो मौतके मुँहमें लटक रहा हूँ। यह आशा करना कोरी दुराशा ही है कि, इस जन्ममें मैं आरोग्य लाभ करूँगा। जबतक जिन्दगी है तबतक यों ही लस्टमपस्टम चला जाता है। एक बार मनोहरलालजीसे मुलाकात हो जाती, तो मैं उनसे सब हाल खुलासा कह देता। वे मेरे सच्चे हितैषी हैं, इस समय उन्हें एक-बार देखनेको बहुत जी चाहता है। क्या तुम उनको यहाँ आनेके लिए एक चिट्ठी लिख सकते हो?"

मैंने कहा—"सो तो मैं अभी लिखे देता हूँ; लेकिन तुम ऐसी चिन्ता करके अपने मनको क्यों खराब कर रहे हो? तुम हिम्मत न छोड़ो। भगवानकी कृपासे तुम थोड़े ही दिनोंमें अच्छे हो जाओगे और आशा करता हूँ कि ललिता भी शीघ्र तुम्हें मिलेगी।"

मेरी बातपर जैसे विश्वास नहीं हुआ हो, इस तरह भोलानाथने धीरे धीरे सिर हिलाया। कुछ देर बाद फिर वह कहने लगा—

" ललिताके लिए ही मुझे इतना दुःख और कष्ट है। यह बात वह जान गई है कि मेरे साथ उसका व्याह होगा। उसकी माता मरते समय यह बात उसे बता गई है। यह बात जबसे माळूम हुई है तबसे ललिताके स्वभावमें बहुत परिवर्तन हो गया है। मानों उसका भाव और भी गंभीर और पवित्र हो गया है। जबसे उसे मेरी बीमारीका हाल माळूम हुआ है तबसे उसको बेहद घबड़ाहट है। जब मैं बम्बईमें था तब सात आठ दिनके बाद बराबर उसकी चिट्ठी मिलती थी। शायद यह बात मैंने तुमको लिखी भी थी। केवल इधर कई दिनोंसे उसकी कोई चिट्ठी नहीं मिली। जान पड़ता है, बम्बईसे यहाँ लौटकर आनेके कारण चिट्ठी मिलनेमें देर हो रही है। मैं जबसे यहाँ आया हूँ तबसे मैंने कोई चिट्ठी नहीं लिखी। तुम लोगोंको देखकर मैं इस बातको भूल ही गया था। अब उसे एक चिट्ठी लिखूँगा। "

इतना कहकर चुप रहनेके बाद फिर भोलानाथ कहने लगा—
" लिखकर ही क्या होगा? मेरे शरीरकी हालत देखते उसे अब चिट्ठी न लिखना ही अच्छा है। ललिता अब स्यानी हो चुकी है। मेरे लिए जो उसकी आशा बँध रही है, उसे जड़मूलसे मिटा देना ही अच्छा होगा। जब इस जगतमें वह मुझे पा नहीं सकती, तब मेरे बारेमें कोई भी चिन्ता करना उसके लिए अच्छा नहीं। हिन्दूके घरकी लड़की किसी तरह जन्मभर कुमारी नहीं रह सकती। तब फिर उसके हृदयमें आकांक्षाकी आग सुलगाकर उसे जन्मभरके लिए क्यों दुःखके गढ़ेमें ढकेलूँ? क्यों अधर्मभागी बनूँ? मगर ललिता इस व्याहकी बात न जानती तो मुझे बड़ी खुशी होती। किन्तु, भाई, निश्चिन्त होकर मरना भी मेरे भाग्यमें नहीं बदा है। दिनरात इसी बातकी चिन्ता मुझपर सवार रहती है। चित्तमें दम भरके लिए भी चैन नहीं है। तुम

लोगोंके पास रहनेपर कुछ देरके लिए चिन्ता दूर हो जाती है। अकेले होनेपर फिर यही चिन्ताका ज्वर चढ़ने लगता है। भाई, मैं आरोग्य-लाभ क्या करूँगा ? मेरे मनमें जरा भी सुख नहीं है; दम भरके लिए भी शान्ति नहीं है। भगवानने मुझे विपत्तिमें डाल रक्खा है।"

मैंने कहा—"भाई, इसी कारण तुम्हारा रोग भी दूर नहीं होता। मैं तुम्हारे मनकी हालतको खूब समझ रहा हूँ। एक तो जूड़ी-ज्वर तुम्हें आता ही है, उसपर चिन्ताका ज्वर भी चढ़ा रहता है। पण्डितोंका कथन है कि 'चिताकी आगसे भी चिन्ताकी आग भयानक होती है। चिता मुर्देको जलाती है, पर चिन्ता जीवित मनुष्यको जलाया करती है।' तुम इतनी चिन्ता करके भी शीघ्र आराम कैसे हो सकते हो ! इतनी चिन्ता करनेसे तुम्हारा उपकार नहीं अपकार ही होगा। हजार दवाएँ खानेपर भी तुम बीमार ही बने रहोगे। दवा क्या करेगी ? मनकी प्रसन्नता ही हरएक रोगकी पहली दवा है।"

भोलानाथने कहा—"भाई, तुम्हारा कहना बिल्कुल ठीक है। मैं भी सब समझता हूँ। लेकिन उसका कोई फल नहीं। मन किसी तरह कहना नहीं मानता। ललिता अगर मुझे प्यार करने लगी है तब तो सर्वनाश ही है। उसका दूसरी जगह अगर ब्याह होगा तो क्या वह सुखी हो सकेगी ? उसको क्या पवित्र दाम्पत्यसुख नसीब होगा ? जब मैं न रहूँगा तब उसका और जगह ब्याह होगा ही। ऐसा होने-पर उसकी क्या दशा होगी ? ओः, उसका तो मैं अनुमान भी करनेमें असमर्थ हूँ। उसे चिरकालके लिए असुख, अशान्ति और नरकयन्त्रणा भोगनी पड़ेगी। हाय! भगवान्, मुझे क्यों आपने एकके लिए चिरकालके कष्टका कारण बनाया ? देव मैंने कौन ऐसा भारी पाप किया था ? क्यों मैं इतना कष्ट पा रहा हूँ ?"

इतना कहते कहते भोलानाथकी आँखें बन्द हो आईं और उसके सूखे कपोलों परसे झरझर करके आँसू बहने लगे।

भोलानाथकी अवस्था देखकर मुझे बड़ा ही कष्ट हुआ। मैं भी आँसुओंको न रोक सका। कुछ देर बाद सँभलकर मैंने कहा—"भोला, तुम सब कुछ भगवान्‌पर छोड़ दो। वे शान्ति देनेवाले हैं। वे ही तुमको शान्ति देंगे।"

भोलानाथ वैसे ही आँखें बन्द किये रहा; उसने मेरी बातोंका कुछ उत्तर नहीं दिया। यथासमय मैंने भगवती और मँझली भौजीसे भोलानाथके मनकी इस भयानक अवस्थाका वर्णन किया। भगवती बहुत ही दुःखित हुई। किन्तु मँझली भौजी सुनते ही काँप उठीं। वे कुछ देर-तक चुप रहीं; उसके बाद कहने लगीं "इसी लिए तो बचुआ, मैं कहती हूँ कि लड़कियोंका स्यानेपनमें ब्याह होना ठीक नहीं। और ब्याहकी बात पक्की करके भी बहुत दिनोंतक उसे न करना भी अच्छा नहीं। ब्याहकी बात हो जानेपर लड़कीका मन उसी लड़केमें लग जाता है। उसके बाद अगर लड़केको कुछ हो तो फिर लड़कीका दूसरी जगह ब्याह होगा ही; क्योंकि लड़की काँरी रह ही नहीं सकती। यदि लड़की नबालिग हुई तो उसे उतना कष्ट नहीं होता। दो दिन बाद वह सब भूल जाती है। लेकिन जो लड़की स्यानी हुई और होनेवाले पतिकी ओर उसका मन खिंच गया तो फिर वह सम्बन्ध किसी कारणसे न होने-पर बड़ी आफत होती है। लड़कीकी जिन्दगी मिट्टीमें मिल जाती है। उस दिन अन्नपूर्णाकी वह बात सुनकर तुमलोग हँसने लगे थे, लेकिन मैं तो सन्नाटेमें आ गई। मैंने उसी समय सोचा कि अगर किसी कारणसे अन्नपूर्णाके साथ सिद्धिनाथका ब्याह न होसका तो फिर क्या होगा? मैं तुमसे सच कहती हूँ कि अन्नपूर्णा और सिद्धिनाथके ब्याहमें अब अधिक

विलम्ब न करो। अन्नपूर्णाके भाग्यमें अगर सुख बदा होगा तो अभी ब्याह हो जानेपर भी वह सुखी होगी। लेकिन, भगवान् न करें, अगर सिद्धिनाथके साथ ब्याह होनेमें कोई बाधा आपड़ी, तो बड़ी ही मुश्किल होगी। मेरी समझमें और सब हो सकता है, पर औरतोंके मनसे खेलना ठीक नहीं। औरतोंका मन खेलकी चीज नहीं है। एकको प्यार करके दूसरेसे ब्याह करनेको तुम लोग कैसा समझते हो, सो तो मैं नहीं कह सकती; लेकिन स्त्रीकी जाति ऐसा करना कभी पसन्द न करेगी। जिसको प्रेमकी दृष्टिसे देखा, उससे ब्याह न करनेकी अपेक्षा उससे ब्याह करके विधवा हो जाना भी अच्छा है।"

गंभीरभावसे आग्रहके साथ ये बातें कहते कहते मँझली भौजी किसी कामको चली गई। मैं उनकी बातें सुनकर सन्नाटेमें आगया।

उन्तीसवाँ परिच्छेद।



भोलानाथकी इच्छासे मैंने मनोहरलालजीको चिट्ठी लिखी। भोलानाथकी बुआको भी भोलानाथकी बीमारीका हाल लिख भेजा। कई दिनोंके बाद दोनों जगहसे पत्रका उत्तर आगया। दोनोंने भोलनाथको देखनेके लिए शान्तिकुटीरमें अपने आनेकी सूचना दी थी। मनोहरलालजीने लिखा था कि ललिता भी भोलानाथको देखनेके लिए अत्यन्त आग्रह कर रही है। यदि समझा बुझाकर मैं उसे किसीके पास न छोड़ आ सकूँगा तो अवश्य ही उसे भी संग लाऊँगा।

चिट्ठीका हाल सुनकर भोलनाथको कुछ प्रसन्नता और धीरज हुआ। उन्होंने धीमी आवाजसे कहा—" भाई, ललिताके आनेकी खबर सुनकर मुझे खुशी हुई। देख लेना, वह कभी वहाँ नहीं रहेगी। मेरी भी

इच्छा थी कि एक बार मैं उसे देख लूँ। मेरी यह दशा देखकर वह अवश्य ही मेरी आशा छोड़ सकेगी। क्यों न ? "

मैंने मुखसे तो कहा "ऐसा भी हो सकता है।" लेकिन मनने यह नहीं कहा। मैंने दुःखित होकर अपने मनमें कहा कि "मेरा मित्र बालूके बाँधसे नदीके वेगको रोकना चाहता है।"

दो चार दिनके बाद ही भोलानाथकी बुआ और ललितासहित मनोहरलालजी भी आ पहुँचे। ललिताको देखनेके लिए माताजी, मँझली भौजी, भगवती, सबको ही बड़ी उत्कण्ठा थी। आज बहुत दिनोंके बाद मैंने ललिताको देखा। अब वह कुछ लम्बी हो गई थी। अवस्थामें वह भगवतीकी ही हमजोली होगी। इस समय उसमें वह लड़कपनकी चञ्चलता न थी, मुख गंभीर था, चाल-ढाल गंभीर थी और बातचीत भी गंभीर भावसे भरी थी। वह आनन्दकी प्रतिमा, उदासी और विषादकी मूर्ति बन रही थी। मैंने सोचा, माताके शोक और भोलानाथकी बीमारीकी खबर सुननेसे ऐसा होना अस्वाभाविक नहीं है।

मनोहरलालजीकी पालकी सबके आगे पहुँच गई। मैंने उनको प्रणाम कर संक्षेपमें भोलानाथकी अवस्थाका वर्णन करके उन्हें बाहरकी बैठकमें बिठलाया। सिद्धिनाथ उनके पास बैठकर उनका यथोचित सत्कार करने लगा। इतनेमें और दो पालकियाँ आई। मैंने दूरहीसे भोलानाथकी बुआको पहचान लिया और उनके पास जाकर उन्हें प्रणाम किया। उन्होंने मुझे देखते ही पहचान लिया। वे मुझे आशीर्वाद देकर व्याकुलताके साथ भोलानाथका हाल पूछने लगी।

मैंने कहा—"वह वैसा ही है। यहाँ आनेसे उसकी अवस्था कुछ सुधरी नहीं तो बिगड़ी भी नहीं। इस समय शायद बुखार आगया है। आप लोग भीतर आइए।"

माताजी, मँझली भौजी और भगवती, सभी दरवाजेके पास खड़ी थीं। उन्हें देखकर मैंने कहा—" अम्मा, ये बुआ हैं, यह ललिता है। इनको घरके भीतर ले चलो; लेकिन भोलाके पास अभी इन्हें न ले जाना। शायद वह सो रहा है। मैं पहले उसको इनके आनेकी खबर दूँगा, उसके उपरान्त इन्हें बुलाऊँगा। सोते सोते अचानक इन्हें देख लेनेसे उसके बेहोश होजानेका खटका है।"

बुआजी कुछ शंकित होकर चौंकसी पड़ीं। उन्होंने कहा—" तो हम-लोग अभी भोलाके पास न जायँगी। तुम बेटा, भोलासे जाकर कह देना कि हम लोग आ गये हैं।" यह कहते कहते आँखोंसे आँसुओंकी धारा वह चली। उन्होंने आँचलसे मुँह छिपा लिया। ललिता सिर झुकाकर धरतीकी ओर निहारने लगी।

माताजीने बुआजीसे कहा—" जीजी, यह क्या करती हो? आँसू गिराती हो? आओ, घरके भीतर आओ।" इसके बाद ललिताकी पीठपर हाथ फेरकर उन्होंने कहा—" बेटी, यहाँ खड़े रहनेसे क्या फायदा है, घरके भीतर चलो।"

किन्तु उनके यों कहनेसे पहले ही मँझली भौजी और भगवती ललिताके पास पहुँचकर उससे भीतर चलनेके लिए कह रही थीं।

सबजनी घरके भीतर गईं। मैं झटपट बाहरकी बैठकमें मनोहरलालजीके पास गया। मनोहरलालजी हाथपैर धोकर गंभीरभावसे बैठेहुए चूना तमाखू बना रहे थे। वे बीचबीचमें सिद्धिनाथसे कुछ प्रश्न करते जाते थे। मुझको देखते ही उन्होंने कहा—" क्यों बेटा, भोलानाथकी तबीयत कैसी है?"

मैंने कहा—" अभी मैं ऊपर उसके पास नहीं जा सका। उसको सोते देखकर मैं नीचे उतर आया था। जान पड़ता है, अभी तक वह सो

रहा है। बुआ और ललितासे अभी वहाँ न जानेके लिए मैंने कह दिया है। मैं पहले जाकर भोलानाथको आप लोगोंके आनेकी खबर दे दूँगा, उसके बाद आप लोग मिलने जाइएगा तो अच्छा होगा।"

मनोहर०—"यह अच्छी बात है। यों एकाएक सामने जाना मेरी समझमें भी ठीक नहीं। अच्छा जरा बैठो, मैं तुमसे एक बात पूछूँगा। यहाँके जो डाक्टर देखने आते हैं उनकी क्या राय है?"

मैं—"वे कहते हैं कि रोग कठिन हो गया है। लेकिन अभी कुछ निश्चितरूपसे नहीं कहा जा सकता। मानसिक स्फूर्ति और स्थान बदलनेके गुणसे आरोग्य हो जाना भी सम्भव है।"

सुनकर मनोहरलालने एक लम्बी साँस छोड़ी। उनकी दोनों आँखें लाल होकर डबाडबा आईं। वे कुछ सोचने लगे। कुछ देर बाद उन्होंने मेरी तरफ देखकर कहा—"तुम जरा ऊपर जाकर देखो, भोलानाथ जगे या नहीं।"

"बहुत अच्छा" कहकर मैं ऊपरके घरमें गया। धीरे धीरे दर्वाजा खोलकर देखा, भोलानाथ जग चुका है, पर स्थिर भावसे पलँगपर चित्त लेटा हुआ है और रधिया जमीनमें पड़ी सो रही है। मैंने कहा—"रधिया, उठ, कलुआ कहाँ गया?"

रधियाने घबराकर कहा—"लल्द, कलुआ कहाँ चला गया? मुझसे कह गया था कि तुम यहाँ जरा बैठो, मैं आता हूँ।"

मैंने कहा—"बैठी तो तू खूब थी! अम्मा तुझे खोज रही हैं।"

रधि०—"क्यों?"

मैंने कहा—"सो मैं क्या जानूँ? वे लोग सब आये हैं और तू यहाँ पड़ी सो रही है!"

रधियाने उत्कण्ठाके साथ पूछा—" क्या बुआ वगैरह आई हैं ! "

मैंने कहा—"हाँ, जल्दी जा, मैं अब यहाँ बैठा हूँ।"

रधिया उसी समय नीचे दौड़ी गई।

भोलानाथने मेरी तरफ देखकर पूछा—" कौन आया है ! कौन, बुआ आई हैं ! "

मैंने कहा—" हाँ, और मनोहरलालजी भी आये हैं। "

भोलानाथने व्यग्रभावसे पूछा—" कब आये ! यहाँ क्यों नहीं आये ! "

मैंने कहा—" तुम हरबराओ नहीं, धीरज धरो। तुम सो रहे थे, इसीसे ललिता या बुआजी, कोई ऊपर नहीं आया। अभी आवेंगी। "

भोला०—" तो ललिता भी आई है ! देखो, मैंने तुमसे उस दिन कह दिया था कि ललिता जरूर आवेगी। "

मैंने कहा—" हाँ सब लोग आ गये हैं। वे लोग थके हुए थे, और तुम भी सो रहे थे, इसीसे कोई ऊपर नहीं आया। "

मेरी बात पूरी भी नहीं होने पाई कि बुआ, ललिता और माताजी कमरेमें आ गईं।

ललिता और बुआको देखते ही भोलानाथ बिछौनेपर उठकर बैठ गया, और बोला—"बुआ आगई ! आओ।" यों कहकर उसने बुआकी गोदमें मत्था रख दिया। बुआकी आँखोंसे धारा बहने लगी। ललिता भी खिड़कीकी तरफ मुँह फेरकर चुपचाप आँसू बहाने लगी। माताजी आँचलसे आँसू पोंछते पोंछते ललिताको समझाने लगीं। मैंने भी इशारेसे बुआसे कहा कि रोओ नहीं।

पीछे फिरकर मैंने देखा, बरामदेमें रधिया और दोनों किवाड़ोंकी आड़में मँझली भौजी और भगवती खड़ी हुई आँचलसे आँसू पोंछ रही हैं।

शोकके इस दृश्यको देखनेमें बड़ा ही कष्ट जान पड़ने लगा। मेरे भी आँसू भर आये, मैंने बड़ी मुश्किलसे अपनेको सँभाला।

कुछ देर इसी तरह रहकर भोलानाथने सिर उठाया और वह बुआजीसे कहने लगा—"बुआ तुम आ गईं सो बहुत अच्छा किया। तुमको देखनेके लिए मैं छटपटा रहा था। अब तुम्हें देखनेसे शान्तिसी आगई। बुआ, बचुआ मेर भाई हैं, और इनकी माता मेरी माता हैं। मैं कभी इनका यह ऋण चुका नहीं सकता।" यह कहते कहते उसकी आखोंमें आँसू भर आये।

मैंने कहा—"तुम यह क्या करते हो भोलानाथ? तुम तो बच्चोंसे भी बढ़े जाते हो! स्थिर होकर सोओ, इतने उतावले क्यों हो रहे हो? सिरका दर्द फिर बढ़ जायगा।"

मेरी बातका कुछ जवाब न देकर भोलानाथ वैसे ही स्थिरभावसे आँखें बन्द किये पड़ा रहा। बुआजी उसके सिरपर हाथ फेरने लगीं। सहसा भगवती दरवाजेके पाससे चटपट हट गई। मँझली भौजी भी चली गईं। इसके बाद मुझे जूतोंकी आहट मालूम पड़ी। मनोहरलालजी आरहे हैं, यह समझकर माताजी भी घूँघट काढ़कर कमरेसे निकल गईं। मैंने बरामदेसे बाहर निकलकर देखा, सिद्धिनाथके साथ मनोहरलालजी ही ऊपर आरहे थे।

मनोहरलालजी ऊपर आकर भोलानाथके पलंगके पास बैठ गये। बुआजी उठकर खड़ी हो गईं। उस समय क्रियाके बाद प्रतिक्रिया शुरू हुई थी, चिन्ताकी चञ्चलताके बाद शिथिलता आ गई थी; इसीसे भोला कुछ मोहकी अवस्थामें आ गया था।

मनोहरलालजीने धीरे धीरे भोलानाथके मस्तकपर हाथ फेरा। मस्तकपर हाथ रखते ही भोलानाथ कुछ चौंकसा पड़ा और मनोहरलाल-

जीको देखकर झटपट उठकर बिछौनेपर बैठने लगा; किन्तु मनोहरलाल-जीने कहा—" तुम उठकर क्यों बैठ गये ? बेटा, चुपचाप लेटे रहो । हम आ गये हैं; तुमको डर क्या है ? मैं आया हूँ, तुम्हारी बुआ आई है और ललिता भी तुम्हें देखनेके लिए आई है । तुम कोई चिन्ता न करो । " यों कहकर उन्होंने एक दफे अपनी लड़कीकी तरफ देखा । वह भोलानाथके पैताने सिर झुकाये बैठी थी ।

इसके बाद मनोहरलालजीने मेरी तरफ देखकर कहा—" डाक्टर साहब किस समय आते हैं बचुआ ? "

मैंने कहा—" रोज तीसरे पहर । अब उनके आनेका समय है ।" मेरी बात पूरी भी न होने पाई थी कि उनकी पालकी बाहर बैठकखानेमें आकर लग गई । मैंने कहा—" जान पड़ता है, डाक्टर साहब आ गये ।"

कुछ देर बाद मोहनने आकर डाक्टर साहबके आनेकी सूचना दी । मैंने कहा—" उनको ऊपर ले आ । " यों कहकर मैंने एकबार बुआजीकी तरफ देखा और कहा—" बुआ, तुम क्या इसी कमरेमें रहोगी ? "

मनोहरलालजीने कहा—" उनके रहनेमें हर्ज ही क्या है ? ललिता चाहे दूसरे कमरेमें चली जाय । " ललिता वहाँसे मँझली भौजी और भगवतीके पास दूसरे कमरेमें चली गई ।

डाक्टर साहबने आकर नित्यकी तरह भोलानाथको देखा । मैंने डाक्टर साहबसे मनोहरलालजीका परिचय करा दिया । फिर बुआजीकी तरफ देखकर मैंने कहा—" ये बुआजी भी भोलानाथको देखने आई हैं ।"

भोलानाथसे उत्साह दिलानेवाली और धीरज बँधानेवाली दो चार बातें कहकर डाक्टर साहब उठ खड़े हुए और बाहरकी बैठकमें आये । मनोहरलालजी और मैं उनके साथ आया । थोड़ी देर बाद बुआजी भी

हमारे पीछे पीछे वहाँ आगई। वे एक जगह निरालेमें खड़े होकर हमारी बातचीत सुनने लगीं।

डाक्टर साहब, मैं और मनोहरलालजी दोनों बाहरकी बैठकमें बैठकर भोलानाथकी बीमारीके बारेमें तरह तरहकी बातें करने लगे। मनोहर-लालजीके प्रश्नके उत्तरमें डाक्टर साहबने जो कहा उसका सारांश यह था कि "रोग कठिन हो गया है, किन्तु सहसा जान-जोखिमका कोई खटका नहीं है। मनकी स्फूर्ति होनेसे रोग दूर हो सकता है; केवल कुछ दिन कष्ट भोगना पड़ेगा। किन्तु निश्चित रूपसे अभी कुछ नहीं कहा जा सकता।"

कुछ देर बाद डाक्टर साहब चले गये। मनोहरलालजी भी कुर्सीपर बैठकर गंभीरभावसे विषादके साथ चिन्ता करने लगे। मैं उठकर भोला-नाथको देखने जा रहा था, इसी समय भगवतीने आकर मुझे रोक लिया। उसने कहा—"ललिता इस समय उनके साथ बातचीत कर रही है। इस समय तुम्हारे जानेका कोई काम नहीं है। मैं भगवतीका मतलब समझकर कमरेके भीतर नहीं गया।

तीसवाँ परिच्छेद।



सात आठ दिन बीत गये; किन्तु बुआ, मनोहरलालजी और ललिताको देखकर प्रसन्नताकी कौन कहे, उलटे भोलानाथके चेहरेपर विषाद और चिन्ताकी छाया देख पड़ने लगी। भोलानाथ किसीसे बहुत बातचीत नहीं करता था, केवल चुपचाप पड़ा रहता या बीच बीचमें ठंडी साँसें लिया करता था। मैं भोलानाथकी अवस्था देखकर बहुत ही चिन्तित हुआ। मैंने सोचा, मित्रके मनमें अवश्य ही एक प्रलयकी आँधी

चल रही है। शरीरकी ऐसी दुर्बल अवस्थामें ऐसा मानसिक विकार उपस्थित होना अच्छा नहीं। परन्तु क्या किया जाय? और उपाय न देखकर लाचार एक दिन मैंने भोलासे कहा—" भाई भोलानाथ, मैं तुमको सदा चिन्तामें डूबा हुआ और अनमना पाता हूँ। तुम बीचबीचमें लम्बी साँसें छोड़ते हो। मनोहरलालजी, बुआ और ललिताको देखकर तुम्हारे मनमें विशेष स्फूर्ति होनी चाहिए थी। लेकिन उसके तो कुछ लक्षण नहीं देख पड़ते। तुम्हारे शरीरकी जो वर्तमान अवस्था है उसमें प्रसन्नताका बिल्कुल न होना सुलक्षण नहीं। तुमको काहेका दुःख है? किस लिए तुम चिन्तामें डूबे रहते हो? अगर कोई हर्ज न हो, तो तुम यह सब हाल खुलासा करके कहो।"

भोलानाथ बहुत देर तक चुप रहा। उसने दो एक बार बात करनेकी चेष्टा की, परन्तु बात मुँहसे नहीं निकली। गला भर आया। मित्रके इस मानसिक कष्टको देखकर मेरा भी हृदय व्यथित होने लगा। मैंने मुश्किलसे अपनेको सँभालकर कहा—" भाई, अपने मनकी बात कहनेमें अगर तुमको कष्ट जान पड़ता है तो कहनेकी कोई जरूरत नहीं है। अभी रहने दो, और समय कहना। लेकिन मैं तुमसे यह प्रार्थना करता हूँ कि तुम अकारण चिन्ता करके स्वास्थ्यको खराब न करो। यों चिन्ता करनेसे तुम्हारा रोग भी दूर न होगा और कष्ट भी बहुत पाओगे।"

मेरी बात सुनकर धीरे धीरे सिर हिलाकर भोलानाथने कहा—"ना भैया, यह रोग अब जानके साथ जायगा, मैं अब अच्छा नहीं हो सकता। मैंने समझा था कि मनोहरलालजी, बुआ और ललिताको देखकर मैं सुखपूर्वक निश्चिन्त होकर मर सकूँगा; लेकिन अब देखता

हूँ, विधाताने वह भी मेर भाग्यमें नहीं लिखा। हाय कैसी बुरी घड़ीमें ललिताने मुझे और मैंने ललिताको देखा था, कैसी कुसाइतमें मेरे साथ ललिताके व्याहकी वात उठी थी और ललिताको मालूम हुई थी! मेरे साथ उसके व्याहकी बात अगर न हुई होती तो मैं आज बहुत ही सुखी होता।"

कहते कहते भोलानाथकी दोनों आँखोंमें आँसू भर आये। मैंने देखा, वही पुरानी वात है। लेकिन वात पुरानी होनेपर भी बड़ी भारी और भयानक है। इन कई दिनोंमें, इस बारेमें भोलानाथके साथ ललिताकी कुछ बातचीत हुई होगी, यह समझ कर मैंने कहा—"भोलानाथ, तुम इतने व्याकुल क्यों होते हो! ललितासे इस सम्बन्धमें तुमसे कुछ बातचीत हुई है?"

भोलानाथने एक लम्बी साँस छोड़कर कहा—"हुई है।"

मैंने कहा—"कैसी, किस ढँगकी बातचीत हुई? अगर कोई हर्ज न हो तो कहो।"

भोलानाथने कहा—"भाई तुमसे न कहूँगा? मैं कई दिनसे तुमसे कहनेवाला हूँ, लेकिन तुमको भी छुट्टी नहीं रहती, और मेरी भी तबीयत ठीक नहीं रहती, इसीसे नहीं कह सका। उस दिन ललिताके साथ बहुत देरतक बातचीत हुई थी। हाय, क्यों उसने अपने मनका भाव मुझपर प्रकट कर दिया! मैं तबसे हरघड़ी नरकयन्त्रणा भोग रहा हूँ। अब मेरे मनकी यह अशान्ति किस तरह दूर होगी भाई? मुझे तो अब मरनेपर भी शान्ति नहीं मिलेगी।"

भोलानाथसे आगे नहीं बोला गया। उसके सूखे मुखमण्डलको भिगोती हुई आँसुओंकी धारायें बह चलीं।

मैंने अपने मित्रकी अवस्था देखकर उससे कहा—" भाई, जिस बातके स्मरणसे तुम्हारे मनको इतना कष्ट हो रहा है उसके कहनेकी कोई जरूरत नहीं। उस बातको जाने दो। परमेश्वरका स्मरण करो।"

भोलानाथने कुछ सँभलकर कहा—" भाई, हृदयकी आगको अब मै और दबाये नहीं रख सकता। मै जलकर राख हुआ जा रहा हूँ। तुमको मैं अपनी इस व्यथाका हाल सुनाऊँगा। और कौन ऐसा है, जिसे सुनाकर मैं अपने हृदयको हलका करूँगा?"

मैंने कहा—" भाई, तुम्हारे सोचसे मैं बहुत ही व्याकुल रहता हूँ। अच्छी बात है, जो कहना चाहते हो, कहो, मैं सुन रहा हूँ।"

भोलाने कहा—" देखो, पहले मैं समझता था कि ललिता अगर मुझे एक बार देख जायगी, तो उसके लिए भी अच्छा होगा और मेरी भी भलाई होगी। इसीसे उसके आनेकी खबर सुनकर मैं बहुत प्रसन्न हुआ था। उस दिन तुम लोग जब डाक्टरसाहबके साथ नीचे चले गये, तब ललिता मेरे पास आई थी। मैंने उसे देखते ही कहा—" कौन? ललिता? आओ। तुम अच्छी तरह तो रहीं?" मेरा प्रश्न सुनकर एक बार कातर दृष्टिसे मेरी ओर देखकर ललिताने सिर झुका लिया और उसकी आँखोंसे पटपट करके आँसू बरसने लगे। मैंने कहा—"ललिता, तुम इतनी व्याकुल क्यों हो रही हो? मैं तुम लोगोंको देखकर बहुत प्रसन्न हुआ। जिसका जन्म हुआ है वह जरूर मरेगा, इसके लिए शोक क्या करना? मैं अपने लिए जरा भी दुःख नहीं करता। बल्कि एक बात सोचकर मैं बहुत ही आनन्दित हो रहा हूँ। देखो ललिता, मेरे मा-बाप नहीं हैं। पहले मैं इसके लिए अपनेको बड़ा अभागा समझता था। मगर इस समय देखता हूँ कि उनका न रहना मेरे सौभाग्यकी बात है। मैं जितना ही सोचता हूँ उतना ही जान पड़ता है कि

भगवानके सभी काम मङ्गलमय होते हैं। आज अगर मेरे माता पिता जीते होते तो उनकी क्या दशा होती? इस समय बुआका खयाल ही मुझे भारी कष्ट दे रहा है। उन्होंने लड़केकी तरह मुझे पाला-पोसा है। मेरे सिवा इस संसारमें उनके और कोई नहीं है। वह अपना सब स्नेह मुझमें ही लगाये हुए हैं। माताजी कैसी थीं, यह मुझे मालूम नहीं। लेकिन बुआजीको देखकर मैं अनुमान करता हूँ कि वे भी इनके बराबर मेरी सेवा और स्नेह न कर सकतीं। मेरी बुआ जन्मकी दुखिया हैं। मेरे न रहने पर उनके शोकका सागर उमड़ पड़ेगा, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं। तुम्हारे पड़ोसहीमें वे रहती हैं। तुम उन्हें समझाना और उनकी सँभाल रखना।" कहते कहते मेरी आँखोंमें आँसू भर आये। कुछ देर-बाद सँभलकर मैंने फिर कहा—' देखो, तुम हमेशा तो घरमें रहोगी ही नहीं, सुसराल जाना पड़ेगा। किन्तु जब तुम सुसरालसे मायके आना तब मेरी बुआकी खोज खबर रखना। तुमसे यही मेरी प्रार्थना है।" मेरी बात सुनकर ललिताने कहा—" तुम बुआके लिए कुछ भी चिन्ता न करो। मैं जबतक जिऊँगी उन्हींके पास रहूँगी।" यह कहते कहते ललिताके कण्ठका स्वर काँप उठा और वह एकाएक उठकर बरामदेमें चली गई।

" भाई, बातचीतके ढंगसे ललिताके मनका भाव समझनेपर मेरे हृदयकी क्या अवस्था हुई होगी, इसका अनुमान तुम अच्छी तरह कर सकते हो।" ललिताकी अवस्था देखकर मेरे हृदयपर चोट लगी। मैं भी रोने लगा। थोड़ी देर बाद जरा सँभलकर मैंने धीरेसे ललिताको पुकारा। पहले पुकारनेसे कुछ उत्तर न मिला तो मैंने समझा कि वह शायद नीचे चली गई। लेकिन थोड़ी देरमें आँचलसे आँसू पोंछती हुई ललिता आगई। मैंने उसे देखकर कहा—' ललिता, तुम इतनी व्याकुल क्यों

रो रही हो ? मेरी यह दशा देखकर तुम्हारे कोमल हृदयमें व्यथा होना बहुत ही स्वाभाविक है। अगर इसके पहले तुम्हारे साथ मेरा व्याह हो जाता, तो आज तुम्हारे ऊपर शोक और विपत्तिका पहाड़ ही फट पड़ा था। लेकिन तुम्हारे मा-बापके पुण्यसे यह व्याह अभीतक नहीं हुआ। इसके लिए मैं मन-ही-मन भगवानको अनेकानेक धन्यवाद देता हूँ। इस अन्तिम अवस्थामें एक बार तुम लोगोंको देखकर तो मुझे बड़ा ही आनन्द मिला। तुम दो एक दिन बाद अपने पिताके साथ, घर चली जाना। तुम्हारे पिताजी तुमको एक योग्य वरके हाथमें सौंपें और परमेश्वर तुमको सब सुख दे, यही मेरा आशीर्वाद है।'

" मेरी बात सुनकर ललिता बहुत ही नाराज हुई। उसने खीझके साथ कहा—'देखो, मैं तुम्हारे पास व्याह और सुपात्रकी बातचीत सुनने नहीं आई। तुमको देखने आई हूँ। मेरी जबतक इच्छा होगी, मैं यहाँ तुम्हारे पास रहूँगी। पिताजीके साथ इस समय मैं घर भी नहीं जाऊँगी। तुम मुझसे घर जानेके लिए मत कहो। और तुम जो मेरे व्याहकी बार बार बात उठाते हो, सो मैं तुमसे ही पूछती हूँ कि हिन्दूकी लड़कीका व्याह कै दफे होता है ? तुम क्या मेरे मनके भावको नहीं जानते जो व्याहकी बात उठाकर मेरे हृदयको जखमी बना रहे हो ?' इतना कहकर ललिताने दूसरी ओर मुँह फेर लिया और वह आँचलसे मुँह छिपाकर रोने लगी।

"मैं ललिताकी बातें सुनकर सन्नाटेमें आ गया। हृदयके भीतर आग जलने लगी और आँखोंके आगे अँधेरा छागया। कुछ देर बाद मैंने कहा—'ललिता, क्यों तुमने अपने मनका भाव मुझे जानने दिया ? हाय, ना-समझ लड़की, तू क्या नहीं समझती कि तेरी इन बातोंको सुनकर मेरी मौतकी पीड़ा सौगुनी बढ़ गई ! ललिता, मैं अब भी तुमसे

प्रार्थना करता हूँ कि अब मुझे पीड़ा न पहुँचाओ। तुम मुझे भूल जाओ, मेर सम्बन्धकी सब चिन्ताओंको छोड़ दो, मुझे अपने हृदयसे एकदम निकाल दो। पगली, मेरे साथ अब तेरा ब्याह होगा? हाय, मैं तो मौतके मुँहमें बैठा हूँ—चिताकी शय्यापर पड़ा हुआ हूँ। मसानमें मुर्देके साथ कहीं किसीका ब्याह होता है? जब मेरे साथ तुम्हारे ब्याहकी कोई संभावना नहीं और हिन्दूकी लड़कीका जन्मभर क्वाँरा रहना भी असंभव है तब, ललिता, देवी, मैं तुमसे प्रार्थना करता हूँ कि तुम मुझे एकदम भूल जाओ। तुम मुझे विस्मृतिके जलमें विसर्जन करके आप सुखी बनो, अपने पिताको सुखी करो और इस अभागेको भी सुखसे मरने दो।

"भाई, मैंने और क्या कहा सो इस समय मुझे याद नहीं पड़ता। ललिताने मेरी बातोंका कुछ उत्तर न दिया, वह केवल आँचलमें मुँह छिपाकर आँसू बरसाने लगी। अत्यन्त उत्तेजनाके बाद मैं शिथिल हो चला था। मेरी आँखसी लग गई। बहुत देरके बाद जब मैं जगा तब मैंने देखा कि बुआ और ललिता बैठी हुई हवा कर रही हैं।

"बचुआ, उसी समयसे मेरे हृदयके भीतर आग बल रही है। मैं देखता हूँ, मुझे जिसका खटका था वही बात हुई। भाई, मेरे भाग्यमें सुख शान्तिके साथ मरना भी नहीं बदा है। मुझे बड़ा ही कष्ट हो रहा है। अब इस विपत्तिसे मुझे किस तरह छुटकारा मिल सकता है? कोई उपाय बताओ। मैं दिनरात सोचकर भी कुछ नहीं कर सका। तुम लोग ललिताको अच्छी तरह समझा सकते हो। तुमसे न होगा, भगवतीसे कहो, मँझली भौजीसे कहो। उनका यत्न और चेष्टा सफल भी हो सकती है। हाय, भगवान्, क्यों मुझे ऐसी आफतमें डाल दिया!"

इतना कह कर भोलानाथने आँखें बन्द कर लीं और वह स्थिर होकर पलंगपर पड़ा रहा।

मैं इस विषम समस्यामें किंकर्तव्यविमूढ होकर वहाँसे उठ खड़ा हुआ। उठकर माताजी और मँझली भौजीसे जाकर मैंने सब बातें कह दीं। ये पहलेहीसे ललिताके मनकी थाह ले चुकी थीं। इस समय मुझसे सब हाल सुनकर माताजीने कहा—"ललिताने जब भोलाको अपना पति मान लिया है तब और किसीके साथ उसका व्याह होना ठीक नहीं, और कहीं व्याह होनेसे उसको सुख तो कुछ होगा ही नहीं, उलटे कुछ भारी अनर्थ हो जाय तो आश्चर्य नहीं। फिर भी, हम अच्छी तरह उसे समझावेंगी।"

भगवती वहाँ मौजूद थी। उसने मँझली भौजीसे कहा—"समझानेसे भी कुछ फल न होगा। जीजी ललिताने मुझसे सब खुलासा कह दिया है। उसने कहा है कि भोलानाथके सिवा और किसीसे अगर उसका व्याह किया जायगा तो वह आत्महत्या कर डालेगी। और वह इसी बीमारीकी हालतमें भोलानाथसे व्याह करना चाहती है।"

सुनकर मैं चौंक सा पड़ा। ललिताकी इस दृढ प्रतिज्ञा और अलौकिक आत्मत्यागके बारेमें सोचते सोचते मेरे रोमाञ्च हो आया; आँसू भर आये। मैंने अपने मनमें कहा, ललिता मानवी नहीं, साक्षात् देवी है। स्त्रीका हृदय ऐसा उच्च और महत् हो सकता है, यह बात अबसे पहले मेरे खयालमें भी नहीं आई थी। जो कुछ हो, इस धर्मसङ्कटसे छुटकारा पानेका कोई उपाय न सूझनेसे मैं बहुत ही दुखी हुआ।

इकतीसवाँ परिच्छेद ।



मनोहरलालजी अपनी लड़कीके मनके भावको बहुत दिनोंसे समझ गये थे। समझकर ही वे इतनी चिन्तामें डूबे रहते थे। इसी कारण वे लड़कीको साथ लेकर शान्ति-कुटीरमें आनेको राजी न थे। लेकिन ललिताके अधिक हठ करने पर उन्हें लाचार उसे भी साथ लाना पड़ा। अगर लड़की लेकर शान्तिकुटीरमें वे न आते तो होशियारीका ही काम करते, इसमें सन्देह नहीं; किन्तु स्नेहकी प्रबल बहियाके आगे विज्ञतारूप बालुका बाँध कभी नहीं टिक सकता। इसीसे वे ललितको घरमें छोड़कर अकेले नहीं आ सके। ललिता आई; आकर उसने भोलाको देखा; देखकर उसके साथ व्याह करनेके इरादेको छोड़ देनेके बदले उसने उस पहले इरादेको निश्चयके रूपमें बदल दिया और उसी समय उसे कर दिखानेके लिए भी वह तैयार हो गई। यह बात बहुत जल्दी मनोहरलालजीके कानोंतक भी पहुँच गई। उन्होंने सब सुना। सुनकर वे मन्त्रमुग्ध सर्पकी तरह चुपचाप बैठे रहे। सारा संसार उन्हें अन्धकारमय देख पड़ने लगा। उनकी आँखोंकी ज्योति मानों कम हो गई, मुखमण्डलपर विषादकी घटा छागई। बहुत देरतक उन्होंने किसीसे एक बात भी नहीं की। उसके बाद उन्होंने मुझसे भर्राई हुई आवाजमें कहा—"बेटा, मैं इस विपत्तिसे किस तरह छुटकारा पाऊँगा!" इतना कहकर वे लड़कोंकी तरह रोने लगे।

धीर, पण्डित और विवेकी मनोहरलालजीको इसतरह विह्वल होते देखकर मुझे बड़ा ही कष्ट हुआ। मुझसे भी आँसू नहीं रोके गये। मैं उनसे धैर्य धारण करनेके लिए कहकर घरसे निकला और चिन्तित भावसे व्यासजीके पास पहुँचा। व्यासजी मेरा मुख देखते ही सिहर उठे। व्याकुलताके साथ

उन्होंने मेरी और भोलानाथकी कुशल पूछी। मैंने एकान्तमें उनसे सब बातें खुलासा करके कहीं। सब सुनकर बहुत देर तक वे चुप रहे। चिन्ताके बाद एक लम्बी साँस लेकर उन्होंने कहा—"बेटा, मुझे तो इसका और कोई उपाय नहीं देख पड़ता। कन्याकी जो इच्छा है उसीके अनुसार इस समय हमें चलना चाहिए। ऐसा न करनेसे सबको अधर्म होगा। लेकिन ललिताको क्या तुम लोगोंने अच्छी तरह समझाया था? अगर तुमलोग समझा बुझाकर उसका विचार बदल सको तो हो सकता है। अन्यथा और कोई उपाय नहीं है।"

मैंने कहा—"माताजी और मँझली भौजी आदि सबने अपनी शक्तिभर ललिताको समझाया है। किन्तु उसका फल कुछ नहीं हुआ। उनकी बातें ललिताको सेलसी जान पड़ती हैं। मँझली भौजी कहती थीं कि ललितासे दूसरेके साथ ब्याह करनेका इशारा करनेसे भी वह रोने लगती है। ललिताने यह भी कहा है कि, भोलाके सिवा और किसीके साथ ब्याह होनेसे वह आत्महत्या कर डालेगी। ललिताके मनकी दशा स्पष्ट जान पड़ती है। वह भोलाकी हालतको कुछ कुछ समझ गई है। भगवान् न करें, भोलानाथको कुछ भलाबुरा हो गया, तो पीछे पिता किसी दूसरेके साथ ब्याह कर दें, यही उसको बड़ा खटका है। जो कुछ हो, इस समय मनोहरलालजीकी जो हालत मैं देख आया हूँ उससे मुझे विश्वास है कि मैं उनको धीरज नहीं बँधा सकता। आप इस समय घरपर चलते तो बहुत अच्छा होता।"

व्यासजी उठ खड़े हुए, बोले—"बेटा, मामला बड़ा बेंड़ा है। मुझे तो कोई उपाय देख नहीं पड़ता। विधाताकी जो इच्छा है वही होगा।"

व्यासजीके साथ घर आनेमें मुझे कुछ भी देर नहीं लगी। बाहर बैठकमें घुसकर देखा, मनोहरलालजी लड़कीके पास बैठे रो रहे हैं, और

वह भी रो रही है। घरके भीतर और बाहर कई स्त्रियाँ हैं; पर वे आप भी खड़ी रो रही हैं। मैंने किसी अमङ्गलकी आशङ्कासे घबराकर रधियासे भोलानाथकी खबर पूछी। रधियाने कहा—"वे अच्छे हैं बबुआ। उनके पास सिद्धिनाथ हैं। ललिताके बाप लड़कीको अपने पास बिठाकर देरसे रो रहे हैं। बाप भी रोता है, लड़की भी रोती है। मुझसे तो भाई, यह नहीं देखा जाता।"

मुझे भीतर आते देखकर ललिता चुप हो रही। मनोहरलालने भी अपनेको कुछ सँभाला। औरतें एक एक करके कमरेके बाहर चली गईं। व्यासजीने मनोहरलालजीके पास बैठकर ललितासे कहा—"बेटी, तुम जरा घरके भीतर जाओ।" ललिता उसी दम उठकर चली गई। मेरे इशारा करनेसे और औरतें भी किवाड़ोंकी आड़से हट गईं। केवल मँझली भौजी और रधिया किसी तरह वहाँसे नहीं हटीं।

घर सूना होने पर व्यासजीने मनोहरलालजीसे कहा—"आप इस विपत्तिके समयमें धीरज छोड़ देंगे तो कैसे काम चलेगा? आप पढ़े लिखे और समझदार हैं, जरा शान्त होइए, अपनेको सँभालिए।"

मनोहरलालजीने कहा—"व्यासजी, क्या शान्त होऊँ और क्या अपनेको सँभालूँ? मैं तो सिड़ीसा हो रहा हूँ। ललिता ही एक मेरी लड़की है; मेरे और कोई सन्तान नहीं। संसारमें ललिताके सिवा और कोई मेरे नहीं है। ललिता मेरी बड़े आदरकी सामग्री है। इस मायामय संसारमें इसीसे मैं अबतक पड़ा हुआ हूँ। मैंने सोचा था कि ललिताको किसी सुपात्रके हाथमें सौंपकर, उसे सुखी देखकर, मैं इस संसारसे चल बसूँगा। ललिताकी माता और मैं, दोनोंने बहुत दिनोंसे विचार कर रक्खा था कि भोलाके साथ ललिताका ब्याह करेंगे। भोला जैसा अच्छा लड़का है वैसा लड़का ललिताको और मिल नहीं सकता।

अगर ललिताकी मा मर न जाती और भोला बीमार न पड़ जाता, तो अबतक यह काम हो गया होता। लेकिन मैंने यह नहीं सोचा था कि भोलाकी बीमारी इतनी बढ़ जायगी और इसी अवस्थामें ललिता उसके साथ ब्याह करनेको तैयार हो जायगी। लड़कीके इस संकल्पसे मुझे आनन्द होना चाहिए था। मगर वह आनन्द मेरे भाग्यमें बदा ही नहीं है। कहाँ लड़कीको ब्याहके बाद सुखी देखकर मैं निश्चिन्त होना चाहता था, कहाँ उसे अपने आगे जन्मभरके लिए दुखिया बनते देखनेका सामान हो रहा है। हाय, मेरे भाग्यमें इतना दुःख बदा है, इस बातको स्वप्नमें भी मैंने नहीं सोचा था।"

आगे मनोहरलालजीके मुँहसे बात नहीं निकली, उनका गला भर आया। व्यासजीने उनसे कहा—"महाशय, शान्त होइए। ऐसे अधीर न बनिए। आप बहुत आगे बढ़ आये हैं, अब पीछे पैर देनेसे काम नहीं चलनेका। लड़कीको समझाकर भी अगर मैं उसके इरादेको पलट नहीं सका, तो आप भोलाके साथ उसका ब्याह करनेके लिए तैयार रहिए और इस कामको शीघ्र ही कर डालिए। विलम्ब करनेसे अनर्थ हो जायगा। आप मङ्गलमय भगवानका स्मरण करके भोलाके साथ उसका ब्याह कर दीजिए। किन्तु ठहरिए, एक बार मैं ललितासे दो एक बातें करके देख लूँ।" इतना कहकर उन्होंने मुझसे कहा—"बचुआ, जरा ललिताको तो यहाँ बुलाओ।"

मैं खुद घरके भीतर जाकर ललिताको बुला लाया। घरकी औरतें फिर दरवाजेकी आड़में आकर खड़ी हो गईं।

ललिताको देखकर व्यासजीने कहा—"बेटी, तुम्हारे पिताने बहुत दिनोंसे भोलाके साथ तुम्हारा ब्याह करनेका संकल्प कर रक्खा है। तुम्हारी माताका भी यही इरादा था। किन्तु भोला इस समय बीमार

है। बीमारीकी हालतमें उसका ब्याह होना उचित नहीं है। भोला कुछ आराम हो ले, वैसे ही तुम्हारे पिता उसके साथ तुम्हारा ब्याह कर देंगे। तुम अपने बापकी अकेली ही लड़की हो। तुम्हारे ब्याहमें वे धूमधाम करेंगे, उत्सव करेंगे, नातेदारों भाईबन्दों और इष्टमित्रोंको न्यौता देंगे। ये सब बातें सहसा यहाँ कैसे हो सकती हैं? भोलानाथ जबतक अच्छा न हो तबतक तुम ब्याहका नाम भी न लो। भोलाको तुम देखने आई हो सो बहुत अच्छा किया। दो दिन बाद अपने बापके साथ घर जाओ। वहाँ तुमको रोज खबर मिलेगी कि भोलाकी तबीयत कैसी है। और एक बात तुम जानती हो? जबतक किसीके साथ ब्याह न हो जाय, तबतक उसके बारेमें कुछ सोचना स्त्रीके लिए पाप समझा जाता है। क्योंकि यदि किसी कारणसे उसके साथ ब्याह न हुआ तो फिर ठीक नहीं होता।"

ललिता अपने पैरोंपर नजर गड़ाये व्यासजीकी ये बातें सुन रही थी। उस समय उसकी वह विषादभरी मूर्ति बहुत ही सुन्दर देख पड़ती थी। किन्तु व्यासजीकी बात पूरी भी नहीं होने पाई थी कि उसके हृदयमें 'ज्वार' सा आगया। दोनों आँखोंसे झरझर करके आँसू बरसने लगे। ललिता अपने हृदयके आवेशको रोकनेमें असमर्थ होकर, आँचलसे मुँह ढककर, हम लोगोंके आगेसे हट गई।

व्यासजी एकटकसे ललिताके इस विचित्र भावको देख रहे थे। ललिताको आँसू बरसाते देखकर उनकी आँखोंमें भी आँसू भर आये। ललिता हमारे सामनेसे चली गई, तब वे धीरे धीरे उदास भावसे सिर हिलाने लगे।

कुछ देर बाद व्यासजी उठकर अकेले भीतर गये और आध घंटेके बाद बैठकमें लौटकर उन्होंने मनोहरलालजीसे कहा—" महाशय, इस

समय मैं इस ब्याहको रोक सकता हूँ। पर आपको यह संकल्प करना होगा कि परमेश्वर न करे, यदि भोलाको कुछ भलाबुरा हो गया, तो आप किसी दूसरेके साथ ललिताका ब्याह करनेकी चेष्टा न करेंगे। यदि आप यह संकल्प करें तो मैं ललिताको समझा बुझाकर इस समय यह ब्याह रोकनेकी चेष्टा करूँ।"

मनोहरलालजीने कुछ सोचकर कहा—"महाशय, क्या यह भी संभव है कि हिन्दूकी लड़की जन्मभर क्वाँरी रहे? समाजमें मुझे निन्दित और पतित होना पड़ेगा। आप तो सब समझते हैं।"

व्यासजीने कहा—"मैं सब समझता हूँ। अच्छा अब सब बातें छोड़कर मेरी सलाह सुनो। भोलाके साथ ललिताका ब्याह करनेके सिवा और कोई उपाय मुझे नहीं देख पड़ता। आप अब और कुछ सोच-विचार न करें। चिन्ता करनेका अब समय नहीं है। अब एक अच्छा दिन देखकर भोलाके साथ ललिताका ब्याह कर डालिए। मुझे अच्छी तरह जान पड़ता है कि इस ब्याहका फल अच्छा ही होगा। देखिए, भोलाकी बीमारी कड़ी है, पर सांघातिक नहीं है। और आपकी कन्या एक रत्न है। लाखोंमें भी ऐसी एक लड़की देखनेको नहीं मिलती। आपकी कन्याका संकल्प देखकर आज मुझे प्राचीन आर्य-गौरवकी याद आती है। मुझे आपकी कन्या साक्षात् सावित्री जान पड़ती है। आपकी कन्या ऐसी सुन्दरी और सुलक्षणा है कि उसके भाग्यमें वैधव्यका कष्ट बदा होना मुझे सर्वथा असंभव जान पड़ता है। आप ऐसी कन्या पाकर धन्य हुए हैं। मैं आपसे निश्चित रूपसे कहता हूँ कि सतीके हाथको पकड़कर भोला आरोग्य हो जायगा। स्वयं धन्वन्तरि भगवानकी चिकित्सा भी सतीकी सेवाके समान नहीं हो सकती। सब भगवानकी

अपूर्व लीला है। सब उसके विचित्र कारखाने हैं। ऐसी लड़कीको देख-कर आज मैं भी धन्य हो गया।"

कहते कहते व्यासजीकी आँखोंमें आँसू भर आये, रोमाञ्च हो आया। मनोहरलालजीने भी रोते रोते उनसे कहा—"आप महात्मा पुरुष हैं; आपहीका कहना सच हो।"

कुछ देर बाद व्यासजीकी इच्छाके अनुसार हम तीनों जने भोलाके देखनेके लिए कमरेमें गये।

देखा, सिद्धिनाथ भोलानाथको वर्ड्सवर्थकी कविता पढ़कर सुना रहा था। हम लोगोंको आते देखकर भोलानाथ उठ बैठा। भोलानाथ उस दिन कुछ स्वस्थ था।

व्यासजीने कुशल-मङ्गल पूछकर भोलानाथसे कहा—"भोलानाथ, तुमको इस समय हमारी एक बात माननी होगी। हम लोग और कोई उपाय न देखकर ही तुमसे यह बात कहनेके लिए लाचार हुए हैं। तुम ललितासे व्याह कर लो। तुम्हारी इस बीमारीकी हालतमें ही व्याह कर-नेको कहना उचित नहीं है, यह मैं भी जानता हूँ। पर ललिताकी इच्छा यही है, और इसीमें भलाई भी देख पड़ती है। इसीसे हम तुमसे अनुरोध करते हैं। तुम्हारी बुआ भी इसमें राजी हैं। तुम अब 'नाहीं' न करना।"

व्यासजीके यों कहने पर बहुत देर तक चुपचाप भोलानाथ सोचता रहा। उसके बाद उसने कहा—"आप लोगोंकी बात टालना मुझे उचित नहीं, यह बात मैं अच्छी तरह जानता हूँ। लेकिन आप लोग मेरे शरीरकी हालत तो देख ही रहे हैं। मैं क्या इस बीमारीसे उठकर खड़ा हो सकता हूँ? मेरी आयु समाप्त होनेको है। फिर आप लोग जान-बूझकर क्यों मुझे आफतमें डाल रहे हैं?"

व्यासजीने कहा—"तुम जल्द आराम हो जाओगे। इसके लिए तुम चिन्ता न करो। बचुआसे तुम सुनोगे कि हम लोग किस तरह लाचार होकर तुमसे यह अनुरोध करने आये हैं। बस, अब तुम मान लो; कुछ भी इधर उधर न करो।"

भोलानाथ फिर कुछ देर तक चुप रहा। उसके बाद एक लंबी साँस लेकर उसने कहा—"अब मैं और क्या कहूँ? आप जो समझें वही करें।"

इतना कहकर कमजोरीके मारे वह बिछौनेपर पड़ रहा। उसकी आँखें बंद हो आईं और वह चिन्तामें डूब गया।

मनोहरलालजी और व्यासजी वहाँसे चले गये। सिद्धिनाथ और मैं दोनों भोलाके पास बैठे रहे।

बत्तीसवाँ परिच्छेद।



भोला और ललिताके ब्याहकी बात शान्तिपुर भरमें फैल गई। ललिताकी बातें सुनकर सब सन्नाटेमें आ गये। बहुत लोग आपसमें कहने लगे—'ललिता तो साक्षात् सावित्री है।' किसी किसीने कहा—'भोलानाथ भी जैसे सत्यवान् है।' गाँवकी स्त्रियाँ कहने लगीं—'ललिताका कभी अनिष्ट नहीं हो सकता।' उन लोगोंको गहरा और दृढ़ विश्वास था कि सतीको कभी दुःख नहीं भोगना पड़ता।

ब्याहकी तैयारी ही और क्या होती? जिसके बिना नहीं बनता था केवल वही किया गया। जिस ललिताके ब्याहमें उसके पिताने हजारों रुपये खर्च करनेका संकल्प कर रक्खा था उस ललिताके ब्याहमें बहुत ही मामूली खर्च किया गया। जिस ललिताके ब्याहमें आनन्द उत्सवका फुहारा छूटनेवाला था उस ललिताके ब्याहमें भौरियों या भाँव-

रोंके सिवा और कुछ भी नहीं हुआ। सब उसी भगवानकी इच्छा है। कन्यादान करनेके समय मनोहरलालजीकी आँखोंसे आँसुओंकी धारायें बह चलीं। लेकिन ललिताकी आँखोंमें आँसूका एक बूँद नहीं था। बल्कि उसके गंभीर, किन्तु प्रसन्न मुखमण्डलपर एक अपूर्व सुन्दरता और तेजकी झलक देख पड़ने लगी। उसकी दोनों आँखोंसे जैसे एक अपूर्व पवित्र ज्योति निकलने लगी। गाँवके जो नर-नारी ब्याह देखनेके लिए आये थे वे रेशमी पीताम्बर पहने, गाम्भीर्यशालिनी, ज्योतिर्मयी ललिताके अपूर्व रूप-लावण्यकी छटा निहारकर आपसमें कहने लगे—"ललिता तो साक्षात् भगवतीकी मूर्ति धारण किये हुए है।" मँझली भौजीने कहा—"बचुआ, ललिताका ऐसा रूप और कभी देखा था? जैसे सोनेकी प्रतिमा जगमगा रही है! मुझसे तो आँख भरकर ललिताकी ओर देखा नहीं जाता!" इस तेजोमयी बालिकाके पास भोलानाथके सूखे हुए मलिन शरीरको देखकर मुझे जान पड़ा कि कोई करुणामयी देवी भोलापर दया करके पृथ्वीपर सहसा प्रकट हुई है और उसे अकालमृत्युसे बचानेके लिए निश्चय किये हुए है। इस अपूर्व दृश्यको देखते देखते मेरे रोमाञ्च हो आया। सहसा देश और कालको भूलकर, एक अद्भुत भाव-सागरमें मग्न होकर, आँखें बन्द किये, हाथ जोड़े मैंने ललिताको प्रणाम किया।

ललिता अवस्थामें छोटी होनेपर भी सदासे मेरे लिए पूजनीय और वन्दनीय थी। ललिता जैसी तेजस्वी स्त्री मैंने और कहीं कभी नहीं देखी। ललिताको देखकर मैं धन्य हो गया और मेरा हृदय पूर्ण तथा पवित्र हो गया। ललिताने ही मुझे पापमय कलियुगमें सत्ययुग दिखलाया—इस पाप-कोलाहलपूर्ण असार संसारमें स्वर्गराज्यका अभिनय दिखलाया। ललिताको ही देखकर मैंने स्त्रीजातिको हृदयसे मानना और उन-

पर भक्ति करना सीखा है। उसके चरित्रसे मुझे बहुत कुछ आशा और उत्साह प्राप्त हुआ है और मैं इस श्लोकके मतलबको अच्छी तरह समझ सका हूँ—

> नारी हि जननी पुंसां नारी श्रीरुच्यते बुधैः।
> तस्माद्गेहे गृहस्थानां नारी पूज्या गरीयसी॥

अर्थात्, नारी पुरुषोंको पैदा करनेवाली है। पण्डित लोग इसीसे उसे गृहलक्ष्मी कहते हैं। इस कारण गृहस्थोंके घरमें स्त्रीकी पूजा होनी चाहिए।

हाय, हम लोग अभागे हैं, जो आजकल न स्त्रियोंकी पूजा करते हैं और न उनकी महिमा ही जानते हैं।

एक दिन भोलानाथने मुझको एकान्तमें बुलाकर आँखोंमें आँसू भर-कर कहा—"भाई, ललिता मानवी नहीं, देवी है। मैं तो ललिताके कामोंको देखकर भौंचक्कासा हो रहा हूँ। मैं क्या ललिताके योग्य हूँ? मैं तो उसकी छाँह छूनेकी भी योग्यता नहीं रखता। देखो, ललिताके पवित्र हाथोंके लगनेसे मेरे देहकी नसनसमें एक तरहकी बिजलीसी दौड़ रही है। मेरे हृदयमें आनन्द-उल्लासके एक भारी ज्वारने आकर मुझे अपनेमें मग्न कर लिया है। सूखा पेड़ जैसे फिर अंकुरित हो उठता है—हरा होने लगता है, वैसे ही मेरे बुझे हुए हृदयमें भी मानों आशाके पल्लव निकल रहे हैं—मेरे हृदयमें जैसे उत्साहका सोता फूट रहा है। यह क्या हो रहा है? इतना सुख तो इस जीवनमें मुझे कभी नहीं मिला। मेरे सुखका प्याला भर तो नहीं आया? बुझनेके पहले जैसे दीपक एक दफे भकसे जल उठता है, वही दशा तो मेरे जीवनदीपककी नहीं हो रही है? अगर ऐसा हो भी, तो अब कोई हर्ज नहीं। अब मुझे और कोई कष्ट नहीं है। ललिताके लिए भी अब मुझे कोई चिन्ता नहीं। ललिता मेरी

हो चुकी और मैं ललिताका हो चुका। हम दोनों धन्य हो गये। यही हमारे जीवनकी अभिलाषा थी।"

मेरे कुछ कहनेके पहले ही भोलानाथकी आँखें बंद हो आई। उसके सूखे मलिन मुखमें एक मधुर और पवित्र हँसीकी रेखा दिखाई दी। मैं मित्रको बेहोशीकी हालतमें देखकर वहाँसे उठ गया और आपही आप कहने लगा—"क्या अब जीवन-दीपक बुझेगा? तब तो कहना होगा कि प्रेम, अनुराग, धर्म, सब ही मिथ्या है।"

वास्तवमें ब्याह होजानेके बादसे ही भोलानाथकी अवस्थामें अद्भुत परिवर्तन होने लगा। पाठकगण सुनकर विस्मित होंगे कि जिस दिन ब्याह हुआ उसके दूसरे ही दिनसे भोलाका बुखार एकदम छूट गया और उसके शरीरमें बल और स्फूर्ति दिखाई पड़ने लगी। सती ललिताके पवित्र तेजके आगे ज्वरासुर किसी तरह टिक नहीं सका। भोलाकी बीमारीमें ललिताके यत्न, सेवा और देखरेखने बहुत ही अद्भुत काम कर दिखाया। मेरी समझमें तो ललिताके स्नेहपूर्ण स्पर्शसे ही भोलाके रोगकी ज्वाला उसके शरीरसे निकल भागी। उस देवरूपिणी, गाम्भीर्यशालिनी, कठोर कर्त्तव्यके ज्ञानसे युक्त, कुसुमकोमला वीरबालाकी मूर्ति इस समय भी स्मृतिपटमें प्रकट हो जानेसे आज भी मेरे शरीरमें रोमांच हो आता है।

तेतीसवाँ परिच्छेद।

बरसात बीत चली। भोला और ललिताका ब्याह हुए दो महीने हो गये। भोलानाथ चिन्ताके ज्वरसे छुटकारा पाकर दिनोंदिन आरोग्यलाभ करने लगा। उसके शरीरमें कुछ बल भी आ गया। भोलानाथ

अब बिना सहारे नीचे उतरकर हमारे घरके आगेके मैदानमें और जंगलके किनारे इधरउधर टहलता था, बैठे बैठे दो घड़ी बातचीत करता था और कभी कभी दो एक घंटे तक पुस्तकें भी पढ़ता था। गाँव भरके सब लोग भोलाकी अवस्थाका यों बदलना देखकर प्रसन्न हुए। मनोहर-लालजी और भोलाकी बुआके खुश होनेका तो कहना ही क्या है! भोला-नाथको घर ले जानेकी बुआ और मनोहरलालकी प्रबल इच्छा थी; पर डाक्टरसाहबने मना किया। उन्होंने यह बात इन लोगोंको अच्छी तरह समझा दी कि भोलानाथ जबतक बिल्कुल आरोग्य न हो ले, तबतक उसका यहाँसे और कहीं जाना किसी तरह ठीक नहीं। और उपाय न देखकर मनोहरलाल और भोलाकी बुआ भोला और ललिताको कुछ दिनोंके लिए शान्तिकुटीरमें छोड़कर घर चले गये।

शरद ऋतुकी अवाईमें बाहरी प्रकृतिने अपूर्व शोभा धारण की। आ-काश निर्मल हो गया; बादलका नाम नहीं रहा। सब खेत हरे भरे दिखाई पड़ने लगे। स्वच्छ सरोवर सुन्दर खिले हुए कमलोंसे सुशोभित होकर साधुजनोंके हृदयके समान जान पड़ने लगे। जंगलमें बहुतसे जंगली पेड़ खिल उठे। मौलसिरीके फूलोंकी सुगंधसे दिशायें परिपूर्ण होने लगीं। सबेरेके सूर्यकी सुनहरी धूपमें रंगबिरंगी तितलियाँ उड़ उड़-कर खेलने लगीं। रातके समय चन्द्रमाकी अपूर्व शोभा होने लगी। धरती चाँदनीमें डूबकर सुन्दर सपना सा जान पड़ने लगी। मैं प्रकृति देवीके इस श्यामल शीतल मस्त भावको देखकर एक दिव्य आनन्दका अनुभव करता था। अवकाश पाते ही मैं घरसे बाहर निकलकर प्रबल उत्साहके साथ जंगलमें, नदीके किनारे, हरेभरे खेतोंमें, मैदानमें, और अन्यान्य कितने ही मनोहर स्थानोंमें घूम आता था। तीसरे पहर भोला-नाथ सिद्धिनाथके साथ हमारे घरके सामने टहलता था। मैं भी किसी

किसी दिन इसके संग रहता था। लेकिन सबेरे, कोई बहुत जरूरी काम न हुआ तो मैं किसी तरह घरमें नहीं ठहरता था। सबेरेकी हवाकी तरह मैं भी मनमाने ढँगसे सर्वत्र विचरता रहता था।

बहुत दिनोंसे मैंने प्रकृतिदेवीका ध्यान नहीं किया। बहुत दिनोंसे प्रकृति देवीको मैं भूला हुआ हूँ। व्याहके पहले प्रकृतिसेवक होनेका जो मैंने अपने मनमें संकल्प किया था उसे आज मैं बिल्कुल भूल ही गया। पहले ईश्वरसम्बन्धी चिन्तामें, पवित्र ग्रन्थोंके पढ़नेमें और साधुओंके पवित्र चरितोंकी आलोचनामें मैं अपने हृदयमें जिस शान्ति और आनन्दका अनुभव करता था उसे व्याहके बाद, संसारीपनकी मोहमयी छलनामें, जगतके पापमय कोलाहलमें और भोलानाथके लिए यत्न और चिन्ता करनेमें मानों भूल ही गया। दो चार दिन प्रकृतिदेवीके संग रहनेसे ये सब बातें फिर याद आ गईं। मैं फिर गंभीर होकर चिन्तामें मग्न हो गया। हँसी-दिल्लगी, खेल-तमाशे, आमोद-प्रमोद सब मुझे अस्वाभाविकसे जान पड़ने लगे। मुझे अपने किये अनुचित कामोंके लिए घोर आत्मग्लानि हुई। जीवनके लक्ष्यसे भ्रष्ट होकर संसारीपनके प्रवाहमें बहनेके लिए मैं अपनेको अपने आत्माके निकट अपराधी समझने लगा।

भोलानाथ मेरे इस उदासीन भावको देखकर कुछ घबड़ाया। मैंने उससे कहा—"मेरे लिए अब तुम चिन्ता न करना। वह पढ़नेकी अवस्थाका भाव अभीतक मुझमें कुछ कुछ बना हुआ है। बीच बीचमें मैं यों उदासीनसा हो जाता हूँ। माताजी, मँझली भौजी और भगवती सबको ही इसके लिए मुझे कैफियत देनी पड़ी। माताजी और मँझली भौजी तो मेरी कैफियतसे सन्तुष्ट हो गईं, केवल भगवतीको ही सन्तोष नहीं हुआ। उसने समझा, शायद उसके कामोंसे मैं नाराज

हूँ, शायद वह मेरे मनके माफिक नहीं बन सकी। मैंने उसके सब सन्देहको दूर करके कहा—" भगवती! मैं तुम्हारे ऊपर नाराज नहीं हूँ। तुम्हारे सदृश स्त्री पाकर सचमुच ही मैं सुखी हुआ हूँ। तुम जैसी पवित्र और उच्च हृदयकी हो उसे देखकर कभी कभी मेरी समझमें आता है कि मैं तुम्हारे अनुरूप नहीं हूँ। तुम्हारे ऊपर नाराज होनेका कोई भी कारण मुझे नहीं देख पड़ता। लेकिन मैं अपने ऊपर अवश्य ही अत्यन्त अप्रसन्न हूँ। मैं संसारके सोतेमें एकदम पड़कर बह चला था। संसारके कोलाहलमें पड़कर मैं अपने जीवनके लक्ष्य और आकांक्षा तकको भूल चला था। हृदयके भीतर फिर वही अशान्तिका हाहाकार होने लगा है। ऐसे समय मुझे संसार अन्धकारमय देख पड़ता है। इस समय भी यही दशा है। हृदयमें अशान्ति भरी है और जगतके किसी पदार्थसे सन्तोष नहीं होता। भगवती, इस समय मैं बड़ी दुर्दशामें पड़ा हुआ हूँ। तुम मेरे लिए चिन्ता न करना। भगवान् शान्ति देनेवाले हैं, वे ही मुझे शान्ति देंगे।"

भगवती एक लम्बी साँस छोड़कर बहुत देर तक मेरी ओर ताकती रही। मैं भी उसके उस कातर और विषाद-भरे मुखको देखकर हृदयमें बड़े भारी कष्टका अनुभव करने लगा। कुछ देर बाद उसका हाथ पकड़कर मैंने कहा—" भगवती, तुम मेरे लिए चिन्ता न करो। यह उदासीनता मेरे जीवनकी साथिन है। लड़कपनसे ही मैं ऐसा गंभीर और उदासीन हूँ। वैराग्य मेरे स्वभावमें दाखिल है। इतने दिनोंतक मैं परमेश्वरको भूल गया था, इसीसे आज मुझे यह मानसिक कष्ट मिल रहा है।"

भगवतीकी दोनों आँखोंमें आँसू भर आये। कुछ देर बाद उसने कहा—" तुम भगवानको क्यों भूले रहते हो? जो करनेसे तुम्हारे

मनमें सुख और शान्ति हो, तुम वही करो। संसारके और हमारे लिए तुमको कुछ चिन्ता न होनी चाहिए। चाहे जो करो, मैं सदा तुम्हारा वही प्रसन्न, आनन्दमय मुँह देखना चाहती हूँ। तुम्हारी उदासी मुझसे बिल्कुल नहीं देखी जाती।"

भगवतीकी आँखोंसे कई आँसू भी टपक पड़े।

मैं भगवतीका यह हाल देखकर जोशमें कहने लगा—"भगवती, देवि, तुम वृथा आँसू न बहाओ। तुम्हारा मङ्गल हो। देवि, तुम्हारी सरीखी स्त्री पाकर अब मुझे किसी बातकी चिन्ता नहीं है। तुम मेरे अन्धकारमय जीवनका प्रकाश हो। तुम मेरी सत्प्रवृत्ति हो। तुम मेरी सुमति हो। तुमको देखकर, उच्छ्वास-भरे सागरकी तरह, मेरा हृदय उमड़ उठता है। मुझे बहुत दिनोंसे यह विश्वास हो चुका है कि तुम्हारे साथ इस कुटिल संसार-मार्गमें मैं बेखटके चल सकूँगा। तुम मुझपर ऐसी ही अनुग्रहकी दृष्टि रक्खोगी तो मैं अपनेको कृतार्थ समझूँगा।" इतना कहकर आदरके साथ हाथ पकड़कर मैंने उसे अपने पास बिठा लिया।

चौतीसवाँ परिच्छेद।



जिस गाँवमें हमारा पुराना घर था उस गाँवसे एक दिन सबेरे नौकरने आकर कहा कि गाँवमें हैजा फैल गया है। दो चार आदमी मर चुके हैं और दस पन्द्रह आदमी बीमार पड़े हैं। खबर सुनते ही मैं अत्यन्त दुःखित हुआ और घबड़ाया भी। गाँवमें अच्छा डाक्टर या वैद्य कोई नहीं था। एक मामूली वैद्यजी थे, सो वे रोगकी खबर सुनते ही नौ दो ग्यारह हो गये। मैंने घरमें ही कुछ होमियोपैथीकी किताबें देखी

थीं । दवाओंका बक्स भी मेरे पास रहता था । गाँवमें किसीको मामूली बुखार आदिकी शिकायत होनेपर मैं दवा दे दिया करता था । लेकिन कोई कठिन बीमारी होनेपर उसे किसी अच्छे वैद्य डाक्टरके पास जानेकी ही सलाह देता था । गाँवमें कोई वैद्य न था । डाक्टर भी न था । गाँववालोंने घबड़ाकर मेरे पास आदमी भेजा ।

मैं खबर पाते ही उसी घड़ी दवाओंका बक्स उठाकर वहाँसे चलनेके लिए तैयार हो गया; किन्तु माताजीने आकर रोका और मुझे न जानेकी सलाह दी । माताजीके मना करनेपर विह्वल होकर मैंने कहा--"अम्मा, ऐसे काममें आप क्यों बाधा डालती हो ? मेरे गाँवके दस आदमी बीमार पड़ गये हैं, उनके प्राणोंपर आ पड़ी है, यह सुनकर भी चुप रहना क्या आप उचित समझती हैं ? मैं जाकर दवा दूँगा तो कमसे कम एक आदमीकी भी तो जान बचेगी । तुम मुझे वहाँ जानेको मना करती हो, मगर पहले एक बातपर विचार करो । मान लो कि मुझे यह रोग हो और तुम या मँझली भौजी, कोई, जानके डरसे मेरे पास न आओ, दवा न खिलाओ, मेरी सेवा-टहल न करो तो क्या अच्छा होगा ? मैं जैसे तुम्हारा हूँ वैसे ही सारा संसार हमारा है । तुम लोग अगर मेरी बीमारीमें ऐसा करो, तो जैसे पिताजी तुम लोगोंका मुँह देखनेके रवादार न हों वैसे ही हम लोग अगर बीमारकी--दुखियाकी--सहायता न करें तो हम सबके पिता, अनाथबन्धु भगवान् भी कभी हमपर सन्तुष्ट नहीं हो सकते । ऐसा करनेसे कभी धार्मिक जीवन नहीं मिल सकता । तुम मेरे लिए कुछ भी चिन्ता न करो । तुम्हारे आशीर्वादसे मेरा बाल भी बाँका न होगा । और मान लो यदि कुछ हुआ भी, तो ऐसे काममें प्राण देनेमें भी पुण्य और आनन्द है । भगवानकी इच्छाके बिना कुछ नहीं होता । मेरी अगर मौत ही बदी होगी तो वह

घरमें भी हो सकती है। उसे कोई टाल नहीं सकता। तुम निश्चिन्त होकर घरमें रहो। मैं अभी वहाँका हाल देखकर आता हूँ। भोलानाथके पथ्यका प्रबन्ध जाकर कर दो। उसे कुछ भी कष्ट न होने पावे।"

इतना कहकर मैं घरसे निकला। मोहन दवाका बक्स सिरपर लादकर साथ चला। रोगीकी सेवा-टहल करना उसको सदासे रुचता है। मुझे जाते देखकर सिद्धिनाथ भी मेरे साथ चलनेके लिए आग्रह करने लगा। मैंने कहा—"अगर इच्छा हो तो भगवानका नाम लेकर चले चलो।"

हम लोग थोड़ी ही देरमें गाँवके भीतर पहुँच गये। देखा, नौकरका कहना सच है। तीन चार घरोंमें रोना-पीटना मचा है और दस बारह आदमी बीमार हैं। मैंने बीमारोंके घर जाकर उनको दवा दी और उनकी देखरेख और सेवाका प्रबन्ध कर दिया। घर घर धूप और गन्धक वगैरह जलानेका बन्दोबस्त कराया गया। मैंने गाँवमें आते ही अपने पूर्वपरिचित डाक्टर साहबको लानेके लिए आदमी भेजा। यथासमय आकर उन्होंने रोगियोंको देखा और औषधकी व्यवस्था कर दी। डाक्टर साहबके चले जानेपर सिद्धिनाथ और मैं दोनों इस रोगके अचानक उत्पन्न होनेके कारणका पता लगाने चले। जिस घरमें पहले यह रोग देख पड़ा था उस घरमें पहुँचकर मुझे मालूम हुआ कि जो मरा था उसके, पहले पेटकी कोई बीमारी न थी; वह बहुत ही तन्दुरुस्त और मजबूत था। खाने-पीनेमें भी उसने कोई बदपरहेजी नहीं की थी। वह व्यक्ति अचानक बीमार होकर कैसे मर गया, यह बात मैं सहजमें नहीं समझ सका। इसी बारेमें सोचते सोचते मैं उस घरके पिछवाड़े पहुँचा। वहाँ पहुँचते ही एक भारी दुर्गन्ध मेरी नाकमें पहुँची। मैंने नाक बन्द करके देखा, वहाँ ढेरका ढेर गोबर-गोमूत्र, कूड़ा और सूखे

सड़े पत्ते पड़े हैं। एक गढ़ेमें गन्दा पानी भरा हुआ है। उससे जहरीली भाफ और दुर्गन्ध उठकर चारों ओरकी हवाको दूषित कर रही है।

मैंने सिद्धिनाथसे कहा—"भाई, और चाहे जो कारण हो, मेरी समझमें प्रधान कारण यही है, इसमें सन्देह नहीं। इसी नरककुण्डसे हैजा उत्पन्न हुआ है।"

इसके बाद घरके मालिकसे मैंने कहा—"तुम और जगहसे सूखी मिट्टी मँगाकर इस गढ़ेको जल्द पाट दो, साफ पानी पियो और धूप, गन्धक जलाओ।"

वह गृहस्थ शोकसे विह्वल हो रहा था। मुझे मालूम पड़ा, वह इस समय उस गढ़ेको पाटने और गन्दगी हटानेकी चेष्टा नहीं कर सकेगा। इस कारण सिद्धिनाथ और मैंने गाँवके कुछ आदमियोंकी सहायतासे उस गढ़ेको पाटने और गन्दगी हटानेका प्रबन्ध कर दिया। इसके बाद, उस गाँवके लोग जिस तालाबका पानी अपने काममें लाते थे उसे देखने हम गये। तालाबके घाटपर पहुँचकर हमने देखा कि जलके ऊपर गंदगी दिखाई पड़ रही है। बहुतसे लोग उसमें नहा रहे हैं। दूसरी ओर औरतें नहा रही हैं। स्त्रियाँ उसी मैले जलको कलसियोंमें भरकर इस्तेमालके लिए लिये जा रही हैं। उस जलको पी पिलाकर हैजेके फैलानेमें वे और सहायता कर रही हैं। तालाबके किनारे जाकर देखा, वहाँ भी तमाम गंदगी और कूड़ा-कर्कट भरा हुआ है। इधर उधर मैला पड़ा हुआ है और चारों ओर अमङ्गलरूप सुअर विष्ठाकी तलाशमें इधर उधर दौड़ रहे हैं। उनकी विष्ठा भी इधर उधर बिखरी पड़ी है। बरसात आ गई थी। बरसातके पानीमें बहकर वह विष्ठा तालाबके पानीमें मिल रही थी। वही जल लोग पीते थे।

यह देखकर मैं बहुत दुःखी हुआ। मैंने सिद्धिनाथसे कहा—"सिद्धिनाथ, हमारे देशके देहातोंकी अवस्था देख रहे हो? इस समय भी ये लोग कितने मूर्ख और उन्नति व ज्ञानमें पीछे पड़े हुए हैं! शिक्षित लोगोंके लिए यह बड़ा भारी काम करनेको पड़ा है। कोई शहरमें रहनेवाला शिक्षित आदमी क्या कभी इधर देखता या ध्यान देता है? सभीको अपने स्वार्थकी पड़ी है। जिम्मेदारीका खयाल कितने आदमियोंको है?"

सिद्धिनाथ मेरी बात सुनकर चिन्तामें डूब गया।

कई एक स्त्रियोंको उस तालावसे जल भरकर ले जाते देखकर मैंने उनसे कहा—"तुम लोग अभी इस तालावके पानीको काममें न लाओ। पीनेसे बीमारी फैलेगी। तुम तबतक कुँओंका खारा पानी ही पियो।"

थोड़ी देर बाद वहाँसे लौटकर मैं फिर रोगियोंको देखने गया। किसीने दवा खाई थी और उससे उसे कुछ फायदा भी हुआ था। किसीकी अवस्था नहीं सुधरी, विगड़ती ही जाती थी। गाँवमें एक जगह देखा, एक छप्परके नीचे बहुतसे लोग जमा हैं। कोई बातें कर रहा है, कोई तमाखू पी रहा है, कोई जनेऊ बना रहा है। हमारे वहाँ पहुँचने पर सबने गाँवके रोगियोंका हाल पूछा। हमने जैसा देखा था वैसा ही कह दिया। मैंने उन लोगोंसे यह भी कहा कि—"आपलोग अपने घरोंकी सफाईपर खूब ध्यान रखिए। घरके पास कोई गन्दगी जमा न होने दीजिए। माफिकसे अच्छा भोजन कीजिए, शुद्ध पानी पीजिए और मन प्रसन्न या निश्चिन्त रखनेके लिए भगवानका भजन कीजिए। अगर आपलोग ऐसा न करेंगे तो रोग गाँव भरमें चारों ओर

फैल जायगा। अगर कोई घर द्वारकी सफाई न करे तो आपलोग जबर्दस्ती उसे ऐसा करनेके लिए लाचार कीजिए।"

मेरी बातें सुनकर एक प्रगल्भ अर्धशिक्षित युवक बोल उठा--"अगर महाशय, कोई ऐसा न करना चाहे तो हम क्या करेंगे? हम अपने लिए कह सकते हैं, दूसरेके लिए नहीं कह सकते कि वह सफाई रक्खे या नहीं। और सच तो यह है कि इतना सिरमग्जन करनेकी हमें जरूरत ही क्या पड़ी है?"

सुनकर मेरे शरीरमें जैसे आग लग गई। मैंने कहा—"दूसरेका घर सफा रखनेमें भी तुम्हारा बहुत कुछ स्वार्थ है। स्वार्थपर लोगोंको निःस्वार्थभावसे काम करना सिखानेके लिए ही भगवान् ऐसे रोगोंको भेज दिया करते हैं। मान लो, तुमने अपना घर साफ रक्खा, लेकिन तुम्हारे पड़ोसीका घर गन्दा ही रहा। तुम्हारा पड़ोसी बीमार पड़ गया, तो फिर क्या तुम उस रोगके हाथसे छुटकारा पा सकोगे? कभी नहीं। यह रोग उस तरहका नहीं है। एक बार कहीं घुसनेसे, अगर वहाँके लोग सावधान न हुए तो, यह रोग तहस-नहस कर डालता है। यह रोग जिसमें फैले ही नहीं, इसी लिए मैं इन नियमोंका पालन करनेको तुमसे कहता हूँ। तुम्हारे अकेले इन नियमोंका पालन करनेसे काम नहीं चल सकता। और भी दस आदमी जिसमें इन नियमोंका पालन करें, इसकी चेष्टा करनी होगी। यह निश्चित है कि और दस आदमी बीमार पड़ेंगे, तो तुम उस झपेटेसे बच नहीं सकते। आप अच्छी तरह रहो और और दस आदमियोंको भी अच्छी तरह रक्खो, तभी तुम अच्छी तरह सुखसे रह सकते हो। तुम्हें अपने स्वार्थके लिए ही यह पराई भलाई करनी पड़ेगी। देखो, परोपकारी प्रवृत्ति ही समाजकी जीवनी शक्ति है। स्वार्थपर आदमी समाजमें रहनेके योग्य नहीं होता।"

मेरी बातें सुनकर उस युवकने सिर झुका लिया। और जो लोग मेरी बातें सुन रहे थे उन्होंने कहा कि "बेशक भैया, तुम्हारा कहना ठीक है।"

पैंतीसवाँ परिच्छेद।

हम लोग वहाँसे उठकर जानेवाले ही थे, इतनेमें भंगियोंकी बस्तीसे एक कमसिन डोमकी लड़कीने आकर रोते रोते अपने भाई और माके बीमार पड़नेकी खबर मुझे सुनाई। हम उसी समय वहाँसे उठकर उसके घर पहुँचे। वहाँ जाकर देखा, एक भयानक दृश्य था। उस लड़कीकी मा फटे कपड़े पहने, फटी कथड़ीपर मरी हुई पड़ी थी। उसके शरीर-भरमें तमाम मैला लगा हुआ था। उसका भाई एक फटी चटाईपर पड़ा हुआ है। उसके भी बराबर कै और दस्त जारी हैं। उसमें बिछौनेपर उठकर बैठनेकी शक्ति भी न थी। वह बार बार पुकारकर अपनी बहिनसे पानी माँग रहा था। वह लड़की रोते रोते घरके अन्धकारमय कोनेसे एक मिट्टीके बर्तनमें पानी ले आई और उसने वह अपने भाईको दिया। मैंने उस लड़कीसे कहा—"तुम लोगोंकी जाति-कुटुम्बके लोग कोई यहाँ नहीं हैं?"

उसने कहा—"मेरे चाचा हैं। लेकिन अम्मा और भैयाकी बीमारीका हाल सुनकर वे यहाँ आना नहीं चाहते।"

मैंने फिर पूछा—"तुम्हारे घरमें और कथरी या चटाई नहीं है?"

लड़कीने दुःखित होकर कहा—"नहीं, और तो नहीं है। अम्मा उस कथरीपर पड़ी सो रही है। (अभागिनको अबतक माके मरनेकी खबर न थी।) और भैयाको मैंने इस चटाईपर सुला रक्खा है।"

मैंने सिद्धिनाथसे कहा—"इस लड़केको इस घरसे बाहर निकालना होगा। लेकिन इसको सुलानेके लिए कोई बिछौना नहीं है। तुम एक काम करो, मेरी इस मोटी चादरको उस पेड़के नीचे बिछा दो।"

मेरी बात सुनते ही मोहनने दवाका बक्स रख दिया और बोला—"आप खड़े रहें, आप लोगोंको कुछ न करना होगा। मैं उसे बाहर लिये आता हूँ।"

इतनी बात कहकर उस लड़कीकी सहायतासे मोहन उस लड़केको बाहर निकाल लाया। मैंने देखा, रोगी घड़ी दो घड़ीका ही मेहमान है। हाथ पैर ठंडे हो चुके है। मुँहमें स्याही दौड़ गई है। अवस्था देखकर वैसी ही दवा मैंने दी, मगर कुछ भी फल न हुआ। दो घंटेतक वहीं बैठकर उसकी दवा की, लेकिन उस लड़केकी जान नहीं बची।

भाईकी मौत देखकर वह लड़की चिल्ला चिल्लाकर रोने लगी। हम सब उस अनाथ बालिकाके विलापको देखकर रोने लगे। वह उस समय भी समझती थी कि उसकी मा सो रही है। मैंने रोते रोते उससे कहा—"देखो, तुम्हारी माता भी तुमको छोड़कर चल बसी है। तुम मेरे साथ आओ, रोओ नहीं, मैं इनकी लाशें ठिकाने लगानेका इन्तिजाम कर दूँ।"

अपनी माताके मरनेकी खबर सुनकर वह लड़की शोकसे शिथिल हो गई और माके ऊपर पछाड़ खाकर गिर पड़ी। हम इस दृश्यको न देख सके

हम लोगोंको वहाँ मौजूद देखकर और उस लड़कीके रोनेके शब्दको सुनकर उसका एक चाचा मेरे पास आया। मैंने उससे कहा—"इस लड़कीको ऐसी विपत्तिमें अकेले छोड़कर तुमने अच्छा काम नहीं किया। अब जाकर इन दोनों लाशोंको ठिकाने लगानेका इन्तिजाम करो। अगर न करोगे तो तुम्हारे लिए अच्छा न होगा।"

उस लड़कीके चाचाने हाथ जोड़कर कहा—"सरकार, मैं घरमें नहीं था, इसीसे नहीं आ सका। मैं अभी और लोगोंको बुलाये लाता हूँ।" इतना कहकर वह गया और बहुत जल्द पासके गाँवसे आदमियोंको लाकर लाशोंको मसानपर ले गया। मैंने उस लड़कीको पीछे आनेके लिए मना किया। मगर वह कब मान सकती थी? बाल बिखराये विलाप करती छाती पीटती वह लड़की दौड़ी ही गई।

हम लोगोंने शान्तिकुटीरमें आकर स्नान भोजन किया। थोड़ी देर विश्राम करके फिर तीसरे पहर हम रोगियोंको देखने चले। कोई रोगी आराम हो चला, कोई रोगी मर गया। गाँवमें होम, शतचण्डी, देवपूजन आदि पुण्यकार्य होने लगे। हम लोग घर घर जाकर सफाई रखनेके लिए उपदेश देने लगे। दो ही चार दिनमें रोगियोंकी संख्या घट गई और रोगका जोर भी कम हो चला। एक हफ्तेमें गाँवसे बीमारी दूर हो गई।

हमारे इस कामको देखकर भोलानाथ बहुत प्रसन्न हुआ। कर्तव्य पालन करनेसे मुझे बड़ा आनन्द मिला। मैंने भोलासे कहा—"भाई, पराई सेवामें जो आनन्द है, अर्थात् परोपकारमें जो सुख है वह संसारकी और किसी चीजमें नहीं। भगवान्‌की प्रसन्नताके लिए इस जीवनको परोपकारमें लगा देनेसे एक विशेष सुख—दिव्य सुख—मिलता है। वह सुख और किसी चीजमें नहीं मिल सकता। कई दिन तक रोगियोंकी सेवामें लगे रहनेसे मेरे हृदयमें कई संकल्प उठे हैं। मैंने अच्छी तरह विचारकर देख लिया है कि अज्ञान ही हमारे सारे दुःखोंकी जड़ है। हम लोगोंको वह उपाय करना चाहिए, जिसमें हमारे सब भाई ज्ञान प्राप्त करें। यह काम भी मैंने अपने लिए चुना है। यह तो अभी खुद मेरी ही समझमें नहीं आता कि मुझ सरीखे छोटे आदमीके द्वारा इतना

बड़ा काम कैसे पूरा होगा। किन्तु भगवानकी कृपाका बड़ा भरोसा है; उसीके भरोसे मैं इस काममें हाथ डालूँगा। अबतक मैं समझता था कि ऋषिमुनियोंकी तरह जंगलमें चुपचाप बैठकर परमेश्वरकी उपासना करनेसे ही सच्चा सुख पाया जाता है। लेकिन अब मुझे स्पष्ट जान पड़ता है कि बैठे बैठे केवल विचार या ध्यान करनेसे कोई फल नहीं। सोचना चाहिए और उसके साथ करना भी चाहिए। निष्काम कर्म अर्थात् कर्त्तव्य-पालनमें ही सच्चा सुख है। हृदय इस समय 'काम' माँग रहा है। कार्य—कार्य—इस समय यही चिन्ता प्रबल है। मैं अपनी शक्तिके अनुसार कर्त्तव्य-पालनके लिए दृढ़ प्रतिज्ञा कर चुका हूँ। मैंने विचार किया है कि मैं इस तरफके देहातोंमें गाँवगाँव घूमूँगा और सुख, शान्ति तथा नीतिके मार्गमें अटल बने रहनेके लिए सबको उपदेश करूँगा। लोकशिक्षाके लिए सरकारकी ओरसे जो प्रबन्ध है वह तो अच्छा ही है। उस तरह विस्तृत रूपसे लोक-शिक्षाका प्रबन्ध और किसीसे नहीं हो सकता। हमलोगोंसे जो कुछ हो सकेगा उतना ही काम करके हम अपने जन्मको सफल और जातिको उन्नत बनावेंगे।

मेरी बातें सुनकर भोलानाथ बहुत ही प्रसन्न हुआ। उसने कहा—"भाई, आश्चर्यकी बात तो यह है कि जो तुमने अपने विचार प्रकट किये हैं, ठीक वे ही विचार आज कई दिनसे मेरे हृदयमें भी उठ रहे हैं। मैं तुम्हारे शान्तिकुटीरको देखकर इतना मुग्ध हो गया हूँ कि इस जगहको छोड़कर और जगह जानेको मेरा जी नहीं चाहता। उस दिन सिद्धिनाथके साथ मैं और ललिता जंगलमें बहुत दूरतक घूमने गये थे। तुम्हारे सेंदुरिया पहाड़पर चढ़कर सिद्धिनाथकी कविता भी सुन आया हूँ। वह स्थान देखकर मैं और ललिता दोनों ही बहुत खुश हुए। ललिताकी प्रबल इच्छा है कि, यहीं तुम्हारे पास एक मकान बनवाकर

मैं भी रहूँ। तुम्हारे सदृश अपना और हितैषी हमें और कहाँ मिलेगा? मनोहरलालजीकी भी कल चिट्ठी आई है। उन्होंने व्याहके दहेजमें एक लाख रुपये ललिताको दिये हैं। ललिता मुझसे कल कहती थी कि इन रुपयोंमेंसे कुछ वह किसी अच्छे काममें लगा देना चाहती है। उसकी इच्छा है कि इसी शान्तिकुटीरमें या इसके आसपास किसी और स्थानमें एक अच्छा औषधालय खोल दिया जाय। तुम्हारे गाँवमें हैज़ा फैलने और वहाँ किसी अच्छे वैद्यके न होनेकी खबर पाकर उसकी यह इच्छा और भी प्रबल हो उठी है। और भी एक कामके लिए वह कुछ रुपया देनेको तैयार है। वह काम लोकशिक्षाके लिए एक पाठशाला खोलना है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह प्रस्ताव मैंने ही उसके आगे किया है। वह भी मेरे प्रस्तावको माननेके लिए खुशीसे राजी हो गई है। यह जरूर है कि, सरकारी स्कूलों कालेजोंमें सर्वसाधारणको शिक्षा मिलती है, मगर कई वर्षतक प्रोफेसर रहकर मैं अच्छी तरह समझ गया हूँ कि वहाँ जिस ढंगसे शिक्षा दी जाती है उससे लड़के यथार्थ विद्या नहीं सीख पाते। वे तोतेकी तरह कोर्सकी किताबोंको कण्ठकरके परीक्षाके समय वे ही रटी हुई बातें लिखकर किसी तरह पास हो जाते हैं। लेकिन वह पढ़ाई उनके हृदयको अपनी ओर खींचती नहीं—उससे उनमें स्वयं विचार करनेकी शक्ति नहीं बढ़ती। इस समय मैं जिस पाठशालाका प्रस्ताव कर रहा हूँ वह मेरी समझमें यहीं कहीं निर्जन मनोहर स्थानमें स्थापित होनी चाहिए। ऐसी ही जगहपर पढ़नेका स्थान होना चाहिए। विद्या पढ़ना एक भारी साधना है। गोलमाल और गुलगपाड़ा इस साधनाका एक प्रधान विघ्न है और इसके सिवा बनावटी लोक-समाजकी अपेक्षा प्रकृति देवीके विस्तृत क्षेत्रमें यथार्थ ज्ञान पानेकी सम्भावना सर्वथा अधिक है। तुमसे इस सम्बन्धमें अधिक

कहना व्यर्थ है। तुम सब समझते हो। शान्तिकुटीर देखकर मुझे विश्वास हो गया है कि अगर यहाँ कोई स्कूल खोला जाय और उस स्कूलसे मिला हुआ एक छात्रावास भी हो, तो हम लोग लड़कोंको अपने मनकी शिक्षा दे सकते हैं। केवल पुस्तक पढ़नेकी अपेक्षा आँखोंसे देखकर और कानोंसे सुनकर लड़के अवश्य ही अधिक ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे। देख सुनकर शिक्षा प्राप्त करने लायक स्थान यहाँसे बढ़कर शायद ही कहीं मिल सकेगा। मेरी निजी जायदादकी जो आमदनी है उससे मेरी गिरिस्ती मजेमें चल सकती है। तुमको भी कुछ कमी नहीं है। तुम्हारी भी निजकी जमीन और पिताकी सम्पत्ति है। अब तुम विश्वविद्यालयके परीक्षक बना दिये गये हो, इससे भी तुम्हारी आमदनी बढ़ गई है। सिद्धिनाथ भी एम० ए० पास करके हम लोगोंके काममें शरीक होनेके लिए तैयार है। वह भी यहीं शान्तिकुटीरमें रहना चाहता है। जहाँतक मुझे मालूम है, उसे भी खाने पीनेकी चिन्ता नहीं है। अब हम तीनों जने मिलकर अगर इस नये ढंगसे एक स्कूल स्थापित करें और लड़कोंको यथार्थ शिक्षा दे सकें, तो तुम्हारी समझमें कैसा होगा? एक बात यह भी है कि स्कूलकी आमदनीसे हम एक पैसा भी न लेंगे। जो आमदनी होगी उससे दो एक और भी अच्छे विद्वान् रख लिये जायँगे। क्यों न?"

मैंने कुछ देर सोचकर कहा—"यह तुम्हारा प्रस्ताव बहुत ही अच्छा है, इसमें कोई सन्देह नहीं। अगर इस प्रस्तावके अनुसार कार्य हो गया तो मेरी भी एक पुरानी इच्छा पूरी हो जायगी। और ललिताकी यह उदारता उसके योग्य ही है। कभी कभी मेरे मनमें भी ऐसे खयालात उठते थे, लेकिन अकेले होनेके कारण आगे बढ़नेकी हिम्मत नहीं होती थी। भगवानकी कृपासे वह इच्छा अब जान पड़ता है पूरी हो

जायगी। तुम इस काममें मुझे दाहिना हाथ समझना। मुझे इस काममें पूर्ण उत्साह और सहानुभूति है। ललिताने जो एक धर्मार्थ औषधालय यहाँ खोलनेका विचार किया है उसकी बड़ाई तो मैं हजार मुँहसे भी नहीं कर सकता। इस तरफके लोग उसके चिरकालतक ऋणी रहेंगे। तुम मेरी तरफसे कृतज्ञता और धन्यवादकी सूचना ललिताको दे देना। ललिता इस प्रान्तकी देवता समझी जायगी। भगवान् उसका मङ्गल करें।"

उपसंहार।



भोलानाथ और ललिताके अद्भुत ब्याहकी बात मैंने पिताजीको चिट्ठीमें लिख दी थी। कुछ दिन बाद शान्तिकुटीरमें आकर उन लोगोंको आँखसे देखकर पिताजी अत्यन्त प्रसन्न हुए। ललिताने शान्तिपुरमें एक खैराती दवाखाना खोलनेका संकल्प किया है, यह जानकर तो वे उसकी सौ मुँहसे बड़ाई करने लगे। हम लोगोंके स्कूल खोलनेके प्रस्तावोंको सुनकर पिताजीने इस कार्यमें यथेष्ट उत्साह दिलाया और आप ही चलकर स्कूलके लायक जगह चुन दी। भोला और ललिताका वहीं रहनेका विचार सुनकर भी पिताजीको बड़ी ही खुशी हुई। जहाँ भोलानाथ और ललिताकी इच्छा थी, उस जगह मकान बननेका प्रबन्ध हो गया। इस तरह चारों ओर कामकी धूम मच गई। हम सबके हृदयमें एक नये तरहका उत्साह देख पड़ने लगा।

मँझली भौजीके शान्तिकुटीरसे जानेके दिन निकट आगये। उन्होंने पिताजीके निकट यह इच्छा प्रकट की कि सिद्धिनाथ और अन्नपूर्णाका

ब्याह शीघ्र हो जाना चाहिए। पिताजी इसपर राजी होगये। दो महीनेके बाद इस शुभविवाहका होना पक्का हो गया।

मँझली भौजी यह खबर सुनकर बहुत खुशी हुई। उन्होंने मुझसे कहा—“ बचुआ, सिद्धिनाथके साथ अन्नपूर्णाके ब्याहका सब ठीकठाक हो गया। लेकिन मैं इस ब्याहको देखनेके लिए न रह सकूँगी। कोई हर्ज नहीं, मेरा पकवानका हिस्सा और मिठाई यहीं भेज देना। बचुआ, तुम्हारा ब्याह देखकर मुझे जो खुशी हुई है उसे मैं शब्दोंसे बता नहीं सकती। तुम्हारे ब्याह न करनेसे बाबूजी और अम्माको बड़ा दुःख था। मैं आशीर्वाद करती हूँ कि तुम सदा सुखसे रहो और बहुत जल्द पुत्रका मुँह देखो। मैं विशेष प्रार्थना करती हूँ कि तुम दोनों जने वृथा मनमुटाव न करना। मुझे भगवतीसे कुछ खटका नहीं, खटका सारा तुम्हारी ओरसे है। मेरा विश्वास है कि मर्द लोग औरतोंको पहचान नहीं सकते। यही कारण है कि तुम सरीखा पण्डित पुरुष भी भगवती सरीखी सुशीला स्त्रीपर कभी कभी खीझ जाता है। मैं तुमसे कई दफे कह चुकी हूँ, और आज भी कहे जाती हूँ कि औरतोंकी बराबरी मर्द कभी नहीं कर सकते। तुरतकी ब्याही बालिका भी अपने स्वामीके लिए जो स्वार्थत्याग दिखा सकती है वह स्वार्थत्याग सत्तर बरसका बूढ़ा मर्द नहीं दिखा सकता। विचार कर देखो, देशमें औरतें ही ‘ सती ’ होती थीं। कोई पुरुष तो कभी किसी स्त्रीके साथ नहीं जल मरा। केवल औरतें ही इस तरह आगमें फाँद सकती हैं। ‘जौहर व्रत’ करना केवल स्त्रियाँ ही जानती हैं। पचास बरसके मर्दकी औरत अगर आज मरे तो वह, चिताकी आग बुझनेके पहले ही ब्याह करनेको तैयार हो जायगा। यही तो मर्दोंके ढंग हैं। इसके विरुद्ध ललिताका हाल तुमने देखा? सच तो यह है कि ललिताने भोलासे ब्याह करके हम लोगोंकी नाक रख ली। नहीं तो हम,

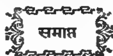
लोग तुम्हारे आगे सिर न उठा सकतीं। जो कुछ हो, मैं बड़े सुखसे इतने दिन यहाँ रही। अब तुम लोगोंको छोड़कर जानेमें मुझे बड़ा कष्ट हो रहा है। तुम्हारे दादा तो परदेशमें ही घूमते फिरते हैं। मुझे यही चिन्ता थी कि अगर तुम भी नौकरी कर लोगे तो अम्मा कैसे अकेले रहेंगी। अब यहाँ स्कूल बनेगा और तुम यहीं रहोगे, यह सुनकर मुझे बड़ा सुख हुआ। तुम सब एक न एक काममें लगे रहो, यही अच्छा है। तुम्हारा हृदय बड़ा ही उदार और पवित्र है। भगवान् तुम्हारा मंगल करें। मैं आशीर्वाद करती हूँ कि तुम दोनोंके दिन सुखसे बीतें। मगर मुझे न भूल जाना; लड़का हो तब जरूर बुलाना।"

मैंने हँसकर कहा—"अभी तो मैं ही लड़का हूँ भौजी!"

भौजीने हँसकर कहा—"आशीर्वाद देनेमें क्या हर्ज है?"

मैंने कहा—"सो तुम एक सौ दफे आशीर्वाद दो।"

दो एक दिनके बाद ही मँझली भौजी दादाके पास चली गईं। पिताजी उनको पहुँचाने गये। उनके चले जानेपर घर बिलकुल सूना उदास जान पड़ने लगा। माताजीका दोचार दिन तक किसी काममें मन नहीं लगा। भगवती, ललिता और रधियाको भी बड़ा दुःख हुआ। मेरे कोई बहिन न थी। मैं मँझली भौजीको ही अपनी बहिन समझता था। उनके पवित्र मन, उदार हृदय, अपनी मर्यादाके ध्यान, अद्भुत मसखरेपन, बुद्धिमानी और आनन्दमयी पवित्र मूर्तिको इस जन्ममें मैं कभी भूल नहीं सकता। मुझे दृढ़ विश्वास है कि उनकी ऐसी आनन्दमयी स्त्री जिस पवित्र घरमें है वह घर आनन्द और सुखसे भरा रहेगा। इस पूजनीया देवीको बिदा करके मैं भी यहीं अपने पाठकोंसे बिदा होता हूँ।



हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर-सीरीज ।

हिन्दीमें यह ग्रन्थमाला सबसे पहली, सबसे श्रेष्ठ और हिन्दी साहित्यकी सच्ची उन्नति करनेवाला है । इसमें अब तक विविध विषयोंके—नाटक, उपन्यास, काव्य, इतिहास, समालोचना, विज्ञान, जीवनचरित, सदाचारनीति, अध्यात्म, आरोग्य-के–६४ ग्रन्थ निकल चुके हैं जिनकी सर्वत्र प्रशंसा हुई है और एक एक ग्रन्थके कई कई संस्करण निकल चुके हैं । ग्रन्थमालाके स्थायी ग्राहकोंको सब ग्रन्थ पौनी कीमतमें भेजे जाते हैं । स्थायी ग्राहक होनेकी फीस केवल एक रुपया है । अभी तक प्रकाशित हुए तमाम ग्रन्थोंका सूचीपत्र एक कार्ड लिखकर मँगा लीजिए । नीचे कुछ चुने हुए ग्रन्थोंकी सूची दी जाती है:—

नाटक

(महाकवि द्विजेन्द्रलालकृत)

दुर्गादास	(ऐतिहासिक)	१)
मेवाड़पतन	,,	॥।=)
शाहजहाँ	,,	१)
नूरजहाँ	,,	१=)
चन्द्रगुप्त	,,	१)
सिंहलविजय	,,	१=)
राणाप्रतापसिंह	,,	१॥)
सुहराब रुस्तम	,,	॥=)
सीता	(पौराणिक)	॥-)
पाषाणी	,,	॥।)
भीष्म	,,	१।)
उस पार	(सामाजिक)	१=)
भारतरमणी	,,	॥।=)
सूमके घर धूम	(प्रहसन)	।)
प्रायश्चित्त	(मेटर लिंक)	।)
अंजना	(सुदर्शन)	१=)
मुक्तधारा	(रवीन्द्र)	॥≡)
प्रेम-प्रपंच	(शिलर)	॥≡)
ठोक पीटकर वैद्यराज	(प्रहसन)	॥)

उपन्यास

आँखकी किरकिरी		१॥)
प्रतिभा	(सामाजिक)	१।)
अन्नपूर्णाका मन्दिर	,,	१=)
शान्तिकुटीर	,,	१)
सुखदास	,,	॥=)
छत्रसाल	(ऐतिहासिक)	१॥।)
चन्द्रनाथ	(सामाजिक)	॥।)

गल्पगुच्छ

चित्रावली	॥=)
फूलोंका गुच्छा	॥।)
नवनिधि	॥।)
पुष्पलता	१)
रवीन्द्र-कथाकुंज	१)

हास्यविनोद

चौबेका-चिट्ठा, सजिल्द	१।=)
गोबरगणेशसंहिता	॥)

काव्य

बूढेका ब्याह	(मीर)	।=)
देवदूत	(पं० रामचरित)	।=)
देवसभा	,,	।-)
मेरे फूल		॥।)

मिलनेका पता—हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, पो० गिरगाँव, बम्बई ।

उच्च श्रेणीके सुन्दर उपन्यास ।

१ प्रतिभा । अतिशय सुरुचिसम्पन्न, भावपूर्ण, मनोरंजक और शिक्षाप्रद उपन्यास । बालक युवा स्त्री और पुरुष सबके हाथमें देने योग्य । स्त्रियोंके लिए खास तौरसे उपयोगी और मनोरंजक । चतुर्थ संस्करण । मू० १।)

२ अन्नपूर्णाका मन्दिर । यह बहुत ही पवित्र, पुण्यमय और करुणरसपूर्ण ग्रन्थ है। थोड़े ही समयमें इसके मराठी अँगरेजी आदि कई भाषाओंमें अनुवाद हो चुके हैं । हिंदीके सुप्रसिद्ध कवि बाबू मैथिलीशरण गुप्तने इसे बहुत ही पसंद किया है और उन्हींकी प्रेरणासे यह छपाया गया है । वे लिखते हैं—" अन्नपूर्णाका मन्दिर मैंने कई बार पढ़ा होगा, पर किसी बार ऐसा नहीं हुआ कि आँसुओंसे दृष्टिरोध न हुआ हो । यह अनुपम उपन्यास है ।" इसमें सती और सावित्रीके चरित्र पौराणिक चरित्रोंसे भी ऊँचे बढ़ गये हैं । स्त्रियोंके चित्तपर इस उपन्यासका लोकोत्तर प्रभाव पड़ता है । प्रत्येक स्त्री और बालिकाको इसे पढ़ा देना चाहिए । चतुर्थ संस्करण । मूल्य १)

३ छत्रसाल । बुन्देलखण्डकी स्वाधीनताकी रक्षा करनेवाले वीरकेसरी छत्रसाल और चम्पतरायके चरित्रको लेकर इस अपूर्व उपन्यासकी रचना की गई है । माननीय देशभक्त खापर्डेने इसे प्रसिद्ध अँगरेजी लेखक स्काटके उपन्यासोंकी जोड़का बतलाया है । देशभक्ति, आत्मोत्सर्ग, प्रतिज्ञापालन, आदि भावोंसे लबालब भरा हुआ है । कथानक इतना कुतूहलवर्धक है कि पढ़ना शुरू करते ही फिर छोड़नेको जी नहीं चाहता । द्वितीय संस्करण । मू० १॥)

४ आँखकी किरकिरी । महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुरके सर्वश्रेष्ठ उपन्यासका अनुवाद । यह उपन्यास बहुत ही मनोरंजक और सुशिक्षादायक है । हिन्दीमें इसकी जोड़का एक भी उपन्यास नहीं । इसमें मनुष्यके स्वाभाविक भावोंके चित्र, खींचकर उनके द्वारा मित्रकी तरह—आत्माकी तरह शिक्षा दी गई है । बहुत ही सरस और दिलचस्प है । मू० १॥), राजसंस्करणका २॥)

५ चन्द्रनाथ । बंगालके इस समयके सर्वश्रेष्ठ लेखक शरच्चन्द्र चट्टोपाध्यायके एक सुन्दर सामाजिक उपन्यासका अनुवाद । बहुत ही मार्मिक और हृदयद्रावक । समाप्त किये बिना नहीं छोड़ा जाता । मू० ॥)

६ सुखदास । हिन्दीके सर्वश्रेष्ठ उपन्यासलेखक श्रीयुत प्रेमचन्दजीने इसे जार्ज इलियटके ' साइलस माइनर ' नामक मशहूर उपन्यासकी छाया लेकर लिखा है । मूल और छायालेखक दोनों ही अतिशय सुप्रसिद्ध हैं । मू० ॥=)

७ विधि-लिपि । अन्नपूर्णाके मन्दिरकी लेखिका श्रीमती निरुपमादेवीके अतिशय सुन्दर उपन्यासका अनुवाद । मूल्य लगभग २॥)

संचालक—हिन्दी-ग्रन्थरत्नाकर-कार्यालय,

हीराबाग, पो० गिरगाँव, बम्बई ।

12300